

To,

प्रिन्टेड मैटर

If undelivered please return to :

**शोध श्री** (त्रैमासिक)

54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी

टॉक रोड, जयपुर-302018

स्वात्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेंद्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी, टॉक रोड, जयपुर-302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।  
मुद्रण स्थल आकृति एडवरटाइजर्स, जयपुर

Shodh Shree

Volume - V

October - December 2012

ISSN 2277-5587

**Shodh Shree**

(Journal of Multidisciplinary Research)

**शोध श्री**

Volume - V October - December 2012

RNI No. RAJHIN /2011 / 40531



EDITOR  
Virendra Sharma

CO-EDITOR  
Dr. Ravindra Tailor

E-mail: shodhshree@gmail.com

1.	बुन्देली लोकगीतों में पर्व एवं उत्सव डॉ. पद्मा शर्मा, शिवपुरी (म.प्र.)	1-4
2.	मानव मूल्यों के सन्दर्भ में जहीर कुरैशी की गजलें डॉ. राजकुमार अग्रवाल, कासगंज (उ.प्र.)	5-9
3.	स्त्री विमर्श के अवधारणात्मक पहलू डॉ. प्रवीण चन्द, जयपुर	10-13
4.	महाविद्यालयी विद्यार्थियों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता का अध्ययन डॉ. संजय केडिया, डॉ. पंकज गुप्ता, कोटपूतली	14-17
5.	वैदिक काल से बुद्धकाल तक भारतीय इतिहास में योग साधना का महत्व- एक विस्तृत विवेचन दीपक चौधरी, जयपुर	18-20
6.	सामाजिक न्याय एवं दलित वर्ग : एक अवधारणात्मक अध्ययन सम्पत राम रेग्गर, कालाड़ेरा	21-23
7.	वेदों में पर्यावरण शोधन यज्ञ के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण डॉ. राजेश कुमार बैरवा, बून्दी	24-26
8.	शांति सेना : वर्तमान की आवश्यकता ज्योति जैन, अजमेर	27-28
9.	गठबंधन सरकार अर्थ, आयाम एवं वास्तविकता श्री राजेश गुप्ता, बांदीकुई	29-33
10.	जैन दर्शन एवं सिद्धांतों का वैश्विक शांति तथा स्वस्थ समाज के विकास में योगदान डॉ. यशवन्त कुमार, जालौर	34-40
11.	हाड़ीती प्रदेश में व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन डॉ. सन्दीप यादव, श्री जुबेर खान, बून्दी	41-49
12.	अज्ञेय कृत 'असाध्य वीणा' (आख्यान मूलक) में सर्जन की सिद्धावस्था अल्का जैन, घौमू	50-52
13.	मीडिया की भूमिका : 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के प्ररिप्रेक्ष्य में डॉ. अनीता, दयालबाग, आगरा (उ.प्र.)	53-55
14.	'डांडियो' में समाज सुधार दर्शन : ऐतिहासिक संदर्भ में प्रा. गणेश एन. निसरता, पंचमहाल (गुजरात)	56-58
15.	Juvenile Hormone Like Substances: Part XXXII Search for greener pesticides: eco-friendly approach towards management of pests Dr. V. P. Patial, Dharamshala (H.P.)	59-70
16.	Physicochemical Parameters Of Fresh Water Reservoir Of Mataji Ki Nadi, Village Karamawas Patta, District- Pali (rajasthan) Nisha Sharma, R.P. Kanther, Beawar	71-74
17.	Assesment Of Water Quality Of Ground & Surface Water Resources Of Beawar Mridula Arya, Rashmi Sharma, Beawar	75-79
18.	Rock Art Of India: A General Study Dr. Vineet Godhal, Ladnun (Nagaur)	80-84
19.	Impact Assessment of Corruption – A Study of the Types, Causes and Impact on Various Sectors Dr. Alka Bhatia, Sikar	85-96

20.	<b>Impact of family environment on Academic Achievement of teenagers school students.</b> Pushkrit Gupta, Tohana (Haryana)	97-102
21.	<b>Creativity among the Students of Urdu Medium Vocational Courses: A Study in Hyderabad</b> Md. Afroz Alam, Md. Rashid Anwar, Hyderabad (Andhra Pradesh)	103-108
22.	<b>Educational Technology and challenges in Indian Education</b> Satyanarain Nai, New Delhi	109-113
23.	<b>Creative Student-Teachers and Values</b> Dr. Yashwant Singh, Farrukhabad (Uttar Pradesh)	114-119
24.	<b>Violent Children: Craving for Parent's Support</b> Ms. Deepti Redhu, Sirsa (Haryana) Ms. Asmita, Sangrur (Punjab)	120-124
25.	<b>Empowerment of Women : Through Education</b> Dr. Anita Singh, Dr. Lata Kumar, Meerut (U.P.)	125-129
26.	<b>Teacher Education: Past to Present</b> Jayotsna, Banasthali (Tonk )	130-134
27.	<b>Voices Of The 'voiceless' : Class / Caste In Karnad's Tale – Danda</b> Dr. Anshoo Sharma, Sikar	135-140
28.	<b>A Feminist Reading Of Bankim Chandra Chatterjee's Rajmohan's Wife</b> Shweta Meena, Jaipur	141-145
29.	<b>Preparing Effective Teachers Of English Language Learners Bridging Diversity By Bilingual Methodology</b> Dr. Aprajitha Sharma, Ms Raees Unnisa, Bhopal (M.P.)	146-151
30.	<b>Green Banking In India</b> Corena D'souza, Mumbai (Maharashtra)	152-160
31.	<b>Information Technology (IT) in Academic Libraries</b> Kumkum Rajawat, Jaipur	161-165

## बुन्देली लोकगीतों में पर्व एवं उत्सव

डॉ पद्मा शर्मा

शा. श्रीमंत माधवराव सिंधिया स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)

लोकजीवन में धर्म और पर्व प्राण वायु की तरह महत्वपूर्ण होते हैं। धर्म के कारण ही लोकसाहित्य को लोकप्रियता प्राप्त हुई। व्रतों और पर्वों के अवसर पर लोकगीतों के गायन और तत्संबंधी लोक-कथाओं के कहने का प्रचलन है। धर्म के सैद्धान्तिक पक्ष का बोझ लोक गीत सहन नहीं कर पाते वे तो पूजा स्मृति और भजन की जीवंतता से मुखरित होते हैं। पुराणकाल में बुन्देलखण्ड के जनजीवन में व्रत उपवास, धार्मिक अनुष्ठान और देवी-देवताओं पर विष्वास अत्यंत दृढ़ हो चुका था।

सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति का मूल जनपदीय भाषा है। कृत्रिमता रहित, अपनत्व से परिपूर्ण, लालित्यमयी, सरल-सुबोध बुन्देली भाषा, बुन्देलखण्ड की विरासत है। 'बुन्देली' सभ्यता के दूषित प्रभाव से मुक्त ग्राम्य, वन-प्रांतर की यह सरस भाषा है। 'बुन्देली' ग्रामांचलों के लोकमानस को सहजता से प्रकट करने की भाषा है। 'कोस-कोस पै बदले पानी चार कोस पै बानी'। यह लोकोक्ति यहां सार्थक परिलक्षित नहीं होती क्योंकि 'बुन्देली' का अपना एक विस्तृत क्षेत्र और समृद्ध साहित्य है।

'बुन्देली' एक सुविस्तृत क्षेत्र की लोक भाषा है। इसे लगभग 67,500 वर्गमील में निवास करने वाले लगभग एक करोड़ से भी अधिक नर-नारी बोलते हैं। बुन्देली लगभग चार सौ वर्षों तक राजभाषा के रूप में व्यवहृत रही है।

'बुन्देली' पश्चिमी हिन्दी की एक महत्वपूर्ण बोली है। डॉ. हरदेव बाहरी ने 'बुन्देली' का क्षेत्र इस प्रकार वर्णित किया है-

“यमुना उत्तर और नर्मदा दक्षिण अंचल

पूर्व ओर है टोंस पश्चिमांचल में चंबल।।”

डॉ. होर्नल के अनुसार-डॉ. ग्रियर्सन ने यह अवश्य स्वीकार किया है कि “भारत के भाषात्मक इतिहास के प्रारंभ में ही भारतीय आर्य बोलियाँ दो रूपों में विभाजित हो गई थीं। एक मध्यवर्तीय प्रदेश की बोलियाँ या समूह और दूसरा बाह्य वत् की बोलियों का समूह था। डॉ. ग्रियर्सन ने बोलियों के जिस समूह को मध्यवर्तीय प्रदेश में प्रचलित बताया है, उन्हीं में से कोई बोली अथवा बोलियाँ उस काल में वर्तमान बुन्देलखण्ड के भू-भाग में बोली जाती रही होंगी।”

'बुन्देली' शौरसेनी अपभ्रंश के एक रूप 'मध्यदेशीया' से विकसित पश्चिमी हिन्दी की एक बोली है। बुन्देली की व्युत्पत्ति इस प्रकार है- शौर सेनी अपभ्रंश (मध्यदेशीया) पश्चिमी हिन्दी बुन्देली। भाषाविदों ने हिन्दी की लोकभाषाओं का उद्भव मध्यदेशीय शौरसेनी अपभ्रंश से माना जाता है।

बुन्देली की उपबोलियों के नामकरण के दो आधार हैं- जाति और स्थान। इसके कुछ रूप ऐसे हैं जो विशिष्ट जातियों द्वारा ही विशेष रूप से बोले जाते हैं। ऐसे रूप उस जाति के नाम पर आधारित हैं, यथा- पैंवारी, लोधन्ती, राठोरी, भदावरी, बनाफरी आदि। 'बुन्देलखण्ड की सीमा के निर्धारण में छतरपुर के यशस्वी कवि एवं गांधीवादी चिंतक स्व. श्री वियोगी हरि जी का यह दोहा महत्वपूर्ण है-

इत चम्बल, उत नर्मदा, इत यमुना उत टोंस।

छत्रसाल सों लरन की रही न काहू होंस।।”

भक्ति भावनाओं को रेखांकित करते हुए भक्त के माध्यम से कवि की वाणी गद्-गद् हो जाती है, हृदय पिघल जाता है जो कभी रोता है तो कभी जोर से हँसता है। 'बुन्देली नारियों में धार्मिक भावना कूट-कूट कर भरी हुई है, जिसमें क्षेत्रीय देवी-देवताओं को अधिक महत्व दिया जाता है क्योंकि यहाँ प्रत्येक घर में तुलसी चौरा, शंकर, गणेश, कुलदेवता, कुलदेवी आदि की पूजा नित्य सुबह-शाम होती रहती है, जिसका अनुकरण यहाँ पलने वाले नन्हे-मुन्ने बालक बालिकाओं में इसका प्रभाव बखूबी देखा जा सकता है, तभी तो एक बुन्देली बेटी गणेश की पूजा करती है

बेटी पूजै लागी गौर गनेश, मनावै लागी सरसुतिया

बेटा काहा पूजे गौर गनेश, सो काहा पूजे सरसुतिया

बेटी काहा दै है गौर गनेश, सो काहा दैहै सरसुतिया

बेटी घर दे है गौर गनेश, सो बर दइहै सरसुतिया '  
लक्ष्मी जी को मनाने के लिए लक्ष्मी गीत इस तरह से गाया जाता है-  
अंगनवा में खेले लक्ष्मी महारानी ।

लक्ष्मी महारानी, वो विष्णु की रानी । '  
नवदुर्गा :-चैत्र और क्वार में नवदुर्गा महोत्सव मनाया जाता है । नौ दिन तक लोग व्रत एवं पूजा करते हैं । माता की भेंट व भजन गाये जाते हैं ।

सुमिर-सुमिर ज्वाला तेरी जस गाऊँ चरन छोड़ कहीं जाऊँ मोरी माय  
कार्तिक स्नान भी होता है, इसमें एक माह तक महिलाएँ कार्तिक स्नान-व्रत करती हैं । व्रत रखने वाली स्त्रियों को कातक्वारी कहा जाता है । घर से जलाशय तक जाते समय वे गीत गाती हैं, पूजन के समय राधाकृष्ण से संबंधित गीत गाये जाते हैं ।

उठौ मेरे हरि जु बड़े भुनसारे  
गैयों छोरो बड़े सकारे  
उठौ मोरे हरि जू दानुन कर लो  
दातुन करके कलेऊ कर लो '

सुअटा- सुअटा का त्यौहार लड़कियाँ मनाती हैं । नवरात्र में मनाए जाने के कारण इसे नौरता (नवरात) भी कहा जाता है । यह त्यौहार गौरी की पूजा का है । यह एक पर्वतात्मक खेल है जिसमें शिव पार्वती के प्रति आस्थावान कुमारियाँ रोज शिव-पार्वती की मिट्टी की मूर्तियाँ बनाती हैं कि 'सुअटा' नामक कोई राक्षस कुमारियों को पीड़ित करता था । उससे मुक्ति पाने के लिए शिव-गौरी पूजन प्रारंभ हुआ । सुअटा का जो पूजा-स्थान बनाया जाता है, वह इस प्रकार बनाया जाता है कि दीवार का सहारा मिल जाए । दीवार के सहारे लगभग दो फुट लम्बी, दो फुट ऊंची चौतैया (चबूतरा) को ढलवाँ रूप दिया जाता है जिसमें तीन तरफ नीचे से ऊपर की ओर नौ सीढ़ियाँ बनाई जाती हैं । छोटी-छोटी सीढ़ियों के कारण दीवार के सहारे वाली तरफ ऊपर बहुत छोटा स्थान रहता है । दीवार में दैत्य, सूर्य और चन्द्र की आकृतियाँ बनाई जाती हैं । दैत्य की आकृति सुअटा की प्रतीक होती है और सूर्य चंद्र उससे रक्षा करने वाले दो भाईयों के प्रतीक होते हैं ।

नारे सुअटा, गौरा बाई नेरा तौरा नार्ये  
तो नैयों बेटा नौ दिना  
नारे सुअटा, माई दसरय खों परना परे  
परना परें मेड़े लड़ें  
नारे सुअटा, माई लड़ गए बरिया झोरा  
बदिया झोरा झाड़ा झड़े ।  
नारे सुअटा, हमाय, सूरज कांहाँ जांय  
तौ सूरजा की मैया जो कयें, नारे सुअटा माई उन विन भोर न होय  
तो ओड़ें कारी कामरी  
नारे सुअटा, तो बेंचों कारी गाय । "

बराबरसात- ज्येष्ठमास की अमावस्या को सुहागिन स्त्रियाँ इस व्रत का पारायण करती हैं । इस व्रत की पूजन पद्धति में सात अंक का विशेष महत्व होता है । इस व्रत की एक क्रिया है जिसमें सुहागिन स्त्री की ओली में सात मालपुए डाले जाते हैं जो कि इस बात के द्योतक हैं कि उत्तेजना, शांति, क्रूरता, मैत्री, अस्मिता, विलासिता, परिश्रम आदि सातों भावनात्मक कृत्य सूर्य रश्मि के सातों रंगों के साथ मिलकर शुभ श्वेत वर्ण का ऐसा सामन्जस्य स्थापित करें, कि सम्पूर्ण समाज श्वेत रंग की धवलता सा स्वच्छ व पवित्र हो जाये । इस व्रत के माध्यम से सुहागिन स्त्रियों को पतिव्रत की शिक्षा मिलती है क्योंकि हिन्दू संहितानुसार पतिव्रत सती के सम्बंध में कहा गया है ।

“पृथिव्यां यानि तीर्थानि सती पादेषु तान्यपि  
तेजश्च सर्वदेवानां मुनानां च सतीसु वै  
सतीनां पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा । ”

नागपंचमी-श्रावण शुक्ल पंचमी को नागों के आवाहन द्वारा यह पर्व मनाया जाता है । इस दिवस पर स्त्रियाँ अपने घर के दरवाजे पर नागों को अंकित कर, उनका पूजन अर्चन करती हैं ।

घुड़िला बांधौ डार, फेरि बगिया में आये  
धरियो रौंस में पौऊ, झपटि कारे ने हो खाये । "

हरछट-भाद्रकृष्ण षष्ठी को यह व्रत महायोगी भगवान श्रीकृष्ण के बड़े भाई हलायुध धारण करने वाले बलराम जी के जन्मोत्सव के रूप में मनाया जाता है । इस दिन स्त्रियाँ व्रत रखती हैं तथा इस व्रत में 'जोता बोया' हुआ अन्न ग्रहण नहीं किया जाता है । स्थूल कोष-स्वाद भार से युक्त होता है, सूक्ष्म कोष-प्रभाव व गुण युक्त होता है तथा कारण कोष-संस्कार से युक्त होता है । अस्तु जैसा अन्न होगा वैसे ही संस्कार होंगे । अतः प्रकृति के समीप पहुँचने के लिए प्रकृति के संस्कार से युक्त प्राकृतिक रूप में उपजे अन्न को ही इस व्रत में ग्रहण किया जाता है ।

अखती-वैसाख सुदी तृतीया को यह पर्व बुन्देलखण्ड में विशेष उल्लास के साथ नारी समाज के बीच मनाया जाता है । इस दिवस को त्रेता युग की आदि तिथि भी मानते हैं । इसी तिथि को कामदेव की पत्नी रति की स्तुति से प्रसन्न होकर शंकर भगवान ने कामदेव और रति के प्रेम को अक्षय बने रहने का आशीर्वाद दिया था । अतः इस दिन जो भी कार्य किया जाता है वह अक्षय होता है ।

अखती खेलन कैसे जाऊँ री बरा तरे मोरे लिबऊआ

पैलऊ लिबऊआ नौआ जी आओ, नौआ के संग नई जाऊँगी  
दूजे लिबऊआ ससुरा जी आओ, ससुरा के संग नई जाऊँगी  
तीजे लिबऊआ देवरा जी आओ, देवरा के संग नई जाऊँगी  
चौथे लिबऊआ राजा जी आये, राजा के संग चली जाऊँगी "

मामुलिया-जेठ मास की तपती गर्मी के बाद असाढ़ मास की रिमझिम बूंदों से बुन्देलखण्ड की पथरीली भूमि पर मुक्त आनन्द की एक ऐसी निर्मल सरिता प्रवाहित होती है, जिसमें समूचा बुन्देलखण्ड रसमय मधुरता एवं प्रेम से सराबोर हो उठता है । इसी वातावरण से उन्मुक्त मुस्कान के साथ बुन्देली किशोरियाँ यह मामुलिया का खेल खेलती हैं । इस खेल में बबूल अथवा बेर की एक कटीली डाल को लेकर यहाँ की किशोरियाँ उसे विभिन्न प्रकार के फूलों से सजाती हैं और गाती जाती हैं ।

ल्याइयो ल्याइयो रतन जड़े फूल, सजइयो मोरी मामुलिया ।  
ल्याइयो ल्याइयो गेंदा हजारी के फूल सजइयो मोरी मामुलिया ।  
ल्याइयो ल्याइयो चम्पा चमेली के फूल, सजइयो मोरी मामुलिया ।  
ल्याइयो ल्याइयो घिया तुरैया के फूल, सजइयो मोरी मामुलिया ।  
ल्याइयो ल्याइयो सदा सुहागिन के फूल, सजइयो मोरी मामुलिया । । "

होली, दीवाली एवं दशहरा तो सभी मनाते हैं । भाद्र शुक्ल सप्तमी को बुन्देलखण्ड की महिलाएँ संतान सातों का और भाद्र कृष्ण शष्ठी को हरछट का व्रत करती हैं । कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गोवर्धन पूजा प्रचलित है । असाढ़ मास की पूर्णों को कुनकुनी पूर्णों, श्रावण कृष्ण अमावस्या को हरी ज्योति पर्व भी मनाया जाता है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

- 1 पृष्ठ संख्या-111- बुन्देली भाषा और साहित्य- सं. अशोक शर्मा
- 2 पृष्ठ संख्या-6-बुन्देलखण्ड की प्रमुख महिला कथाकारों के लेखन में सामाजिक स्वरूप (शोध प्रबन्ध- जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर )-डॉ. मनोज भार्गव
- 3 पृष्ठ संख्या-9- बुन्देली भाषा और साहित्य सं. अशोक शर्मा
- 4 यही पृष्ठ 12
- 5 पृष्ठ संख्या-2- बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक उपन्यासों का अनुशीलन (शोध प्रबन्ध- जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर )- डॉ. रामश्री दसॉरिया
- 6 पृष्ठ संख्या-31-बुन्देलखण्ड की संस्कृति-डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही'
- 7 पृष्ठ-96-बुन्देली बंसत पत्रिका अंक 12, 17 फरवरी 2011 (बुन्देली विकास संस्थान) सं. डॉ. बहादुर सिंह परमार
- 8 पृष्ठ-5-साहित्य सागर (सत्-साहित्यिक-शोध मासिकी)-अक्टूबर 2011 सं. डॉ. कमलकांत सक्तीना

- 10 पृष्ठ संख्या 40-41-वही  
 11 श्लोक संख्या-3-बृहत्संहिता-वराहमिहिर कृत-सती महात्म श्लोक  
 12 श्लोक संख्या-55-मनुस्मृति- तृतीय अध्याय  
 13 पृष्ठ संख्या-98-बुन्देली लोक साहित्य-डॉ. रामस्वरूप श्रीवास्तव  
 14 पृष्ठ संख्या-40-बुन्देली बाल लोक साहित्य-डॉ. हरिमोहन पुरवार

## मानव मूल्यों के सन्दर्भ में जहीर कुरैशी की गजलें

डॉ. राजकुमार अग्रवाल

प्रवक्ता, श्री गणेश कालेज, कासगंज (उ.प्र.)

बीसवीं शताब्दी के हिन्दी गजलकारों में स्व० दुध्यांत कुमार के बाद जहीर कुरैशी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अनेक पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त इनके दो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं- 'एक टुकड़ा धूप' (1979) तथा 'घोंदनी का दुःख' (1986)। इन संकलनों की गजलों में आधुनिक जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। कवि ने समकालीन परिवेश में आम आदमी की समझौता से लड़ाई और लड़ाई से समझौता तक की दूरी को मापने का सुन्दर तथा सफल प्रयास किया है। गजलकार ने अपने दावे के अनुसार, "इनमें शब्दों से उस दर्पण का काम लिया है, जो आदमी को न केवल उसकी शक्ल दिखाने का काम करता है, वरन् उसे अपनी मुखाकृति की मूल रेखाओं के प्रति आस्थावान् भी बनता है।"<sup>1</sup>

जहीर कुरैशी ने अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हेतु गजल को ही माध्यम क्यों बनाया? इस प्रश्न के उत्तर में वे कहते हैं- "कविता मेरे लिए न तो बुद्धि-विलास का साधन रही है और न ही कविता को मनें पेट भरने का काम साँपा है। ये दोनों स्थितियाँ कवि को कविता के प्रति ईमानदार नहीं रहने दे सकती। कविता मेरी उस तिलमिलाहट की अभिव्यक्ति है, जो वर्तमान जीवन परिवेशमें बिखरी हुई विसंगतियों तथा विदूषताओं के कारण मुझमें बूँद-बूँद जमा होती रहती है। ऐसे ही जीवंत क्षणों का स्पन्दन ये मेरी गजलें हैं। कविता में भी गजल का फार्म मनें इसलिए चुना, क्योंकि इस 'फार्म' में कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक सरल बात कहने की सहूलियत मुझे मिली। गजल का तो एक शेर भी एक पूरी कविता होती है। वर्तमान सन्दर्भों में उस विधा में नये से नये प्रयोग करने की भी खूब गुंजाइश लगती है मुझे।"<sup>2</sup>

जहीर कुरैशी की गजलों की भाषा सहज, किन्तु तीखी है और उनमें सामाजिक व्यंग्य एक क्रूर हँसी हँसता दिखाई पड़ता है। कवि ने अपनी गजलों में अपने भीतर की पीड़ा और चुभन की, समाज में फैली विसंगतियों और विदूषताओं, व्यक्ति-व्यक्ति के बीच रह गये औपचारिक सम्बन्धों और आम आदमी की जिन्दगी के आँचल में पल रहे अभावों के शिशु की असहनीय पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। यथा-

"कैसे टकरा जायेंगे, अन्याय-आँधी से,

वृक्ष बालू में गड़े हैं, इसलिए चुप हैं।"<sup>3</sup>

इसी प्रकार नये-नये प्रतीकों एवं बिम्बों के माध्यम से भी कवि ने आम आदमी की जिन्दगी को व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। इन प्रतीकों एवं बिम्बों में मानवमूल्यों के मधुर स्पन्दनों की सहज अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। एक शेर दृष्टव्य है-

"अब कठिन हो गयी जिन्दगी,

आलपिन हो गयी जिन्दगी।"<sup>4</sup>

वस्तुतः जिन्दगी का आलपिन की भाँति चुभनयुक्त हो जाना अवश्यम्भावी है, यदि मानवमूल्यों के शैथिल्य को न रोका गया। इस तरह कथ्य और शिल्प का मणिकांचन संयोग जहीर कुरैशी की गजलों में सन्निहित है। इसीलिए डॉ. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' यह कहने में संकोच नहीं करते कि-"गुणात्मक स्तर पर जहीर ने गजल की जमीन को समतल और उर्वरा बनाया है।.....जहीर भाई ने हिन्दी, हिन्दूस्तानी और उर्दू की गजलों के नाम पर खड़ी की गयी दीवारों को बहुत तर्क संगत और प्रभावी शब्दों के माध्यम से व्यंजित किया है। ये गजल के लिए जहाँ कुछ अनावश्यक रुढ़ियों से मुक्ति की बात करते हैं, वहीं उसके लिए नई गजलियत के नियमों और अनुशासन की पेशबन्दी भी करते हैं। ..... इन संकलनों की सभी गजलों को आज की आम जिन्दगी का आईना कहा जा सकता है, जिसमें हम, आप और सभी अपना-अपना अक्स उभरता हुआ देख सकते हैं। बेरहम वक्त के खूनी सवालों से जूझते हुए कमजोर इंसान की अन्दरूनी ताकत का इजहार करती हैं ये गजलें। कस्बों, नगरों और महानगरों के भयावह दमघोटू वातावरण के भीतर जीते हुए आप इन गजलों को पढ़कर एक विशेष प्रकार का क्षोभ, आक्रोश, आश्वस्त और सुकून अनुभव करेंगे, यही इनकी सबसे बड़ी विशेषता है।" स्वयं जहीर कुरैशी ने भी अपनी गजलों के विषय में कहा है कि- "ये वर्तमान जीवन परिवेश में आज के आम आदमी की व्यथा एवं संघर्ष-कथा की संवदेनशील

अभिव्यक्ति हैं, जो तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से कहीं भी आँख चुराने की कोशिश नहीं करती।”

उनके संग्रह 'चौदनी का दुःख' की पहली गज़ल का पहला शेर देखिये-

“किरसे नहीं हैं ये किसी विरहन की पीर के।

ये शेर हैं-अंधेरों से लड़ते 'जहीर' के।।”

आज के जीवन में भटकाव तथा दिग्भ्रान्ति पर कवि की चिन्ता सर्वत्र व्याप्त है। मानवमूल्यों के हास पर उनका सीधा आक्रमण दर्शनीय है-

“धूप, मिट्टी, हवा को भूल गये,

बीज अपनी धरा को भूल गये।

जिन्दगी की मरीचिकाओं में,

लोग अपनी दिशा को भूल गये।”

वस्तुतः बीज के लिए जैसे धूप, मिट्टी, वायु आदि तत्व जीवन मूल्य हैं, उसी प्रकार अपनी सभ्यता, संस्कृति, परम्परा, कला हमारे जीवन मूल्य हैं। इस दृष्टि से कवि ग्रामीण परिवेश के मानव मूल्यों का सतत पक्षधर रहा है। महानगरीय जीवन की नीरसता उसे क्षुब्ध करती है। कवि तो प्यार का परिन्दा है, प्यार की भाषा और परिभाषा का आकांक्षी। अतएव वह कहता है-

“जिस जुवाँ पर चढ़ गयी अधिकार की भाषा,

उसको फिर आती नहीं है, प्यार की भाषा।

ये महानगरीय जीवन का करिश्मा है,

भूल बैठे हम सुखी परिवार की भाषा।

भोम की गुड़िया समझ लेती है छुअनों से,

साथ में लेटे हुए अंगार की भाषा।”

श्री शमीम हनफी ने अपनी पुस्तक 'महाकवि गालिब की शायरी' में इस गवेशणात्मक तथ्य का उल्लेख किया है कि “अठारहवीं सदी महाकवि 'मीर' से पहचानी जाती है। उन्नीसवीं सदी 'गालिब' की सदी है और बीसवीं सदी महाकवि 'इकबाल' से जोड़ी जाती है। यह तीन सदियों की अलग-अलग आवाजें हैं।” किन्तु यहाँ यह रेखांकित करना सर्वथा समीचीन है कि बीसवीं शताब्दी के शायरों की प्रथम पंक्ति के गज़लकार हैं जहीर कुरैशी। उनकी अपनी अलग पहचान है। यह तथ्य उन्हीं के शब्दों में - “मैं अपनी गज़ल को हिन्दी प्रकृति की गज़ल इसलिए कहता हूँ - क्योंकि उसका स्वभाव, उसकी भाव भंगिमा, उसकी कहन, उसका मुहावरा हिन्दी का है। यदि और भी व्यवस्थित शब्दों में अपनी बात कहूँ तो मैं गज़ल को हिन्दी में सोचता हूँ-उसके बिम्बों, प्रतीकों, उसकी कहन सहित। फलतः भाषा के स्तर पर मेरी हिन्दी प्रकृति की गज़लों मध्यम वर्ग का अनुसरण करती दिखाई देती हैं-जो न तो आपको देवनागरी में छपी हुई उर्दू मुहावरों की गज़लें लगेंगी, न ही उनकी भाषा गूढ़ तत्सम शब्दावली ही होगी। असल में, मेरी गज़लों की आत्मा है-उनकी देशज कहन, उनका हिन्दी मुहावरा।”

हिन्दी गज़ल के क्षेत्र में सम्प्रति लगभग 300 से अधिक गज़लकार विद्यमान हैं, किन्तु उक्त श्रेणी के गज़लकार गिने-चुने ही हैं, जिस कोटि में जहीर कुरैशी आते हैं। महाकवि 'गालिब' ने एक शेर कहा था-  
“बसकि दुश्वार है हर काम का आसां होना,

आदमी को भी मयस्सर नहीं इन्सां होना।”

इस दृष्टि का पूर्ण परिपाक जहीर कुरैशी की गज़लों में मिलता है। वे मानवमूल्यों के सच्चे उद्गाता हैं। पदे-पदे वे उन मूल्यों की वकालत करते हैं। उनकी मान्यता है कि सज्जन के साथ व्यंग्य-वाणों का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए-

“बर्फ-से आदमी को भी आखिर,

व्यंग्य-वाणों ने तिलमिला डाला।

एक तीली दिया जलाती है,

एक तीली ने घर जला डाला।”

सच बात है। एक ही उपादान है-तीली। उससे दीप-प्रज्वलन भी होता है और दुष्प्रयोग की अवस्था में गृह-मन्दिर को भस्मसात् भी कर देती है अतएव 'आत्मवत् सर्वभूतेशु' के सिद्धान्त को अंगीकार करके

मानसा-वाचा-कर्मण किसी को दुःख न दे। क्योंकि दुःख तो दुःख है। उसकी टीस की अनुभूति सभी को समान रूप से होती है-

“आपका, मेरा, हर किसी का दुःख,

एक जैसा है आदमी का दुःख।

पीर अपनी पहाड़ लगती है,

धूप क्या जाने चौदनी का दुःख।”

आज पूरा विश्व युद्धोन्माद से युक्त दिखाई दे रहा है। ईरान, अफगानिस्तान, इजराइल, चीन, भारत पाकिस्तान-आदि सीमा देशयुद्ध की विभीषिका से त्रस्त हैं। कुछ आक्रामक मुद्रा में हैं; कुछ बचाव की मुद्रा में। किन्तु स्थिति बहुत भयावह है। इसीलिए गज़लकार का हृदय क्षुब्ध हो उठता है-

“विष असर कर रहा है किशतों में,

आदमी मर रहा है किशतों में।

एटमी अस्त्र हाथ में लेकर,

आदमी डर रहा है किशतों में।”

आदमी का यह डर अकारण नहीं है। हीरोशिमा-नागासाकी की त्रासदी आज भी मन को झकझोर देती है। जो बच्चे आज भी अपंग पैदा हो रहे हैं और जो असंख्य अपंग पैदा हो चुके हैं - वे जीवन का कौन सा अभिशाप नहीं झेल रहे? उनका क्या दोष था? किन्तु व्यक्तियों की ही क्या, राष्ट्रों की अहम्मन्यता का विषाक्त परिणाम सामने हैं। अन्ततोगत्वा युद्ध की परिणति तो मानव-विनाश के रूप में ही होनी है, हत्या तो मानवमूल्यों की ही होनी है। अतएव मानव का, ज्ञान-विज्ञान का यह पुनीत दायित्व हो जाता है कि नित्य नवीन आविष्कारों से मानवता का शृंगार किया जाय, न कि घातक हथियारों के भण्डारण में वैज्ञानिक अपनी मेधा का विनियोग करें। मानव सृजनशील बने, कलात्मक अभिरुचियों को उत्कर्ष मिले, सत्य-शिवसुन्दरम् की प्राण प्रतिष्ठा हो-तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना की निष्पत्ति स्वयं ही हो जायेगी-

“ये किस शिल्पी के हाथों का करिश्मा है,

जो जीवित हो उठा बेजान पत्थर तक।”

वस्तुतः पाषणशिला जीवन्त कब मानी जाती है -जब किसी शिल्पकार के द्वारा उसे रूपाकार प्रदान किया जाता है। इतना ही नहीं, उक्त रूपाकृति जब देवता के रूप-स्वरूप को ग्रहण करती है, तब वह पूजानुष्ठानों की अधिकारिणी हो जाती है। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति श्रेष्ठतर मानवमूल्यों से सम्पृक्त होता है, तो विश्ववन्दनीय बन जाता है। किन्तु शिशुओं एवं नारियों, पशु-पक्षियों के प्रति आज क्रूर व्यवहार मानव को कहाँ ले जायेगा? करुणा हमारे जीवनमूल्यों में अन्यतम है, आज उसके स्थान पर क्रूरता का ताण्डव देखिये-

“बातों से-सिर्फ बातों से ऐसा किया गया,

लोगों के सामने उसे नंगा किया गया।

वो भीख माँगता ही नहीं था-इसीलिए,

उस फूल-जैसे बच्चे को अन्धा किया गया।”

सोचिए, इस दारुण दृश्य को देखकर मानवता सिर धुनती होगी, और दानवता क्रूर अट्टहास करती होगी। कवि का उक्त दृश्य काल्पनिक नहीं है, ऐसा होता है, होता रहा है। सचमुच, उस शैशव पर क्या धीती होगी? करुणावतार भगवान् महावीर के देश भारत में हिंसा का यह रूप, वैदिक ऋषियों की पावन ऋचाओं से गुंजायमान इस धराधाम पर ऐसे कुकृत्य! प्रातः वेला में जहाँ- 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' जैसी पावन ऋचाओं का उद्घोष सम्पूर्ण वातावरण को पावनता का सन्देश देता था- वहाँ क्रूरता का ताण्डव कवि को आघात पहुंचाता है, क्योंकि भारतभूमि पर ऋषियों के आदर्शों और उपलब्धियों को हम विस्मृत जो करते जा रहे हैं। प्राचीनकाल से ही ऋषियों ने अपने ज्ञान-विज्ञान और आविष्कारों से विश्व को आश्चर्यचकित कर रखा है। सर्वाधिक प्राचीन आविष्कारों में 'अग्नि' और 'शून्य' दो क्रान्तिकारी आविष्कार थे। इसीलिए जहीर कहते हैं-

“अंकों के अर्थ 'शून्य' ने आकर बदल दिये,

भारत से सारे जग को 'सिफर' का पता लगा।

मन्त्रों की शक्ति पर मुझे विश्वास हो गया,

जब से मुझे गजल के असर का पता चला।<sup>10</sup>

इस रूप में गजलकार प्रांजल ज्ञान का पक्षधर है, न कि अहंकार पैदा करने वाले ज्ञान का। इसीलिए उसे बुद्धिजीवियों का अनावश्यक टकराव या कि मतभेद पसन्द नहीं है। वह साफतौर पर आगाह करना चाहता है-

“हर कहानी परेशान है,  
जिन्दगानी परेशान है।  
पोथियों के अहंकार से,  
मूढ़ ज्ञानी परेशान है।  
पात्र का रूप धरते हुए,  
रोज पानी परेशान है।  
शकल ‘ब्रह्माण्ड’ की सोचकर-  
बुद्धिजीवी परेशान है।<sup>11</sup>

इसके अतिरिक्त भौतिकता के दुष्प्रभाव<sup>12</sup>, साम्प्रदायिक वैमनस्य<sup>13</sup>, महानगरीय क्लब-संस्कृति<sup>14</sup>, राजमहलों-हवेलियों की विलासिता<sup>15</sup>, राजनीतिक मूल्यहीनता<sup>16</sup>, तलाक<sup>17</sup>, नारी-शोषण<sup>18</sup> जैसी स्थितियों ने मानवमूल्यों को धराशायी कर दिया है। कवि इनके समाधान हेतु सतत जागरुक करता चलता है। कवि कहता है कि भगवान् का दिया हुआ जो ‘प्रज्ञा’ तत्व है, उसे अहर्निश जागृत रखना होगा। कुछ शेर देखिये-

“मैंने चाहा तो मुझको खुशी ही मिली,  
जिन्दगी, हर जगह जिन्दगी ही मिली।  
क्रोध में, पाप में, नींद में, ख्वाब में,  
अपनी ‘प्रज्ञा’ मुझे जागती ही मिली।  
आपके ‘राम’ की, मेरे ‘रहमान’ की,  
शकल मुझको सदा एक-सी ही मिली।<sup>19</sup>

किन्तु, यह सब ‘मुट्ठी में आग बांधकर चलने’ जैसा है। यह कठिन है, असम्भव कदापि नहीं। निष्कर्षतः, कवि के ही शब्दों में उपसंहार करना समीचीन होगा-

“निश्चय के साथ घर से निकलना कठिन तो है,  
मुट्ठी में आग बांध के चलना कठिन तो है।  
संगीत-साधना में जो ‘बैजू’ न बन सका,  
पत्थर का, उसके सुर से, पिघलना कठिन तो है।  
दुनियाँ के लाभ के लिए, नदियों की शकल में,  
हिम-गिरि के अंग-अंग सा गलना कठिन तो है।  
मरुथल में भी जो फूले-फले हैं, उन्हें नमन,  
मरुथल के बीच फूलना-फलना कठिन तो है।<sup>20</sup>

सन्दर्भ :-

1. जहीर कुरैशी : एक टुकड़ा धूप, पृ. 7-8.
2. वही, पृ. 8.
3. वही, पृ. 23.
4. वही, पृ. 47.
5. डॉ. देवेन्द्र शर्मा ‘इन्द्र’ : चाँदनी का दुःख, लैप-1.
6. जहीर कुरैशी : चाँदनी का दुःख, पृ. 2.
7. वही, पृ. 15.
8. वही, पृ. 16.

9. वही, पृ. 22.

10. शमीन हनफी : महाकवि गालिब की शायरी, पृ. 5.
11. जहीर कुरैशी : चाँदनी का दुःख, पृ. 8.
12. डॉ0 कुँवर बेचैन : हिन्दी गजल पंचदशी-1, पृ. 7.
13. गालिब : गालिब की शायरी, पृ. 16.
14. जहीर कुरैशी : चाँदनी का दुःख, पृ. 17.
15. वही, पृ. 19.
16. वही, पृ. 18.
17. वही, पृ. 21.
18. वही, पृ. 25.
19. ऋग्वेद : शिवसंकल्पसूक्त, मन्त्र सं.।
20. जहीर कुरैशी : चाँदनी का दुःख, पृ. 28.
21. वही, पृ. 29.
22. वही, पृ. 32.
23. वही, पृ. 33.
24. वही, पृ. 35.
25. वही, पृ. 36.
26. वही, पृ. 38, 41.
27. वही, पृ. 40.
28. वही, पृ. 44.
29. वही, पृ. 42.
30. वही, पृ. 43.

## स्त्री विमर्श के अवधारणात्मक पहलू

डॉ. प्रवीण चन्द

व्याख्याता-हिन्दी, एस.एस. जैन सुबोध महाविद्यालय, जयपुर

स्त्री विमर्श आज के साहित्य में व्यक्त उस विचारधारा का पर्याय है जिसके तहत मौजूदा सामाजिक परिवर्तनों और विकास के दौर में स्त्री को एक व्यक्ति के रूप में उसका वास्तविक दर्जा तथा हक दिए जाने की पुरजोर कोशिश की जा रही है। धार्मिक, सांस्कृतिक रूढ़ियां, सामाजिक वर्जनाएं और परम्पराएं जो पुरातन और अप्रासंगिक हैं, आज का परिवेश भी आधुनिक स्त्री को जकड़े हुए है। वर्तमान जीवन स्थितियों में उनकी सार्थकता का निरीक्षण, परीक्षण और आलोचना करते हुए युगानुरूप उनमें नवीन परिवर्तनों की प्रस्तावना करने का प्रयास 'स्त्री विमर्श' है।

समाज में स्त्री प्राचीन समय से ही उपेक्षिता के रूप में रही है इसके संबंध में जैव वैज्ञानिकों की दृष्टि में स्त्री उपेक्षित क्यों? इसका कारण स्पष्ट करते हुए सीमोन दा बोउवार कहती है "मानव जाति में स्त्री की गुलामी तथा उसकी विभिन्न शक्तियों की सीमाबद्धता एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है। उसका शरीर उसको जगत् में स्थितिग्रसित करता है किंतु केवल शरीर ही उसको परिभाषित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। ऐसा कोई जीवित प्राणी नहीं, जो अपने कार्यों के माध्यम से समाज की कोख से अपने को प्रकट न करे। जीव-विज्ञान औरत के संबंध में उठाए गए प्रश्नों का सम्पूर्ण उत्तर नहीं दे पाता। प्रश्न उठता है कि औरत अबला क्यों इस समाज में उसकी स्थिति गौण क्यों है? हमें इस बात का अन्वेषण करना होगा कि इतिहास के दौरान स्त्री की प्रकृति कैसे प्रभावित होती गई। हम इस बात से सरोकार रखना चाहते हैं कि क्यों मानवता ने 'इस' मानव-मादा का निर्माण किया।"

स्त्री-विमर्श साहित्य में नारी चिन्तन का महत्वपूर्ण पहलू है। इसका उद्देश्य स्त्री के प्रति हो रहे अन्याय को उजागर कर स्त्री को परम्परागत बंधनों के घेरे से निकाल कर 'मानव' के रूप में प्रस्तुत करना रहा है। यह विमर्श समाज में व्याप्त पुरुष मानसिकता व पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध करता है।

आधुनिक युग में स्त्री को समानता का अधिकार दिए जाने के लिए विश्व में अनेक आंदोलन हुए। जिनका मानना रहा है कि स्त्रियों की दयनीय स्थिति के पीछे पितृसत्तात्मक व्यवस्था ही मूल कारण है, जिसने समाज में स्त्रियों की अधीनता को स्थापित करते हुए उसे दोगले दर्जे का नागरिक बना दिया। स्त्री की इस दयनीय स्थिति को स्पष्ट करते हुए सीमोन दा बोउवार लिखती है कि "एक अर्थ में स्त्री का सम्पूर्ण जीवन प्रतीक्षा का है। वह तात्कालिक अंतर्वर्ती स्थिति में बंधी रहती है। उसका अस्तित्व हमेशा दूसरों के हाथों में रहता है। वह हमेशा पुरुष की स्वीकृति और श्रद्धा की प्रतीक्षा करती है। वह प्रेम की प्रतीक्षा करती है। वह अपने प्रेमी तथा पति द्वारा प्रशंसा और कृतज्ञता की प्रतीक्षा करती है। उसे अपने सहारे के लिए किसी की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। यह सहारा उसे पुरुष प्रदान करता है। आर्थिक रूप से चूंकि स्त्री पुरुष पर आश्रित रहती है इसलिए पुरुष ही उसका सम्पूर्ण अस्तित्व बन जाता है।" पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था इस व्यवस्था पर आधारित होती है कि स्त्रियां पुरुषों से हीन हैं और पुरुष उनसे श्रेष्ठ हैं, इसीलिए स्त्रियों पर पुरुषों का नियन्त्रण जायज है। आज स्त्री-विमर्श की लड़ाई आधी आबादी को मनुष्य का दर्जा दिलाने की लड़ाई है।

पश्चिम में उदार स्त्रीवादी आंदोलन 1960 में शुरू हुआ जिनमें वेला अबलेक्स बेट्टी फ्रीडा, सीमोन दा बोउवार, ऐलिजाबेथ हाउसमैन आदि प्रमुख हैं। इनके अनुसार "स्त्री जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी कर सकती है, बशर्ते समाज उसे पुरुषों के बराबर सुविधा प्रदान करे।"

इनका प्रमुख उद्देश्य पितृसत्तात्मक व्यवस्था को खत्म कर स्त्री को अधिकार व सुविधाएं दिलाने के पक्ष में रहा है। जाईसा आरजेनेस्टाइन के अनुसार "व्यक्ति स्वतंत्रता के प्रसंग में उदारवादी विचारधारा केवल बाह्य दुनिया पर लागू होती है। परिवार में अब भी पितृसत्ता की दमनकारी नीतियां बरकरार हैं। अतः हमें पारिवारिक संस्था के रूप में बची हुई पितृसत्ता को खत्म करना होगा।"

स्त्री चेतना और अस्मिता के संदर्भ में स्त्रीवादी बेट्टी फ्रीडा ने कहा है "गृहणी या घरेलू औरत इस समाज में परजीवी है। वह अर्धमानवों की कतार में खड़ी है, उसमें वैचारिक प्रतिबद्धता का अभाव है, जरूरत है स्त्री घर से बाहर निकले, दुनिया देखे और अपनी परिस्थिति पर विचार करे।"

स्त्री के सर्वहारा व्यक्तित्व को चित्रित करने में मार्क्सवादी विचारधारा भी प्रमुख रही है। हालांकि मार्क्स स्त्रीवादी नहीं थे, परन्तु स्त्री की समाज में जो प्रतिकूल परिस्थिति थी उस पर उन्होंने निश्चित रूप से विचार किया था। सरला माहेश्वरी के अनुसार "मार्क्स ने कई स्थानों पर समाज में नारियों की स्थिति को सामाजिक प्रगति के सूचकांक के रूप में देखने की बात कही थी। इसी से पता चलता है कि नारीवादी न होने पर भी नारी मुक्ति के विरोधी नहीं थे।"

इसीलिए स्त्रीवादी विचारधारा में मार्क्स के विचारों का अपना अलग-अलग महत्व है। मार्क्सवादी स्त्रीवाद में एंगेल्स के विचार महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस मामले में खास तौर पर एंगेल्स की पुस्तक 'परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' नारीवादी विमर्श में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान के रूप में देखा जा सकता है।"

इस पुस्तक में स्त्री की स्थिति के संदर्भ में वैज्ञानिक आधार के माध्यम से प्रकाश डालते हुए स्त्रियों से संबंधित अवधारणाओं को स्पष्ट किया गया है। इनके अनुसार स्त्री आर्थिक असमानता के कारण गुलामी का जीवन जी रही है। स्त्री की स्थिति परिवार में मजदूर की तरह होती है। परिवार में पुरुष के हाथ में सभी आर्थिक सूत्र केन्द्रित होने के कारण स्त्री का परिवार में निम्न स्थान होता है।

मार्क्सवादी स्त्रीवाद ने स्त्री शोषण के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट करते हुए कहा है कि शोषित वर्ग की स्त्री को मुक्त करने का ध्येय सामने रखकर ही स्त्री मुक्ति का ध्येय पूर्ण हो सकता है।

"जैसे-जैसे सर्वहारा समाज का विस्तार होगा, नारी का रास्ता प्रशस्त होगा तथा सामाजिक क्रांति के जरिए जब पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था समाप्त होगी तो उसके साथ ही पुरुष श्रेष्ठता की दीर्घकालीन परम्परा की जड़ें भी पूरी तरह समाप्त हो जाएगी।"

मार्क्सवादी स्त्रीवाद स्त्री के शोषण के आर्थिक पहलू पर विशेष रूप से प्रकाश डालता है। इस संबंध में प्रभा खेतान का कथन दृष्टव्य है - "प्रत्येक आंदोलन का अपना राजनीतिक आधार होता है, पर मुक्ति का संदर्भ यदि समाज है तो स्वाभाविक है कि आंदोलन का प्रमुख मुद्दा पर्यावरण या संस्कृति नहीं हो सकता। यहां नारीवाद मार्क्सवाद से अलग होते हुए भी मार्क्सवाद के काफी करीब है क्योंकि दोनों का केन्द्रीय मुद्दा श्रम है दोनों ही स्वीकारते हैं कि पूंजीवाद ने स्त्रीवाद तथा श्रमिक का शोषण किया है।"

स्त्री की आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ-साथ स्त्रीकरण की यौनवादी व्यवस्था को भी बदलना होगा। फायस्टोन का कथन है कि "स्त्री वास्तव में जन्म से स्त्रीकरण का शिकार है। स्त्री होने के लिए उसे पुरुष सत्ता का वर्चस्व स्वीकारना पड़ता है। वह सत्ता द्वारा निर्धारित होने को बाध्य है और इसी को लिंगीकरण अर्थात् जेंडराइजेशन की प्रक्रिया कहते हैं। स्त्री की योनि और उसके स्त्रीकरण में फर्क करते हुए अपनी पुस्तक 'द डॉयलेरिटिक ऑफ सेक्स' में सुलामिथ कहती है कि केवल आर्थिक या राजनैतिक संस्थाओं में सुधार लाने से ही स्त्री को दलन से मुक्ति नहीं मिलेगी। आवश्यकता है कि स्त्रीकरण की इस यौनवादी व्यवस्था को रूपान्तरित किया जाये। स्त्री को आमूल रूप से स्वयं को भी बदलना होगा। इसे ही उग्रनारीवाद की संज्ञा दी गयी।" "तमाम विरोधाभासपूर्ण संघर्षों के बावजूद पुरुष के शासन को मानने और उसकी महानता को स्वीकार करने के लिए बाध्य हैं। अपनी स्वतंत्र मान्यताओं और विकल्पों के अभाव के कारण स्त्री पुरुष के सम्मुख समर्पण के लिए बाध्य हैं। वह पुरुष द्वारा स्थापित सत्ताओं और मान्यताओं को अस्वीकार कर सकती है, पर अपनी मान्यताओं और सत्ताओं के सहारे वह पुरुष की मान्यताओं का विरोध नहीं कर सकती।"

अतः इस व्यवस्था में परिवर्तन के लिए पुरुष प्रधान व्यवस्था में परिवर्तन होना आवश्यक है तथा लिंग व वर्ग को समान रखकर अगर स्त्री मुक्ति के लिए संघर्ष किया जाए तो स्त्री मुक्ति संभव है।

"यह पुरुष सत्ता है, उसकी ताकत, जो स्त्री पर इतरलिंगी व्यवस्था को आरोपित करती है। इसी व्यवस्था के माध्यम से पुरुष अपना शारीरिक, आर्थिक और भावनात्मक वर्चस्व स्त्री पर लागू कर पाता है। पितृसत्ता ने समलैंगिक को स्त्री के लिए असंभव माना क्योंकि स्त्री कामना की व्याख्या भी पुरुष सत्ता ने अपने अनुसार ही की है। यानि पुरुष ने अपने इतरलिंगी यौन जीवन के अनुभव को स्त्री कामना पर आरोपित किया। सत्ता ने कामना के प्रसंग में स्त्री की इच्छा-अनिच्छा का सवाल ही नहीं उठाया।"

भारत में स्त्री लेखन के माध्यम से नारी चेतना को जागृत करने में सुभद्रा कुमारी चौहान व महादेवी वर्मा का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री जीवन की त्रासद स्थिति को स्पष्ट करते हुए नारी चेतना के विभिन्न आयामों को स्पष्ट किया है। महादेवी वर्मा ने स्त्री-विमर्श का महत्वपूर्ण

दस्तावेज अपनी पुस्तक 'शृंखला की कड़ियाँ' के द्वारा प्रस्तुत किया है। समाज में नारी के उचित स्थान को लेकर महादेवी वर्मा लिखती हैं कि "हमें न किसी की जय चाहिए, न किसी का प्रभुत्व, केवल वह अपना स्थान व स्वत्व चाहिए। जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग नहीं बन सकेगी।"<sup>12</sup>

स्त्रीवादी विचारधारा के संबंध में वृन्दा करात लिखती हैं कि "नारीवाद एक ऐसी विचारधारा है जिसके आधार पर महिला मुक्ति का प्रयास किया जा रहा है। इसके अनेक रूप हैं। अलग-अलग प्रवृत्तियाँ हैं, जिन्हें समय-समय पर अलग-अलग रूपों में परिभाषित किया जाता है तथा एक लक्ष्य सबसे समान है, महिला होने के नाते उसका जो शोषण किया जाता है, उसका मूल खोजा जाए और जड़ से उखाड़ फेंका जाए।"<sup>13</sup>

प्रसिद्ध चिंतक मार्क्स ने धर्म को अफीम की गोली बताया है जो व्यक्ति की चेतना को शून्य कर उसकी सोचने समझने की शक्ति को नष्ट कर देता है। स्त्री के संबंध में भी यह दृष्टिकोण पूर्ण रूप से पुष्ट होता है क्योंकि धर्म की दुहाई दे-देकर स्त्री को कमजोर करने की साजिश विश्वव्यापी है। अतीतव्य अवधारणा में 'ईश्वर' पुरुषवाचक है जो कि पुरुष प्रधान समाज का सोचे समझे षड़यन्त्र के अलावा कुछ नहीं। यह धारणा स्त्री की स्वतंत्रता में बाधक है। इस संबंध में बोउवार खुलासा करके लिखती हैं "स्त्री को स्वतंत्रता की ओर प्रेरित करती आधुनिक सभ्यता में धर्म वस्तुतः धोखे का एक साधन है। ईश्वर को धन्यवाद कि कम-से-कम स्त्री से अपनी हीनता स्वीकार करने के लिए खुलकर नहीं कहा जाता, वह भी महान् पुरुष के समान मानी जाती है। चूंकि आज अन्याय का रूप चालाकी से दबा दिया गया है और स्त्री की सर्वोपरिता की आकांक्षा को ईश्वर की ओर मोड़ दिया गया है तथा आत्माओं की महत्ता की माप केवल स्वर्ग में होती है, इसलिए पृथ्वी पर उनकी मांग अपेक्षित नहीं। स्त्री को यह विश्वास दिलाया जाता है कि वह स्वर्ग के दूतों की बहन है और उसका उद्धार परमपिता अवश्य करेंगे। यह विश्वास सहज ही उसकी हीन भावनाओं का दमन कर देता है। वह न तो स्त्री रह जाती है, न पुरुष। वह रह जाती है ईश्वर से अपने परित्राण की आकांक्षा करती हुई मात्र एक आत्मा। इसीलिए साध्वियों में हम पुरुषों की तरह दृढ़ता पाते हैं, किंतु यहां भी चाहे वे जिस किसी ऊँचाई तक पहुंची हों, पुरुष के हाथों ही जोन ऑफ आर्क तक को राख बना दिया गया। इस तरह यहां भी ईश्वर का पुरुष होना ही अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।"<sup>14</sup>

चर्चित लेखिका तरिलमा नसरीन अपनी पुस्तक 'नष्ट लड़की नष्ट गद्य' की भूमिका में लिखती हैं कि "उन सभी प्रथाओं, रीति रिवाजों का खण्डन करना चाहिए जिनके अस्तित्व का कोई तार्किक कारण नहीं होता....। परम्परा के नाते समाज में छोटी-बड़ी विषमता या अन्याय का विरोध अनिवार्य है और इसके विरोध का दायित्व सबका है।"<sup>15</sup> स्त्री मुक्ति की चाहत के बारे में बोउवार लिखती हैं कि "मुक्ति की चेष्टा सामूहिक होनी चाहिए। इसके लिए सबसे पहले स्त्री की आर्थिक स्थिति का विकास आवश्यक है। अनेक ऐसी स्त्रियाँ हुई हैं और अब भी हैं, जो अपना उद्धार अपने ही प्रयत्नों से करती हैं। वे इस विश्व में अपना अस्तित्व सिद्ध करने की चेष्टा करती हैं या यह कहा जाए कि वे विश्वव्यापी स्थिति में सर्वोपरि उठना चाहती हैं, स्त्री की अंतिम चेष्टा बंदीगृह को स्वर्ग की गरिमा में बदलने की है। अब वह अपनी दासता को उच्च स्वतंत्रता में परिणत करना चाहती हैं। यह स्थिति कभी हास्यास्पद बन जाती है, कभी विषादपूर्ण। आत्ममुग्धा स्त्री हो या प्रेम में रत स्त्री या रहस्यवादी स्त्री - सबकी स्थिति एक सी है।"<sup>16</sup>

स्त्री-विमर्श के लेखन में परम्परागत सामाजिक व्यवस्था प्रणाली के विरोध के साथ-साथ स्त्री देह से मुक्ति का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। स्त्री को अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करने के लिए सर्वप्रथम देह से मुक्ति की आवश्यकता है। इस संदर्भ में प्रभा खेतान लिखती हैं कि "इतरलिंगी यौन व्यवस्था पर आधारित सत्ता के खेल में स्त्री को मुक्ति हासिल करनी होगी। न केवल पुरुष की पर पीड़न की वृत्ति से बल्कि स्त्री की स्वयं के प्रति हीनता और दयाभाव से भी मुक्ति की जरूरत है।"<sup>17</sup>

नारी को सामाजिक बन्धनों से मुक्ति, आर्थिक आत्मनिर्भरता, देह पर स्वयं का अधिकार आदि स्त्री विमर्श के महत्वपूर्ण बिन्दु हैं। अतः समकालीन स्त्री विमर्श का विषय "स्त्री, उसका जीवन और उस जीवन की समस्याएं" है।<sup>18</sup>

स्त्री विमर्श साहित्य में महिला लेखिकाओं के अलावा पुरुष लेखकों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। पुरुष लेखकों ने हाशिए पर खड़ी स्त्री को अपने लेखन के केन्द्र में लाये तथा नारी शोषण की स्थितियों का चित्रण किया। शोषण तंत्रों की पड़ताल की तथा स्त्री मुक्ति के मार्ग को प्रशस्त किया। राजेन्द्र यादव ने स्त्री

विमर्श के केन्द्र में अवस्थित स्त्री पर विचार करते हुए लिखा है "स्त्री हमारा अंश और विस्तार है जिसे हमने अपना उपनिवेश बना दिया है। हमारी सोच और संस्कृति के सारे सामन्ती और साम्राज्यवादी मूल्य उपनिवेशों के आधिपत्य और शोषण को जायज ठहराने की मानसिकता से पैदा होते हैं। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में दुनियाभर में जो उपनिवेश भौतिक और मानसिक रूप से स्वतंत्र हुए हैं, उनमें 'स्त्री' नाम का उपनिवेश भी है। दलित हमारे घरों और बस्तियों से बाहर होता है, स्त्री हमारे भीतर। इसलिए उसका संघर्ष ज्यादा जटिल है।"<sup>19</sup>

साहित्य लेखन में पुरुष लेखकों ने भी स्त्री को केन्द्र में रखकर अपने लेखन के माध्यम से स्त्री जीवन की अनेक प्रकार की समस्याओं और स्थिति की ओर इंगित किया है। यद्यपि स्त्री विमर्श आंदोलन से जुड़ी लेखिकाएं पुरुष लेखकों के लेखन को प्रमाणिक नहीं मानती फिर भी उनके लेखन में स्त्री को देखने का नजरिया निश्चित रूप से उनका अपना है, वह बड़ा ही महत्वपूर्ण है। अतः स्त्री विमर्श में पुरुष के योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

निष्कर्षतः स्त्री ने सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश कर पुरुषों के वर्चस्व और एकाधिपत्य को बखूबी तोड़ा और हर क्षेत्र में बराबरी की हिस्सेदारी निभाते हुए अपनी एक पृथक छवि बनायी है। प्रमुख महिला लेखकों में मन्नु भण्डारी, उषा प्रियंवदा, अलका सरावगी, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, गीतांजलि श्री, कृष्णा सोबती, चित्रा मुद्गल आदि ने स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विसंगतियों, विडम्बनाओं और समस्या तथा स्थितियों का यथार्थपरक दृष्टिकोण से केन्द्र में रखते हुए स्त्री विमर्श के रूप में प्रस्तुत किया। इसी के परिणामस्वरूप यही लेखन 'स्त्री विमर्श' का आधार बन गया। वस्तुतः 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी', 'आंचल में है दूध और आंखों में पानी', कहने मात्र से ही स्त्री विमर्श नहीं हो जाता अपितु उन आंखों में पानी लाने के कौन-कौन से कारण जिम्मेदार है? परत-दर-परत उनकी पड़ताल करना स्त्री विमर्श की मुख्य मांग है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. स्त्री: उपेक्षिता - सीमोन द बोउवार, प्रस्तुति- प्रभा खेतान, पृ. 371
2. वही, पृ. 311
3. अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य - राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा, (स्त्री विमर्श : इतिहास में अपनी जगह - प्रभा खेतान, पृ. 183)
4. वही, पृ. 183
5. बाजार के बीच, बाजार के खिलाफ - प्रभा खेतान, पृ. 215
6. नारी प्रश्न - सरला माहेश्वरी, पृ. 21
7. वही, पृ. 16
8. वही, पृ. 22-23
9. उपनिवेश में स्त्री - प्रभा खेतान, पृ. 139
10. स्त्री विमर्श: इतिहास में अपनी जगह - प्रभा खेतान, 'हंस' पत्रिका, जनवरी-फरवरी, 2000, पृ. 38
11. स्त्री: उपेक्षिता - सीमोन द बोउवार, प्रस्तुति- प्रभा खेतान, पृ. 311
12. स्त्री विमर्श: इतिहास में अपनी जगह - प्रभा खेतान, 'हंस पत्रिका', जनवरी-फरवरी, 2000, पृ. 39
13. शृंखला की कड़ियाँ - महादेवी वर्मा, पृ. 26
14. जीना है तो लड़ना होगा - वृन्दा करात, पृ. 9
15. स्त्री: उपेक्षिता - सीमोन द बोउवार, प्रस्तुति- प्रभा खेतान, पृ. 318
16. नष्ट लड़की नष्ट गद्य - तरिलमा नसरीन, अनुवाद - मुनमुन सरकार की भूमिका से
17. स्त्री: उपेक्षिता - सीमोन द बोउवार, प्रस्तुति- प्रभा खेतान, पृ. 322
18. उपनिवेश में स्त्री - प्रभा खेतान, पृ. 148
19. अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य - राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा, स्त्री विमर्श : इतिहास में अपनी जगह - प्रभा खेतान, पृ. 181
20. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में नारी का बदलता स्वरूप - सं. डॉ. मुदिता चन्द्रा, डॉ. सुलक्षणा टोप्पो, पृ. 401

## महाविद्यालयी विद्यार्थियों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता का अध्ययन

डॉ. संजय केडिया<sup>1</sup>, डॉ. पंकज गुप्ता<sup>2</sup>

<sup>1</sup>सहायक प्राचार्य, आई.सी.जी. इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशनल, रिसर्च एण्ड डवलपमेंट, जयपुर  
<sup>2</sup>व्याख्याता, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटपूतली, जयपुर

किसी भी राष्ट्र की प्रगति उसके जागरूक व शिक्षित युवाओं पर निर्भर करती है। यही कारण है कि युवाओं को छात्र जीवन में जागरूक बनाने की व्यवस्था करनी चाहिए। छात्रों में मानव अधिकारों की समझ व जानकारी होगी तो राष्ट्र को सुदृढ़ नागरिक प्राप्त होंगे तथा वर्तमान आर्थिक महाविद्यालयों की जगह महाविद्यालय का वातावरण सौहार्दपूर्ण, संतुलित व आकर्षक बन सकेगा। आज के विद्यालय व्यावसायिक बनते जा रहे हैं। महाविद्यालयों में मोटी फीस वसूल करना तथा छात्रों को सीमित सुविधाएं प्रदान करना एक सामान्य सी बात है जिससे महाविद्यालय के छात्र एवं उनके अभिभावक दोनों ही क्षुब्ध हैं। परिणामस्वरूप विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास अवरूढ़ होता जा रहा है। दिनोदिन महाविद्यालय का वातावरण न केवल तनावपूर्ण बल्कि नीरस होता जा रहा है। जिससे महाविद्यालय निर्माण का वांछित उद्देश्य बाधित हो रहा है। महाविद्यालय के गैर जिम्मेदार वातावरण से छात्रों में कई मनोरोग पैदा हो रहे हैं जिसके कारण समाज व राष्ट्र को जागरूक तथा सुदृढ़ व्यक्तित्व के नागरिकों की पूर्ति में बाधा उत्पन्न हो रही है। वर्तमान परिस्थितियों में देखते हुए छात्रों को मानव के मूल अधिकारों के प्रति चेतना जाग्रत करनी चाहिए ताकि महाविद्यालय में छात्र व समाजहित में परिवर्तन हो सके। मानवाधिकार एक महत्वपूर्ण अवधारणा है जिससे अनेक समस्याएं जुड़ी हुई हैं। संयुक्त राष्ट्र की सार्वभौमिक घोषणा के बाद क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसका महत्व और भी बढ़ गया है। मानवाधिकार विश्व के सभी प्राणियों में समान होते हैं। मानवाधिकारों के बिना व्यक्ति का सर्वांगीण विकास असंभव है। मानवाधिकारों में नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सभी अधिकार सम्मिलित हैं। इन अधिकारों की व्यवस्था प्रायः सभी राज्य के संविधान में की गई है तथा संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकारों की घोषणा इस संबंध में सबसे बड़ा प्रेरणा स्रोत बनकर उभरा है तथा मानवाधिकारों पर गठित आयोग व सम्मेलन आदि इसके प्रति जागरूकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

आज विज्ञान एवं भौतिकवादी युग में महाविद्यालयों में घटते मानवाधिकारों के ग्राफ को बढ़ाने के लिए छात्रों को मानवाधिकारों का प्रशिक्षण देने की विशेष आवश्यकता है ताकि महाविद्यालय अपने छात्रों का सर्वांगीण विकास कर सके। वर्तमान महाविद्यालयी वातावरण में सुधार हेतु छात्रों को मानवाधिकारों के प्रति चेतना लाने हेतु वृहद कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए। देश के नागरिकों को मानवाधिकारों के प्रति जागरूक करने के लिए उन्हें शिक्षित करना होगा। इसके लिए उपयुक्त समय छात्र जीवन है। इससे ही व्यक्ति जागरूक होगा तो वह भविष्य में कहीं भी मानवाधिकारों से वंचित नहीं हो सकेगा।

अध्ययन के उद्देश्य-प्रस्तुत शोध निम्न उद्देश्यों पर आधारित है-

1. सरकारी एवं निजी महाविद्यालय के विद्यार्थियों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।
2. आरक्षित एवं अनारक्षित वर्ग के विद्यार्थियों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।
3. छात्र एवं छात्राओं में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं-प्रस्तुत शोध हेतु शोधकर्ता ने निम्न परिकल्पनाओं का निर्माण किया है-

1. सरकारी एवं निजी महाविद्यालय के विद्यार्थियों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है।
2. आरक्षित एवं अनारक्षित वर्ग के विद्यार्थियों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है।
3. छात्र एवं छात्राओं में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है।

शोध विधि-प्रस्तुत शोध अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या एवं न्यादर्श-प्रस्तुत शोध अध्ययन में जनसंख्या के रूप में जयपुर शहर के सरकारी एवं निजी महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र व छात्राओं का चयन किया गया है।

न्यादर्श के रूप में जयपुर शहर के महाविद्यालय के प्रथम वर्ष में अध्ययनरत 120 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया है।

उपकरण-मानवाधिकार के प्रति जागरूकता के मापन हेतु स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकी तकनीक-अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण हेतु निम्न सांख्यिकी तकनीक का प्रयोग किया गया है-

1. माध्य
2. प्रमाप विचलन (S.D.)
3. टी-परीक्षण

सारणी संख्या 1

सरकारी एवं निजी महाविद्यालय के विद्यार्थियों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता से संबंधित माध्य, प्रमाप विचलन एवं टी-मान

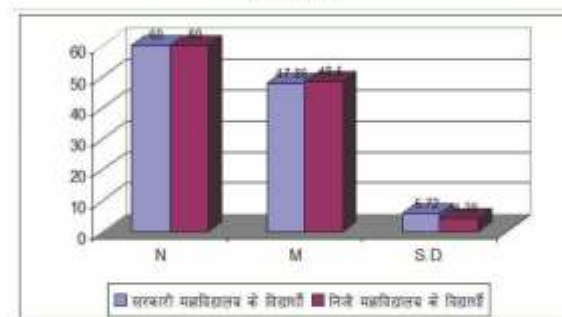
	N	M	S.D.	t-मान	सार्थकता
सरकारी महाविद्यालय के विद्यार्थी	60	47.85	5.72	0.70	असार्थक
निजी महाविद्यालय के विद्यार्थी	60	48.50	4.38		

df(118) के लिए सार्थकता स्तर 0.05 पर ज-मानत्र 1.98

df(118) के लिए सार्थकता स्तर 0.01 पर ज.मानत्र 2.62

सारणी संख्या 1 सरकारी एवं निजी महाविद्यालयों के विद्यार्थियों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता को प्रदर्शित करती है। सारणी द्वारा स्पष्ट है कि सरकारी महाविद्यालयों के 60 विद्यार्थियों के मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता से संबंधित प्राप्तांकों का मध्यमान 47.85 एवं प्रमाप विचलन 5.72 है जबकि निजी महाविद्यालयों के 60 विद्यार्थियों के जागरूकता से संबंधित प्राप्तांकों का मध्यमान 48.50 एवं प्रमाप विचलन 4.38 है। गणना के द्वारा ज का मान 0.70 प्राप्त हुआ है। जो स्वतंत्रता की कोटि के अंश 118 के लिए दोनों ही सार्थकता स्तर 0.05 एवं 0.01 पर सारणी मान से कम है। अतः शून्य परिकल्पना स्वीकार की जाती है।

आलेख-1



सारणी संख्या 2

आरक्षित एवं अनारक्षित वर्ग के विद्यार्थियों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता से संबंधित माध्य, प्रमाप विचलन एवं टी-मान

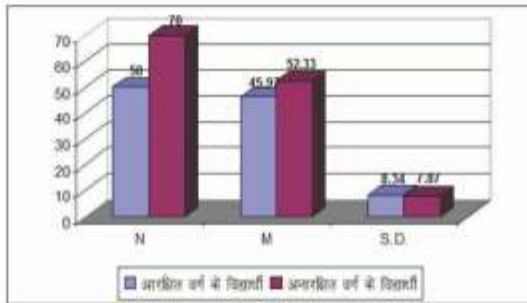
	N	M	S.D.	t-मान	सार्थकता
आरक्षित वर्ग के विद्यार्थी	50	45.97	8.34	4.24	0.01 स्तर पर सार्थक
अनारक्षित वर्ग के विद्यार्थी	70	52.33	7.87		

df(118) के लिए सार्थकता स्तर 0.05 पर ज.मानत्र 1.98

df(118) के लिए सार्थकता स्तर 0.01 पर ज.मानत्र 2.62

सारणी संख्या 2 आरक्षित एवं अनारक्षित वर्ग के विद्यार्थियों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता को प्रदर्शित करती है। सारणी द्वारा स्पष्ट है कि आरक्षित वर्ग के 50 विद्यार्थियों के मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता से संबंधित प्राप्तांकों का माध्य 45.97 एवं प्रमाप विचलन 8.34 है जबकि अनारक्षित वर्ग के विद्यार्थियों के मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता से संबंधित प्राप्तांकों का माध्य 52.33 एवं प्रमाप विचलन 7.87 है। गणना के द्वारा ज का मान 4.24 प्राप्त हुआ है। जो स्वतंत्रता की कोटि के अंश 118 के लिए दोनों ही सार्थकता स्तर 0.05 एवं 0.01 पर सारणी मान से अधिक है। अतः शुन्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

आलेख-2



सारणी संख्या 3

छात्र एवं छात्राओं में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता से संबंधित माध्य, प्रमाप विचलन एवं टी-मान

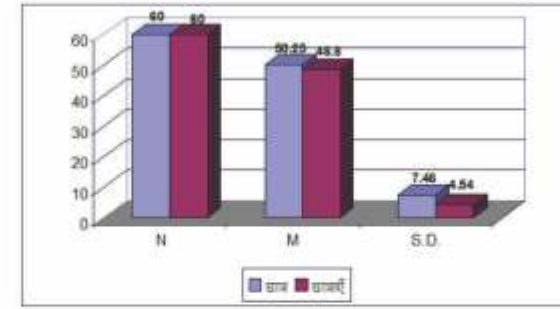
	N	M	S.D.	t-मान	सार्थकता
छात्र	60	50.25	7.46	1.29	असार्थक
छात्राएं	60	48.8	4.54		

df(118) के लिए सार्थकता स्तर 0.05 पर ज.मानत्र 1.98

df(118) के लिए सार्थकता स्तर 0.01 पर ज.मानत्र 2.62

सारणी संख्या 3 छात्र एवं छात्राओं में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता को प्रदर्शित करती है। सारणी द्वारा स्पष्ट है कि छात्रों के मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता से संबंधित प्राप्तांकों का माध्य 50.25 एवं प्रमाप विचलन 7.46 है जबकि छात्राओं के मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता से संबंधित प्राप्तांकों का माध्य 48.8 एवं प्रमाप विचलन 4.54 है। गणना के द्वारा ज का मान 1.29 प्राप्त हुआ है जो स्वतंत्रता की कोटि के अंश 118 के लिए दोनों ही सार्थकता स्तर 0.05 तथा 0.01 पर सारणी मान से कम है। अतः शुन्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

आलेख-3



अध्ययन के निष्कर्ष- प्रस्तुत शोध अध्ययन से निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए।

- सरकारी एवं निजी महाविद्यालय के विद्यार्थियों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं है। अर्थात् सरकारी एवं निजी दोनों ही प्रकार के महाविद्यालय के विद्यार्थी लगभग समान रूप से मानवाधिकारों के प्रति जागरूक पाये गये हैं।
- आरक्षित एवं अनारक्षित वर्ग के विद्यार्थियों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर है। आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों की अपेक्षा अनारक्षित वर्ग के विद्यार्थियों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता अधिक पाई गई है।
- छात्र एवं छात्राओं में मानवाधिकार के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं है अर्थात् छात्र एवं छात्राएं दोनों ही लगभग समान रूप से मानवाधिकारों के प्रति जागरूक पाये गये हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

- हुड्डा, राम निवास 2008: "मानव अधिकार शिक्षा", के.एस.के.पब्लिकेशंस एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, दरियागंज, नई दिल्ली।
- कौल, लोकेश 2009 : "मैथडोलॉजी ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
- अहमद, एस.सी. 2008 : टीचर्स हैंडबुक-बुक ऑव ह्यूमन राइट्स, अनमोल पब्लिकेशन्स प्रा.लि., नई दिल्ली
- डॉ. निरन्जनासाध्या एण्ड अरुणा कश्यप 2006 : द फण्डामेंटल्स ऑव द फण्डामेंटल राइट टू एजुकेशन इन इण्डिया, सेन्टर फॉर चाइल्ड एण्ड द लॉ, एनआईएसआईयू, बंगलोर
- मोहन्ती, जे. 2003 : ह्यूमन राइट्स एजुकेशन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली
- राबर्टसन, ए.एच. 1983 : "ह्यूमन राइट्स इन द वर्ल्ड", मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस, मैनचेस्टर

# वैदिक काल से बुद्धकाल तक भारतीय इतिहास में योग साधना का महत्व - एक विस्तृत विवेचन

दीपक चौधरी

व्याख्याता, एस.एस. जैन सुबोध पी.जी. महाविद्यालय, जयपुर

पतंजलि योगसूत्रों के रचियता थे किन्तु योग की प्रवृत्ति भारत में उनसे पहले से विद्यमान थी यद्यपि उसका कोई व्यवस्थित रूप सामने नहीं आया है। सिन्धु सभ्यता से खुदाई में हमें योगी की मूर्ति प्राप्त हुई है। मोहनजोदड़ों से सील पर ध्यानमग्न योग मुद्रा में बैठे देवता की प्राप्ति हुई है जिसे मार्शल ने प्रोटो शिव कहा है। ये भारत में योग की प्राचीनता की ओर इंगित करती है।

भारत में योग साधना बहुत प्राचीन काल से प्रचलित रही है। ऋग्वेद से लेकर उपनिषदों तक योगिक साधना के अनेक संकेत मिलते हैं। युक्त करने के अर्थ में योग शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में मिलता है। इसमें ऋषियों की तपस्या और तपस् की महत्ता का वर्णन है। प्राण या वायु को आध्यात्मिक दृष्टि से शरीर में व्याप्त माना गया है। डॉ. दासगुप्त ने संधि या योग, क्लेश देना, अप्राप्त को प्राप्त करना तथा जुड़ने या मिलने के अर्थ में ऋग्वेद के मंत्रों में आए हुए 'योग' शब्द को लिया है। शतपथ ब्राह्मण में भी योग शब्द का प्रयोग मिलता है। इन्हीं ग्रंथों की भांति आरण्यक और उपनिषद ग्रंथों में योग शब्द का प्रयोग मिलता है।

उपनिषद अत्यधिक प्राचीन माने जाते हैं, तथा इनकी वास्तविक तिथि बताना तो कठिन है, किन्तु (ग्रंथों) प्रमाणों के आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि प्राचीनतम उपनिषदों की रचना 600 ई.पू. के लगभग हुई होगी। अर्थात् कुछ उपनिषद बुद्ध के पूर्व के हैं। उपनिषदों का उद्देश्य ब्राह्मण ग्रंथों की भौतिक और सांसारिक वैभव और सुखों को प्राप्त करना नहीं है। इनका उद्देश्य जीव की सांसारिक स्थिति से मुक्ति पाना तथा जीवात्मा को विश्वात्मा में शुद्ध ज्ञान की सहायता से लीन करना है।

श्री बेल्लकर और रानाडे ने वैदिक जातियों की विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं में योग के लक्षण दिखाते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि उस समय भी ध्यान, चित्तैकाग्रता, आध्यात्मिक साधना आदि को लोग शारीरिक व मानसिक प्रभाव डालने वाला मानते थे। ऋग्वेद के दसवें मंडल के 136वें सूक्त में योग शब्द से इसी ओर संकेत मिलता है। उपनिषदों ने अपने योग को आध्यात्म योग कहा है तथा इससे परवर्ती सिद्धपरक योग से उसका भेद स्थापित हो जाता है। कठोपनिषद के अनुसार आध्यात्म योग का प्रयोग अंतर्ज्ञानात्मक व आत्मसाक्षात्कार के लिए किया जाता है। आत्म साक्षात्कार के अर्थ में या समधिक परिभाषिक अर्थ में इस, योग शब्द का प्रयोग वृहदारण्यक, छांदोग्य, तैत्तिरीय, और कठ में उपलब्ध होता है। श्वेतावतर उपनिषद का सम्पूर्ण द्वितीय अध्याय अपेक्षाकृत विकसित योग साधना का विवेचन करता है। कठोपनिषद में योग का पारिभाषिक ढंग से वर्णन है। जब पंच ज्ञानेन्द्रियां स्थिर हो जाती हैं, विश्रांत हो जाती हैं, मन भी उनके साथ विश्रांत हो जाता है और उत्तर मानस (बुद्धि) भी जब निश्चेष्ट हो जाता है, तब उसी को परमागति कहते हैं। उस स्थिर अवस्था को जब इन्द्रियां स्थिर हो जाती हैं योग कहते हैं तब साधक अत्यधिक अप्रमत्त सावधान हो जाता है, क्योंकि योग ही भव (उत्पत्ति) और विभव (नाश) है। जब सभी हृदयस्थित इच्छाएं अपने स्थान से मुक्त कर दी जाती हैं, तभी उस मर्त्य को अमृतत्व की प्राप्ति होती है, और यही इस शरीर में ही वह ईश्वरानुभव करता है। तैत्तिरीयोपनिषद में ऋतादि शुभ कर्मों की आवश्यकता का विधान करते समय शम, सत्य, दम (इन्द्रियदमन) आदि को स्वीकार किया गया है।

सत्य, तप, स्वाध्याय और प्रवचन आध्यात्मिक साधना के लिए आवश्यक ठहराए गए हैं। वहां हम को बाह्यकरणोपशमन और शम को अंतकरणोपशमन माना गया है। शंकराचार्य ने भृगुवल्ली के प्रथम अनुवाक में प्रयुक्त तप को ब्रह्मविद्या का साधन माना है यद्यपि उन्होंने इसका ध्यान में लीन होने से अर्थ लिया है। अष्टम अनुवाक में इस साधना के लिए अन्न त्याग का निषेध किया गया है। प्रथम वल्ली जिसे शिक्षावल्ली कहा गया है, के नवम अनुवाक में उस समय तप में तीन अर्थ मानने वाले मर्तों की ओर संकेत किया - (1) सत्य वचन या वाणी

नियंत्रण को तप का प्राण मानने वाले रथीवर के पुत्र सत्यवचा का मत: (2) तप अर्थात् कृच्छाचार या काया नियंत्रण को तप का प्राण मानने वाले तपोनिष्ठ का मत, (3) स्वाध्याय और प्रवचन को ही तप का प्राण मानने वाले मुद्गल के पुत्र नाक का मत। श्वेताश्वतर उपनिषद के प्रथम और द्वितीय अध्याय में ध्यान योग का विस्तृत विवेचन मिलता है। छांदोग्योपनिषद में पुरुष को यज्ञ के रूप में कल्पित करते हुए तप, दान, सरलता, अहिंसा और सत्यवचन को यज्ञ की दक्षिणाएं माना गया है। प्राण और नाड़ियों का भी विशेष विवेचन प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य, दहरविद्या, हृदयाकाश की कल्पनाएँ भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। उपनिषदों ने निवृत्ति प्रधान जीवन बिताने का उपदेश दिया है। वृहदारण्यकोपनिषद यह स्पष्ट घोषणा करता है, कि जो व्यक्ति मुक्ति का अभिलाषी है उसे संसार की तीन प्रकार की इच्छाओं (एषणाओं) को त्याग देना चाहिए -

पुत्रैषणा-पुत्र की कामना, वितैषणा-धन की कामना, लोकैषणा-यश कीर्ति कमाने की कामना। बुद्ध के समय भी हमें योग, ध्यान, ब्रह्मचर्य, सम्बन्धी इसी प्रकार के विचार मिलते हैं। बुद्ध के जीवन का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने सन्यास धारण करने के पश्चात् योग की शिक्षा ली थी।

बुद्ध के जीवन के जो सन्न्यस्त विचारों के उद्दीपक थे विचारणीय हैं। उनमें से एक प्रवर्जित (योगी) का दृश्य था। मज्झिमनियाय के अनुसार बुद्ध ने स्वयं चुनार (सुमसुमारगिरि) में वत्सराज उदयन के पुत्र बोधिराज कुमार से कहा था कि "मैं सुंदर यौवन के साथ प्रथम वयस में माता-पिता अश्रुमुख छोड़कर घर से प्रवर्जित हुआ था तत्पश्चात् मैं आलार कालाम के पास गया। आलार कालाम ने मुझे योग की कुछ विधियाँ बताईं। आलार कालाम उस समय के प्रसिद्ध योगी थे। इस तथ्य को प्रायः सभी दर्शनतिहासकारों ने स्वीकार किया है। ललित विस्तर के अनुसार बुद्धकाल में देश में योग की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित थीं। बौद्ध सुत्त भी योग से पूर्णतया परिचित थे। बुद्ध ने स्वयं अनेक वर्षों तक अन्न त्यागकर कठोर योग साधना की थी।"

इस प्रकार ज्ञात होता है कि योग के सिद्धान्त बुद्ध काल से पूर्व ही प्रचलित थे तथा जिनके अनेक रूप हमें मिले हैं तथा इनमें से कुछ का विकास बाद के काल में हुआ था।

## संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. ऋग्वेद, 1.34.9, 7.67.8, 3.27.8, 30.30. 1,10.114.9
2. ऋग्वेद, 10.136, 3.3.9-10
3. ऋग्वेद, 1.164,31, 10.1773
4. हि.इ.फि., वा.1, पृ.-226
5. शतपथ ब्राह्मण, 11.5.8.
6. ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर - एच.एच गोवेल,पृ. 107-110
7. ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर-ए.ए. मैकडानेल, पृ. 218
8. हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलासफी - श्री बेल्लकर और रानाडे, वा.2, पृ.405-6
9. कठोपनिषद, एट उपनिषदस-श्रीसरविंदो अंग्रेजी अनुवाद सहित, अध्याय 1, वल्ली-2, मंत्र-12, पृ. 48
10. वृहदारण्यक-3.3, 3.7, 4.3, 20, 4.4.23, छान्दोग्य-5.10.1, 8.8, 7.6, 3.17.4, 6.8.6, तैत्तिरीय-2.2,3.3,1.9.19, 3.21, कठ - 2.12, 17, 20,24 कौपीतिकि - 4.10
11. एट उपनिषदस - कठोपनिषद 2.3, 10-11, पृ. 88
12. तैत्तिरीयोपनिषद, शिक्षावल्ली, नवम् अनुवाक 1 का शांकर भाष्य - द्म-ब्राह्मणकरणों परमः।। श्मः अन्त करणेपशमः।। पृ.62
13. एट उपनिषदस, पृ.211, तैत्तिरीयोपनिषद,भृगुवल्ली, प्रथम अनुवाक, पृ. 213
14. छांदोग्योपनिषद, आनन्द संस्कृति ग्रंथावलि 3.17.4
15. वही, 8.6.1
16. छांदोग्योपनिषद, आनन्द संस्कृत ग्रंथावली 8.6
17. वृहदारण्यकोपनिषद, आं.सं.प्र. 4.4.22

18. मन्त्रिस निकाय, 85-बोधि राजकुमार सुंचत, मूल पृ. 92-93, भाग-2, हिन्दी अनुवाद पृ. 345, बौद्ध दर्शन, रा. सांस्कृत्यायन्त पृ. 20
19. इंडियन फिलासफी, डॉ. राधाकृष्णन् वा.1, पृ. 355-356, पाद टिप्पणी
20. वहीं, वा.02, पृ.339
21. मज्झिम निकाय, हिन्दी अनुवाद पृ. 347-348
22. मैनुअल ऑफ इंडियन बुद्धिज्म, एच कर्न पृ. 11, 18

## सामाजिक न्याय एवं दलित वर्ग : एक अवधारणात्मक अध्ययन

सम्पत राम रैगर

व्याख्याता - राजनीतिशास्त्र आर.एल.सहरिया, राजकीय, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कालाड़ेरा,

सामाजिक न्याय की अवधारणा शाब्दिक रूप से जितनी सरल प्रतीत होती है वर्तमान संदर्भ में उतनी ही जटिल है, मूलतः सामाजिक न्याय का अर्थ समानता से लिया जाता है। भारतीय परिपेक्ष्य में समानता को एक ही अर्थ में परिभाषित नहीं किया जा सकता, सामाजिक न्याय को समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र दोनों में ही परिभाषित किया गया है क्योंकि समाज में समानता एवं स्वतन्त्रता दोनों व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक मापदण्ड माने जाते हैं। सामाजिक न्याय-स्वतन्त्रता व समानता दोनों के बीच उलझ कर रह जाता है। यदि हम स्वतन्त्रता को महत्व दें तो समानता स्वतः ही कम हो जाती है।

ऐसे में भारतीय समाज में आरक्षण जैसी तीसरी व्यवस्था और विद्यमान है यद्यपि आरक्षण सामाजिक न्याय को प्राप्त करने की दिशा में एक प्रयास है; किन्तु आरक्षण की मूल अवधारणा-असमानता पर आधारित है। इसीलिए भारतीय परिपेक्ष्य में सामाजिक न्याय को परिभाषित करने के लिए तीनों संकल्पनाओं का निश्चित अनुपात में सम्मिश्रण आवश्यक है। दलितों के मसीहा कहे जाने वाले डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अनुसार "राजनीतिक न्याय और स्वतन्त्रता तब तक बेमानी है, जब तक दलितों को समाज में उचित दर्जा नहीं मिल जाता।" इस हेतु अम्बेडकर का 1932 का साम्प्रदायिक "पंचाट" (कम्पूनल अवार्ड) दलितों को सामाजिक न्याय प्रदान कराने की दिशा में एक प्रयास था।

प्राचीन भारतीय चिन्तन परम्परा में सामाजिक एवं आर्थिक न्याय सहज रूप में विद्यमान था।

वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, ब्राह्मण सूक्त आदि सभी प्राचीन ग्रन्थों में सामाजिक न्याय विद्यमान था। प्राचीन भारतीय समाज के आरम्भ में जाति व्यवस्था का आधार जन्म न होकर कर्म, व्यवसाय या जीविका था। इस प्रकार प्राचीन भारत में न तो जातिगत व्यवस्था थी और न ही आर्थिक समस्या। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्रवृत्ति या क्षमता अनुसार काम मिल जाता था।

कालान्तर में जब भारत पर कुषाणों, हूणों, शकों, गुर्जरों आदि विदेशी जातियों का आक्रमण हुआ, तो भारत में ब्राह्मणों ने अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को बनाये रखने तथा ब्राह्मणों को विशिष्ट पद प्रदान करने एवं अपने कर्म को आजीविका का रूप देने के लिए बड़े-बड़े ग्रन्थों जैसे 'मनुस्मृति' आदि में मनचाहा परिवर्तन कर दिया। इस कारण जाति व्यवस्था को बढ़ावा मिला।

प्राचीन भारतीय चिन्तन परम्परा में राजनीति शास्त्र पृथक से कोई विषय नहीं था। वरन् प्रमुख विषय धर्म था। कालान्तर में धर्म का संशोधित रूप दण्डनीति या राजनीति के रूप में सामने आया। प्राचीन राज्य का स्वरूप कल्याणकारी होता था, इसलिए शासन या राज्य की अलग-अलग शाखायें या इनके विभाजन की समस्या उत्पन्न नहीं हुई। चूंकि प्राचीन काल में भारत में राज्य की दिव्य सत्ता का प्रचलन था।

राजा या राज्य के व्यक्ति के सभी प्रकार के अधिकार जैसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, आदि स्वतः ही सुरक्षित थे क्योंकि राजा जनता के प्रति उत्तरदायी होता था। उनका लालन-पालन व शिक्षा दीक्षा इस प्रकार होती थी कि उनके निरंकुश होने की सम्भावना न के बराबर थी। जैसा कि मनुस्मृति एवं महाभारत में उल्लेख है कि जिनमें नेमि राजा नहुष, वेन राजा आदि गिने चुने राजा थे, जो निरंकुश हुए।

### दलित : अर्थ एवं अवधारणा

'अनुसूचित जाति' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग साइमन कमीशन द्वारा अस्पृश्य लोगों के लिए किया गया। अम्बेडकर के अनुसार आदिकालीन भारत में इन्हें 'भग्नपुरुष' (Broken Men) या 'बाह्य जाति' (Out Caste) माना जाता था। अंग्रेजों के द्वारा उन्हें दलित वर्ग (Depressed Class) कहा जाता था। 1931 की

जनगणना में उन्हें 'बाहरी जाति' (Exterior Caste) के रूप में सम्बोधित किया गया। महात्मा गाँधी ने उन्हें 'हरिजन' के नाम से पुकारा। इनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय होने के कारण इनके लिए 'अछूत' शब्द के स्थान पर दलित वर्ग शब्द का प्रयोग किया गया। आर्य समाज की मान्यता थी कि यह वर्ग अछूत होकर दलित है, क्योंकि समाज ने इन्हें दबाकर और सब प्रकार के अधिकारों से वंचित रखा है। इनकी निम्न दशा के लिए ये स्वयं उत्तरदायी नहीं हैं, बल्कि समाज उत्तरदायी है। सन् 1931 के पूर्व तक इनके लिए 'दलित' शब्द का ही प्रयोग किया जाता था। इस जनगणना के समय जनगणना अधीक्षक ने 'दलित' शब्द के स्थान पर 'बाहरी जातियों' शब्द का प्रयोग किया। इसका कारण था कि इन जातियों का भारतीय सामाजिक संरचना में कोई स्थान नहीं था। 1935 के विधान में इन लोगों को कुछ विशेष सुविधाएँ प्रदान करने की दृष्टि से एक अनुसूची तैयार की गई जिसमें विभिन्न अस्पृश्य जातियों को सम्मिलित किया गया। इस अनुसूची के आधार पर वैधानिक दृष्टिकोण से इन जातियों के लिए 'अनुसूचित जाति' शब्द का प्रयोग किया। अनुसूचित जातियों की सूची में कुछ प्रमुख जातियाँ हैं- चुहड़ा, भंगी, चमार, डोम, पासी, रैगर, मोची, राजबंसी, दोसड़, शानन, घियान, पेरेयां तथा कोरी हैं।

अनुसूचित जातियों को ऐसी जातियों के आधार पर परिभाषित किया गया है जो घृणित पेशों के द्वारा अपनी आजीविका अर्जित करती है, किन्तु अस्पृश्यता के निर्धारण का यह सर्वमान्य आधार नहीं है। इसका कारण यह है कि अनेक ऐसी जातियाँ भी हैं जो घृणित व्यवसायों में लगी हुई हैं, फिर भी उन्हें संवैधानिक रूप से अनुसूचित जाति नहीं माना जाता है जिनमें गाडोलिया लुहार आदि हैं। अस्पृश्यता का सम्बन्ध प्रमुखतः पवित्रता एवं अपवित्रता की धारणा से है। हिन्दू समाज में कुछ व्यवसायों या कार्यों को पवित्र एवं कुछ को अपवित्र माना समझा जाता रहा है। यहाँ मनुष्य या पशु-पक्षी के शरीर से निकले पदार्थों को अपवित्र माना गया है। ऐसी दशा में इन पदार्थों से सम्बन्धित व्यवसाय में लगी जातियों को अपवित्र समझा गया और उन्हें अस्पृश्य कहा गया।

अस्पृश्य का तात्पर्य है 'जो छूने योग्य नहीं है' अस्पृश्यता एक ऐसी धारणा है जिसके अनुसार एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को छूने, देखने और छाया पड़ने मात्र से अपवित्र हो जाता है। सवर्ण हिन्दुओं को अपवित्र होने से बचाने के लिए अस्पृश्य लोगों के रहने के लिए अलग से व्यवस्था की गई, उन पर अनेक नियोग्यताएँ लाद दी गईं और उनके सम्पर्क से बचने के लिए उपाय किए गए। अस्पृश्यता के अन्तर्गत एवं ऐसे जातीय समूह के संबंध में डॉ. के.एन. शर्मा ने लिखा है, "अस्पृश्य जातियाँ वे हैं, जिनके स्पर्श से एक व्यक्ति अपवित्र हो जाए और उसे पवित्र होने के लिए कुछ कृत्य करने पड़ें।"

हर्टन ने कुछ ऐसी नियोग्यताओं का उल्लेख किया है, जिनके आधार पर अस्पृश्य जातियों के निर्धारण का प्रयत्न किया गया है। आपने उन लोगों को अस्पृश्य माना है जो (अ) उच्च स्थिति के ब्राह्मणों की सेवा प्राप्त करने के अयोग्य हो, (ब) सवर्ण हिन्दुओं की सेवा करने वाले नाइयों, कहारों तथा दर्जियों की सेवा पाने के अयोग्य हो, (स) हिन्दू मन्दिरों में प्रवेश प्राप्त करने के अयोग्य हों, (द) सार्वजनिक सुविधाओं (पाठशाला, सड़क तथा कुआँ) का उपयोग में लाने के अयोग्य हो और (य) घृणित पेशों से पृथक् होने के अयोग्य हो। सारे देश में अस्पृश्यों के प्रति एकसा व्यवहार नहीं पाया जाता और न ही देश के विभिन्न भागों में अस्पृश्यों के सामाजिक स्तर में समानता पाई जाती है। अतः हर्टन द्वारा दिए गए उपर्युक्त आधार भी अन्तिम नहीं हैं।

डॉ. डी.एन. मजूमदार के अनुसार, "अस्पृश्य जातियाँ वे हैं जो विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक नियोग्यताओं से पीड़ित हैं, जिनमें से बहुत-सी नियोग्यताएँ उच्च जातियों द्वारा परम्परागत रूप से निर्धारित और सामाजिक रूप से लागू की गई हैं।"

भारत के संविधान में सामाजिक न्याय को जिस गंभीरता से लिया गया है वह इसकी प्रस्तावना से ही स्पष्ट होता है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्ति को सर्वोच्च लक्ष्य घोषित किया गया है। आमुख में विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता को भी प्राथमिकता दी गई है। संविधान में जगह-जगह सामाजिक न्याय से संबंधित विशिष्ट उपबंधों की व्यवस्था की गई है, जो सामाजिक न्याय को व्यवहारिक रूप भी प्रदान करते हैं।

एक अवधारणा के रूप में सामाजिक न्याय को अन्य प्रकार के न्याय के साथ मिलाने में उन्नीसवीं

शताब्दी के समाजवादी आन्दोलनों की देन हैं। प्राचीन काल से ही सामाजिक और आर्थिक न्याय का विचार, विचारकों तथा राजनीतिज्ञों के चिंतन का मुख्य विषय रहा है। इसका उदाहरण आज से 2500 वर्ष पूर्व अरस्तु ने आर्थिक असमानता को अनुचित बताकर दिया था और सामाजिक न्याय को समानता पर आधारित माना था।

पश्चिमी और भारतीय विचारकों ने यह स्पष्ट किया है कि सामाजिक न्याय एक नैतिक दर्शन है जिसका एक हाथ न्याय से संबंधित है, तो दूसरा राजनीति से। सामाजिक न्याय राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समानताओं का मिला-जुला रूप है। अगर हम इन तीनों संकल्पों को प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं, तो यह स्वीकार कर सकते हैं कि सामाजिक न्याय प्राप्ति का लक्ष्य शीघ्र प्राप्य है, क्योंकि ये तीनों संकल्प किसी भी राज्य में वास्तविक लोकतांत्रिक प्रक्रिया को सफल एवं सक्रिय बनाते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. सिंह, (डॉ.) रामगोपाल सामाजिक, न्याय और दलित संघर्ष, राजस्थान ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2006, पृष्ठ संख्या, 74
2. राजकिशोर, दलित राजनीति की समस्याएं वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृष्ठ संख्या 10
3. भण्डारकर, रामकृष्ण दत्तात्रेय, प्राचीन हिन्दू राजनीति के कुछ पहलू, वाराणसी प्रकाशन, 1974, पृष्ठ संख्या 72
4. पाण्डेय, श्यामलाल राजस्थान के प्रणेता, पृष्ठ संख्या 42
5. भट्ट, कुल्लक, मन स्मृति, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 32
6. गुप्ता, मोती लाल, भारत में समाज, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2005, 248-249
7. मजूमदार, डी.एन. भारत में जाति एवं संस्कृति पृष्ठ 336

## वेदों में पर्यावरण शोधन यज्ञ के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण

डॉ. राजेश कुमार बैरवा

प्राध्यापक- संस्कृत, राजकीय महाविद्यालय, बून्दी

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या हमारे देश की ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व की समस्या है। देश में पेड़ों की अंधाधुंध कटाई के कारण वनों का विनाश हो रहा है। वन प्राणी प्रायः लुप्त होते जा रहे हैं और इस कारण प्रकृति का सन्तुलन बिगड़ रहा है और यही स्थिति रही तो यह पृथ्वी वन एवं वन्य जीवों से विहीन हो जायेगी तथा मानव विनाश भी सम्भावी हो जायेगा। अथर्ववेद के भूमि सूक्त का एक मंत्र भी इसी ओर इशारा करता है। वृक्ष की ओर से चेतावनी दी है कि हे मानव! तू मुझे मत काट अन्यथा मैं तुझे काट दूँगा।

पर्यावरण शब्द 'परि+आवरण' दो शब्दों से मिलकर बना है। जिसका अर्थ है- 'परितःआवरणम् इति पर्यावरणम्' अर्थात् चारों तरफ का आवरण अथवा वातावरण, जिसका कि हम प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उपभोग करते हैं। पर्यावरण में मुख्य रूप से जल, वृक्ष, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, वायु, भूमि आदि को सम्मिलित किया जाता है। सामान्य रूप से हरी-भरी प्रकृति ही मानव का पर्यावरण है, यहाँ हरी से तात्पर्य 'सुजलां सुफलां मलयज शीतलां शस्यश्यामला पृथ्वी' से है तथा भरी से तात्पर्य जीव-जन्तु व पशु-पक्षियों की समृद्धि से है।

हमारे देश की संस्कृति पर्यावरण संवर्द्धन एवं संरक्षण वाली रही है और यही हमें प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीना सिखाती है। वेद, मनुस्मृति, धर्मशास्त्र, पुराण तथा उपनिषदों के नियम इस तारतम्य की इच्छा एवं आवश्यकता को प्रदर्शित करते हैं- पश्येम शरदः शतम् जीवेम शरदः शतम्

पर्यावरण की शुद्धता के लिए वेदों में यज्ञ का सर्वाधिक महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। 'यज्ञमिदं वर्धयता' 'अयज्ञियो हतवर्चा भवति' आदि वेद वाक्य इस बात का समर्थन करते हैं। यज्ञ की व्युत्पत्ति में कहा है कि सद अनुष्ठान द्वारा जहाँ विश्व का कल्याण निहित हो उसी का नाम यज्ञ है- येन सदनुष्ठानेन सम्पूर्ण विश्वं कल्याणं भजेत् तद् यज्ञपदाभिधेयम्। विश्व में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो यज्ञ द्वारा प्राप्त न हो सके, साथ ही यज्ञ से ही पर्यावरण शोधन संभव है- यो यदिच्छति तस्य तत्।

वेदों में वायु को शुद्ध करने एवं अनेक कठिन व्याधियों को दूर करने का उपाय यज्ञ और हवन बताया गया है। हवन से जिस छवि को आहुत किया जाता है, उससे वायु में फैले उस रोग के कीटाणु नष्ट होते हैं। यहाँ तक कि यज्ञ की छवि से राजयक्ष्मा के कीटाणु भी नष्ट होते हैं। वैदिकी के सूक्त में कहा भी है कि तुम्हें भले ही अज्ञातरूपा यक्ष्मा, अक्ष्मा अथवा राजयक्ष्मा ने ग्रसित कर लिया हो और तुम दिन-प्रतिदिन क्षीणता को प्राप्त हो रहे हो, तुम्हें यज्ञ की छवि के द्वारा इस यक्ष्मा से मुक्त करता हूँ। इसी सन्दर्भ में वैदिकी का ऋषि सौ वर्ष जीवन जीने के लिए आश्वस्त करता हुआ कहता है कि अब तुम सौ वर्षों, सौ हेमन्तों तथा सौ बसन्तों तक सुख का उपभोग करते हुए जीवन में बढ़ो, इन्द्र, अग्नि, सविता और वृहस्पति तुम्हें सौ वर्षों तक चलने वाली छवि से संयुक्त करें।

यहाँ सौ वर्ष जीवन जीने का रहस्य है अच्छा स्वास्थ्य जो कि शुद्ध पर्यावरण से मिलता है तथा शुद्ध पर्यावरण है विधिपूर्वक किये गये यज्ञ से।

ऋग्वेद का प्रारम्भ अग्नि की उपासना से होता है यज्ञ में अर्पित आहुतियों अग्नि के माध्यम से ही सम्पूर्ण वायुमण्डल में व्याप्त होकर पर्यावरण को शुद्ध करती है। यज्ञ में प्रदान की गई घृत की आहुति, रोगाणुओं को नष्ट करती है। अग्नि के द्वारा कृमियों को नष्ट करने के और अनेक प्रमाण वेदों में उपलब्ध हैं। 17

इस प्रकार वेदों में अनावश्यक कृमियों तथा राक्षसों को जो कि स्वास्थ्य, खेती, वनस्पतियों के लिए हानिकारक होते हैं उन्हें नष्ट करने का विधान प्राप्त होता है। यज्ञ पर्यावरण को ही शुद्ध नहीं करता है, बल्कि धन-धान्य एवं पुष्टि प्रदान भी करता है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में कहा है कि यज्ञ करने से जो धुंआ उत्पन्न होता है, वह वायु द्वारा अन्तरिक्ष में जाकर वहाँ मेघ बन जाता है, जिससे वृष्टि होती है और अन्नादि उत्पन्न होते हैं- अग्निर्वै धूमो जायते धूमाद् भ्रम ब्रादवृष्टिः। विशुद्धीदं वृष्टिमन्नाद्यं संप्रयच्छति। मनुस्मृति में भी कहा है कि

अग्नि में विधि-विधान के साथ दी गई आहुतियाँ सूर्यदेव को प्राप्त होती हैं उससे वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न होता है और उससे प्रजा की उत्पत्ति होती है।"

शास्त्रों के अनुसार यज्ञ से न केवल वर्षा होती है, अपितु उससे जल संशोधन होना भी माना गया है- वसो पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। 12

स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्यपथ 13 में कहते हैं कि होम से वायु, जल और औषधि आदि शुद्ध होते हैं तब सम्पूर्ण जगत् को सुख और अशुद्ध होने पर सबको दुःख होता है।

इनसे इनकी शुद्धि अवश्य करनी चाहिए। वे कहते हैं जब तक होम करने का प्रचार रहा, तब तक आर्यावर्त देश, रोगों से रहित और सुख से पूरित था और यदि अब भी प्रचार हो तो वैसा हो सकता है।"

यज्ञ करते समय घृत अर्थात् घी को जब हम अग्नि में विधिपूर्वक जलाते हैं तो वह अत्यन्त सूक्ष्म वाष्प में बदलकर समस्त वायुमण्डल में विद्यमान विष को नष्ट कर देता है। यज्ञ में गाय के घी को सर्वोपरि माना गया है।- आज्य-होमेषु सर्वेषु गव्यमेव भवेद् घृतम्। गाय के घी के अभाव में भैंस, बकरी, भेड़ का घी तथा उसके अभाव में तिल का तेल भी गाह्य है।"

पर्यावरण शोधन की दृष्टि से गाय का घी ही सर्वोत्तम है, यह बात विदेशी विद्वान् भी मानते हैं। अंग्रेजी की एक पत्रिका में लिखा है कि चावल और गाय के शुद्ध घी की अग्नि में आहुति देने से चार प्रकार का रासायनिक धुआँ उत्पन्न होता है, गाय के घी द्वारा हवन से अस्टीलिन नामक पदार्थ वायुमण्डल को शुद्ध करता है।" गाय का घी दुर्गन्ध को नष्ट करता है। इसीलिए हमारी संस्कृति में गौ पालन, संवर्धन को प्रधानता दी गई है।

डॉ. विजय वशिष्ठ भारतीय संस्कृति और पर्यावरण (संवर्द्धन एवं संरक्षण) लेख में लिखते हैं कि यज्ञ से उत्पन्न धुएँ से नाइट्रोजन व अमोनिया उत्पन्न होकर वातावरण की कार्बनडाई ऑक्साइड को नष्ट करके वातावरण को शुद्ध करती है।" इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भूतपूर्व रसायन विभागाध्यक्ष वैज्ञानिक डॉ. सत्यप्रकाश डी.एस.सी. ने अपनी प्रयोगशाला में यज्ञ सामग्री का रासायनिक विश्लेषण करते हुए उसमें ऐसे तत्वों को उपस्थित पाया था, जिनमें फोरमैल्डीहाइड गैस उत्पन्न होती है। यह गैस बिना परिवर्तन हुए वायुमण्डल में फैल जाती है और इन तत्वों से कुछ अंश तक कार्बनडाईऑक्साइड भी फोरमैल्डीहाइड में रूपान्तरित हो जाती है। यह गैस कीटनाशी तथा पदार्थों को सड़ने से बचाती है।"

फ्रांस के डॉ. हैफकिन के अनुसार घी को जलाने से रोगों के कीटाणु मर जाते हैं।" मद्रास के सेनेटेरी कमिश्नर डॉ. कर्नल किंग आइ.एम.एस. ने कॉलेज के विद्यार्थियों को उपदेश दिया कि घी और चावल में केसर मिलाकर जलाने से रोग जन्तुओं का नाश हो जाता है।" फ्रांस के ट्रिलवर्ट का कहना है कि जलती हुई शक्कर में वायु को शुद्ध करने की बहुत बड़ी शक्ति है। इससे क्षय, चेचक, हैजा आदि बीमारियाँ तुरन्त ठीक हो जाती हैं।" डॉ.एम.ट्रेल्ट का कथन है कि मुनक्का, किशमिश आदि फलों को जलाने से जो धुंआ उठता है, उससे टाइफाइड के रोग कीट 30 मिनट में और दूसरे रोगों के कीट घण्टे दो घण्टे में नष्ट हो जाते हैं।" मेडिसिना एल्टरनेटियां द्वारा आयोजित विश्व सम्मेलन में 'भारत में पर्यावरण संरक्षण संघ' नासिक के प्रो. एस.मुले ने अग्निहोत्र के प्रदर्शन के समय बतलाया कि पृथिवी तथा सूर्य के मध्य वातावरण प्रदूषण के कारण बिगड़ गया है। इसे अग्निहोत्र द्वारा ही अनुकूल बनाया जा सकता है।"

यज्ञ के धुएँ से वैज्ञानिकों ने दक्षिण अमेरिका की फसलों को हानि पहुँचाने वाले आलू वीनी नामक कीटाणु को समूल नष्ट करने में सफलता प्राप्त की है। इन वैज्ञानिकों का मानना है कि धुआँ आठ किलोमीटर तक चक्कर लगाता है और वहाँ की वायु का प्रदूषण समाप्त होकर उस क्षेत्र की फसलों का स्वस्थ विकास होता है।" गुना (मध्य प्रदेश) में शांतिकुंज गायत्री परिवार द्वारा अश्वमेघ यज्ञ करवाया गया था, जिसमें वहाँ के कृषि उपसंचालक ने विभिन्न आँकड़े एकत्रित कर कृषि के लिए यज्ञ को उपयोगी माना।"

भारतीय वायुमण्डल का वैज्ञानिक अध्ययन करने पर भी पाया गया है कि अन्य देशों की तुलना में यह देश अधिक शुद्ध है और इसका कारण है यज्ञ। अमेरिका के बड़े-बड़े शहरों में धुआँ करना अपराध था, परन्तु इस समय वहाँ भी यज्ञ धूम्र को पर्यावरण प्रदूषण को दूर करने का एकमात्र उपाय माना जा रहा है। वहाँ का वर्जीनिया शहर सर्वाधिक प्रदूषण से प्रभावित था, वहाँ पर 22 सितम्बर 1963 को एक वैदिक हवन कुण्ड बनाया

गया और नियमित रूप से यज्ञ करना प्रारम्भ किया और आज वहाँ 50: वातावरणिक प्रदूषण की कमी बतायी जा रही है। इसी प्रकार अमेरिका के चारों ओर कानों पर यज्ञ के लिए हवन कुण्ड बने हुए हैं, जहाँ सूर्य निकलने और डूबने पर अग्निहोत्र किया जाता है।<sup>25</sup>

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि हवन-यज्ञ आदि केवल धार्मिक संस्कार या पूजा पाठ मात्र नहीं है। हवन सामग्री का विश्लेषण करने से पता चला है कि उन तमाम वस्तुओं के जलने से जो धुआँ निकलता है, वह पर्यावरण को शुद्ध करता है। वर्तमान में पर्यावरण प्रदूषण एक भयावह समस्या बन गयी है। अतः पर्यावरण संरक्षण, संवर्द्धन के लिए यज्ञ महत्वपूर्ण क्रिया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. अथर्ववेद 12.1.27
2. अथर्ववेद 19.6.1-2
3. कठोपनिषद् 1.2.10
4. तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविगृहे। अथर्ववेद 7. 76.5
5. शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तांछतमु वसन्तान्।  
शतमिन्द्राग्नी सविता वृहस्पतिः शतायुषा हषिषेमं पुनर्दुः।। वैदिकी पृ.401
6. एतद् यातुधानक्षयणं घृतेन। अथर्ववेद 6.32.1
7. (क) सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम्।  
भिनद्मयश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम्।। अथर्ववेद 5.23.13  
(ख) प्रत्युष्टरक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्त रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः।यजुर्वेद 1.7
8. यज्ञात् भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्न सम्भवः अन्नाद् भवन्ति भूतानि। गीता 3.14
9. ऐतरेय ब्राह्मण 2.41
10. अन्नो प्रारस्ताहुतिः सम्यगादित्यमुप तिष्ठते।  
आदित्याज्जायते वृष्टि वृष्टेरन्न ततः प्रजा।। मनुस्मृति 3.76
11. यजुर्वेद 1.3
12. आर्यपथ, मार्च 1884, पृष्ठ 11
13. सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास, 3
14. यज्ञमीमांसा पृ. 273 बोधायन
15. अग्निहोत्रं पृ.15
16. प्रतियोगिता दर्पण/जुलाई/2009/2132
17. पावमानी, जनवरी-जून 1999, यज्ञ का वैज्ञानिक दर्शन-देवनारायण भारद्वाज,  
पृष्ठ-90
18. क्यूबोनिक पायोनियर प्रेस, प्रयाग
19. भारत सुदशा प्रवर्तक, जून 1903
20. वैदिक सम्पत्ति, पृ.320
21. सरस्वती, अक्टूबर 1919
22. वैदिक चिन्तन, पृ. 168
23. अग्निहोत्र यज्ञ विज्ञान की दृष्टि में, पृ.41, 42, नवनीत, बम्बई जनवरी 1981
24. वेदों में पर्यावरण चेतना, पृ.99, डॉ. नन्दिता सिंघवी
25. हवन यज्ञ और विज्ञान पृ.19

## शांति सेना : वर्तमान की आवश्यकता

ज्योति जैन

शोधार्थी, महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

आज जिस रूप में विश्व विद्यमान है वह मानव के सृजनकाल से लेकर आज तक के निरन्तर एवं अथक संघर्षों का ही परिणाम है। मानव जीवन की यह धारा अविच्छिन्न रूप से नयी-नयी व्यवस्थाओं और संस्कृतियों को जन्म देती हुई आगे बढ़ती रही। अपने आदर्शों, व्यवस्थाओं और व्यवहारों का सम्बल लेकर आज का विश्व मकड़ी के समान अपने ही बुने जाल में स्वयं घिरा पड़ा है। आज दुनिया तीसरे विश्व युद्ध के कगार पर खड़ी है। समाज का पुराना रूप बदल गया है व विश्व में हथियारों की होड़ मची हुई है। इसके कारण आज विश्व महाविनाश के कगार पर खड़ा है और यदि संयम व बुद्धिमत्तापूर्ण काम न लिया गया तो मानवता का सर्वनाश निश्चित है। ऐसे विश्व में जहाँ शांति के विरुद्ध सतत् अन्तर्राष्ट्रीय षड़यन्त्र चल रहे हैं वहाँ स्थायी शांति की स्थापना करना व कार्य करना न केवल कठिन है अपितु असम्भव प्रतीत होता है।

आज जहाँ प्रत्येक राष्ट्र आन्तरिक संकटों से पीड़ित है, वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय संकट उससे भी भयानक रूप में वर्तमान विश्व को भयभीत किये हुए है। सारा मानव समाज आपाद मस्तक काँप रहा है विश्व अनेक भागों में विभक्त है। प्रत्येक भाग शांति व्यवस्था व लोक कल्याण के नाम पर अपना स्वार्थ साधने में तत्पर है। प्रत्येक समझता है कि जिस मार्ग का वह अनुकरण कर रहा है वही विश्व के लिए सबसे हितकर मार्ग है। आज मानव के सामने जितने उग्र व विकराल रूप में संकट उपस्थित है उतने भयानक रूप में शायद मानव समाज ने उसे कभी न देखा है।

वर्तमान में भारत को भी क्षेत्रवाद, अलगाववाद, धार्मिक मतान्धता, साम्प्रदायिकता, दंगे, दलितों का दमन, महिलाओं पर अत्याचार, हिंसा, मूल्यों का ह्रास, सामाजिक संस्थाओं का बिखराव, राजनीतिक अस्थिरता आदि समस्याएँ ग्रसित किए हुए हैं। ये समस्याएँ विश्व के अधिकांश देशों को उद्देलित कर रही हैं। ऐसे समय में महात्मा गांधी के विचार ही वे रास्ता हैं जो वर्तमान समस्याओं से जूझने की क्षमता प्रदान करते हैं। गांधीजी के विचारों की चाहे कितनी भी आलोचना की जाए लेकिन वे आज भी समस्याओं से जूझते विश्व का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। अहिंसक शांति सेना इन विचारों में से एक है। शांति सेना आज युग की समस्या का समाधान ढूँढने का प्रयत्न करती है। जिनसे विभिन्न राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान सम्भव है।

शस्त्रीकरण की होड़ आज के विश्व की मुख्य समस्या है। शस्त्रीकरण की त्रासदी ने मानव सभ्यता को ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया कि जहाँ सदियों की प्रगति को पलभर में तबाह किया जा सकता है। चाहे अरब-इजरायल की समस्या हो या खाड़ी संकट कश्मीर का धधकता शोला हो अथवा या पाकिस्तान की तालिबान समस्या, शस्त्रीकरण के बढ़ते प्रयोग ने किसी भी समस्या का उचित समाधान नहीं निकाला, फिर भी विश्व के कतिपय राष्ट्रों द्वारा इस दिशा में गम्भीरता से कदम न उठाते हुए शस्त्रों की दौड़ को गति दे रहे हैं जो मानवता के लिए शुभ संकेत नहीं है। "परमाणु क्रांति" ने एक विश्व परमाणु व्यवस्था को जन्म दे दिया है न कि शांतिपूर्ण व्यवस्था को।<sup>1</sup>

11 सितम्बर 2001 न्यूयार्क के वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर पर हुए घातक विस्फोट के बाद अमेरिका द्वारा जिस प्रतिरोध का मार्ग अपनाया गया उसने हजारों निर्दोषों की जान ले ली। शांति स्थापना करने का यह मार्ग स्थायी नहीं हो सकता। स्थायी शांति लोगों के हृदय को जीतकर प्राप्त की जा सकती है। शांति सेनिकों की असली विजय लोगों के हृदय को प्रेम, सहयोग, सहिष्णुता आदि के माध्यम से जीतना है। बल प्रयोग व दबाव का यह सेना विरोध करती है। वस्तुतः मानव कल्याण भी इसी में है।

महात्मा गांधी ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रतिरोध की अहिंसात्मक पद्धति में पूरी आस्था प्रकट की थी। उनका कहना था कि विदेशी आक्रमण और युद्ध के विरुद्ध सत्याग्रह के अस्त्र का प्रयोग किया जाना चाहिए। उनका दृढ़ मत था कि युद्ध से हम अपनी समस्याओं का हल नहीं कर सकते। विश्व में स्थायी शांति और न्याय के लिये किसी और साधन की आवश्यकता है और वह साधन "अहिंसक प्रतिरोध" "शांति सेना" ही है। अहिंसक

प्रतिरोध न केवल युद्ध के समान प्रभावशाली साधन है बल्कि उससे निश्चय ही श्रेष्ठ है। युद्ध में भौतिक शक्ति का प्रयोग किया जाता है जिसकी अंतिम परिणति विनाश है जबकि अहिंसक प्रतिरोध में शांति सैनिक नैतिक शक्ति का प्रयोग करता है। जिसमें विनाश की जगह सहयोग का भाव होता है। युद्ध में दूसरे को पीड़ा पहुंचाया जाती है जबकि सत्याग्रही शांति सैनिक विरोधी को पीड़ा न पहुंचाकर स्वयं पीड़ा सहता है। युद्ध, शक्ति को न्याय मानता है जबकि शांति सैनिक विवेक के लिए आग्रह करता है। इस तरह शांति सेना का सैनिक प्रेम, सहयोग, सहिष्णुता, मातृत्व, दया, करुणा आदि उच्च विचारों को लेकर चलता है जिससे स्थायी शांति की स्थापना सम्भव है।

यह एक ऐसा कार्यक्रम है जिसको वर्तमान हालात में काफी सोच समझकर अपनाया जा सकता है। सीमा क्षेत्र की जनता में अहिंसक प्रतिरोध की क्षमता पैदा करने के लिए यह कार्य करना ही निकट भविष्य का महत्वपूर्ण कार्यक्रम हो सकता है। जहां उपयुक्त लगता है वहां सीमा क्षेत्र का शांति सैनिक दौरा कर सकते हैं तथा जनता को आत्मनिर्भरता तथा आक्रमणकारी को असहयोग के लिए प्रेरित कर सकते हैं।<sup>1</sup>

वर्तमान राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में संघर्ष निवारण के तरीके के रूप में वार्ता, मध्यस्थता के साथ शांति सेना के प्रयोग ने गांधीवादी पद्धति की प्रासंगिकता को और भी अधिक बढ़ा दिया है।<sup>2</sup>

गांधीजी का समस्त जीवन, मानव की अनेकानेक समस्याओं के समाधान से संबंधित रहा। प्रत्येक समस्या का उनका समाधान नैतिक था। उन्होंने मूल्यों के दोहरे मापदण्ड स्थापित नहीं किए अतः अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शांति सेना की स्थापना के प्रति उनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय क्षेत्र में स्थापना के समान ही था।

आज सम्पूर्ण देश और समाज राजतंत्र और अर्थतंत्र और मशीनतंत्र के शिकंजे में फंसा हुआ जूझ रहा है और इस संकट से उबरने का एक ही साधन है और वह है व्यक्तियों और अपनी आवश्यकताओं को सीमित किया जाए व शांति सैनिकों द्वारा लघु उद्योगों व हस्तशिल्प उद्योगों को बढ़ावा दिया जाए। इससे समाज, देश व विश्व में व्याप्त आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार आदि बुराईयों को दूर किया जा सकता है।

वर्तमान में शांति और व्यवस्था के लिए अहिंसा की भूमिका के महत्व को बड़े पैमाने पर समझा जाने लगा है। जहाँ कहीं विश्व में तनाव उत्पन्न हो जाता है वहाँ शांति सैनिकों की आवश्यकता होती है। वे भले ही गांधी व विनोबा के शान्ति सैनिक न हों लेकिन सशस्त्र सेना भी अहिंसात्मक तरीके से ही हिंसात्मक तनाव को समाप्त करने का प्रयास करती है। आज राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी शांति सेना का महत्व बढ़ता जा रहा है।

विनोबा के अनुसार "यह एक ऐसी योजना है कि यदि पूरी तरह सफल हो तो उससे देश की शांति रक्षा की जिम्मेदारी देश के साधारण नागरिकों की है। इस योजना को पूरा करने में देश के नागरिक पूरा योगदान देंगे: एसी उम्मीद है।"<sup>3</sup>

अब सभी देशों के द्वारा अपने अध्ययन में शांति सेना को मुख्य स्थान दिया जा रहा है क्योंकि इसके बिना किसी भी देश की व्यवस्था नहीं चल सकती। सच्ची सफलता अहिंसक साधनों से ही प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गांधीवादी पद्धति अब अधिक प्रासंगिक हो गई है। वर्तमान विश्व की ज्वलंत समस्याओं के समाधान में भी गांधीवादी पद्धति सहायक हो सकती है बशर्तें इसे पूर्ण निष्ठा के साथ अपनाया जाये।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

- 1 महात्मा गांधी : हिन्दू धर्म ओरियण्ट पेपर बैक्स, दिल्ली 1978
- 2 विश्वनाथ टंडन : आचार्य विनोबा भावे, भारत मुद्राणालय, दिल्ली, 1997
- 3 महात्मा गांधी : विश्व शांति का अहिंसक मार्ग, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद
- 4 विनोबा भावे : "शांति सेना क्या है" सर्व सेवा संघ प्रकाशन, काशी 1965

## गठबंधन सरकार अर्थ,आयाम एवं वास्तविकता

श्री राजेश गुप्ता

व्याख्याता राजनीति विज्ञान, स्व. राजेश पायलट राजकीय महाविद्यालय, बांदीकुई

संसदीय शासन व्यवस्था में मानवीय समस्याओं पर विचार करने एवं मानवीय दृष्टिकोण को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप देने के संदर्भ में दल प्रणाली का विशेष महत्व है। दल प्रणाली राजनीतिक व्यक्तियों, विचारों, विचार धाराओं एवं राजनीतिक प्रणाली के मध्य समन्वय स्थापित कर प्रतिनिधि शासन को चलायमान करती है। भारतीय दलीय प्रणाली के संदर्भ में एक प्रवृत्ति प्रमुखता से उभरी है- एक दलीय व्यवस्था का अत्यन्त कमजोर होना एवं उसके स्थान पर "गठबंधन दलीय व्यवस्था का मजबूती के साथ उभरना " यद्यपि भारतीय संविधान गठबंधन सरकार जैसी कोई अवधारणा प्रस्तुत नहीं करता और न ही इस शब्द का संविधान में कहीं उल्लेख है। फिर भी यदि भारतीय राजनीतिक परिदृश्य का अवलोकन करें तो देखते हैं कि राष्ट्रीय स्तर पर दो सर्वप्रमुख राजनीतिक दल हैं जिनके नेतृत्व में अनेक क्षेत्रीय स्तर के राजनीतिक दल गठबंधन कर सरकार एवं विपक्ष की भूमिका निभा रहे हैं। ये दोनों सर्वप्रमुख दल हैं- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा भारतीय जनता पार्टी। बाहर से देखने पर यह दो दलीय प्रणाली जैसा लगता है परन्तु यहाँ बहुदलीय व्यवस्था मौजूद है। सन् 1967 के आम चुनावों के पश्चात से क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की संख्या बढ़ती जा रही है। इस चुनाव के उपरान्त देश में कांग्रेस संविद मंत्रिमण्डलों ने भारत में राज्यों की राजनीति के संदर्भ से अपनी प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज कराई। इस प्रकार भारतीय राजनीति में गठबंधन की प्रवृत्ति की शुरुआत 1967 के आम चुनावों से देखने को मिलती है। भारतीय राज्यतंत्र के पिछले दो दशकों के कार्यकलापों ने कारगर तरीके से यह दिखा दिया है कि गठबंधन की राजनीति सिर्फ सतही नहीं है बल्कि उनकी जड़ें गहरी जम चुकी हैं। इस प्रकार गठबंधन सरकार का वर्तमान में यथार्थ एवं इसके समक्ष भविष्य में आने वाले चुनौतियां भारतीय राजनीति की विद्यमान स्थिति में सर्वाधिक विचारणीय विषय है।

भारत की वर्तमान राजनीति संविद या गठबंधन की राजनीति है। संविद का अर्थ है- पार्टियों का एक संघ अर्थात् एक निश्चित अभीष्ट की प्राप्ति की दृष्टि से जब विविध राजनीति दल अपने साधनों एवं स्त्रोतों को एक साथ एकत्रित कर लेते हैं तो उसे साझा राजनीति कहा जाता है। यह हितों का स्थाई अथवा अस्थायी गठबंधन है, उसे संघर्षरत हितों का जोड़ भी कहा जा सकता है। जिन दलों के सहयोग के फलस्वरूप संयुक्त सरकारों का निर्माण होता है वे एक बुनियादी राजनीतिक कार्यक्रम के ऊपर एकमत होती है। जो दल सबसे बड़ा होता है वह एक या एक से अधिक छोटे-छोटे दलों के साथ मिलकर बहुमत प्राप्त करने के लिए गठबंधन का निर्माण करता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि अनेक छोटे छोटे दल किस बड़े दल को सत्तारूढ होने से रोकने के लिए गठबंधन का निर्माण कर लेते हैं। इन संगठनों के परिणाम स्वरूप जिन सरकारों का गठन होता है, उसमें गठबंधन में सम्मिलित होने वाले सभी राजनीतिक दलों को उनकी सदस्य संख्या के अनुपात में मंत्री पद प्राप्त होता है। संविद सरकार का स्थापित होना इस बात पर निर्भर करता है कि विभिन्न दल अपने सहयोग करने वाले दलों के साथ परस्पर एक दूसरे के लिए किस सीमा तक कुर्बानी देने को तत्पर है। अन्तर्विरोधी दृष्टिकोण इसमें बाधक होता है। जब कोई दल अपनी स्वायत्तता या पहचान को अधिक महत्वपूर्ण मानते हुए रेखांकित करना चाहता है तब विरोध व असंतोष की सृष्टि होती है। गठबंधन में शामिल राजनीतिक दल अपनी आकांक्षाओं और लाभ की संभावनाओं के मद्देनजर ही गठबंधन करने को प्रेरित होते हैं जिससे गठबंधन सरकारों में अनिश्चितता, बिखराव, समन्वय का अभाव आदि देखा जा सकता है। इसका प्रारम्भिक प्रत्यक्ष 1977 में केन्द्र में गठित जनता दल सरकार नेताओं की महत्वाकांक्षा के कारण दल एवं सरकार में आंतरिक कलह के कारण सरकार का असामायिक पतन होना है। 1989 के पश्चात लोक सभा के निर्वाचन में कभी भी किसी एक दल को पूर्ण बहुमत नहीं प्राप्त हो पाया। इस बदलाव के साथ केन्द्र में गठबंधन सरकार का दौर प्रारम्भ हुआ एवं क्षेत्रीय दलों ने गठबंधन सरकार बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नब्बे के दशक में यह प्रवृत्ति और अधिक मजबूत हुई। 1996 में 10वीं लोकसभा चुनाव में सही अर्थों में त्रिशंकु संसद का जन्म हुआ एवं क्षेत्रवादी शक्तियाँ एवं छोटे गुटों की सामूहिक शक्ति में भारी वृद्धि हुई। 1999 में 13वीं लोकसभा चुनाव के

पश्चात भाजपा के नेतृत्व में 24 दलों के गठबंधन की सरकार बनी एवं इसने अपना कार्यकाल भी पूर्ण किया। 14 वीं लोकसभा चुनाव मई 2004 में कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन ने सरकार बनाकर अपना कार्यकाल पूर्ण किया। 1999 एवं 2004 के चुनावों ने दिखा दिया कि भाजपा व कांग्रेस दोनों अपने बूते पर किसी भी पार्टी को बहुमत न मिलने के बावजूद क्षेत्रीय गठजोड़ के साथ सरकार चला सकते हैं। इस नए दौर से संविद का एक नवीन परिपक्व संस्करण प्रारम्भ होता है।

लेकिन 15 वीं लोकसभा चुनाव नतीजों ने एक नई राजनीतिक सम्भावनाओं को जन्म दिया। चुनाव परिणामों ने सभी राजनीतिक दलों, चुनाव विश्लेषकों के अनुमान एवं एक्जिट पोल को गलत साबित कर दिया। कांग्रेस के नेतृत्व वाले संयुक्त प्रगतिशील मोर्चे को 262 सीट मिली जो बहुमत के काफी नजदीक थी। छोटे और क्षेत्रीय दल जो चुनाव प्रचार के समय इस बात का दम भर रहे थे कि उनके समर्थन के बिना कोई सरकार नहीं बनेगी और वे एक प्रकार से सौदेबाजी की नीति को दर्शा रहे थे उन्हें करारा झटका लगा। चुनाव प्रचार के दौरान कई दल अपनी नीतियों, कार्यक्रमों के स्थान पर जनता से किंग मेकर्स होने के लिए मत मांग रहे थे एवं कई दल जिस दल के खिलाफ लड़ रहे थे उसी को समर्थन की बात तो कई एक गठबंधन में रहते हुए भी उनका विरोध कर रहे थे। चुनाव परिणामों ने बता दिया कि लोक तंत्र में किंग मेकर्स की भूमिका जनता की ही होती है। जनता ने स्थिरता, विकास, धर्मनिरपेक्षता एवं राष्ट्रीय हितों को सकीर्ण एवं क्षेत्रीय मुद्दों के बजाय वरीयता प्रदान किया। इसे एक नवीन शुरुआत माना जा सकता है। फिर भी गठबंधन सरकारों के युग में बढ़ती अवसरवादिता, क्षेत्रीय दबाव के आगे भारत की धर्म निरपेक्षता एवं राष्ट्रीय हित बौने नजर आ रहे हैं। कोई भी राजनीतिक दल विद्यमान भारत की राजनीतिक परिस्थितियों में राष्ट्रीय स्तर पर अपना प्रतिनिधित्व प्राप्त करने में असक्षम है।

भारत में गठबंधन सरकारों के दौर ने कुछ वर्षों पूर्व ही जन्म लिया है जो अब न केवल चलने लगा है अपितु प्रारम्भिक उथल-पुथल के पश्चात परिपक्वता की ओर चला है। फिर कई ऐसे विन्दु हैं जिन पर वर्तमान संदर्भ में चिंतन, मनन एवं तदनुरूप कदम उठाने की आवश्यकता है। जहाँ एक ओर गठबंधन राजनीति में पवित्रता, शुचिता एवं पारदर्शिता का ह्रास हो रहा है, जनता के प्रति जवाबदेही में कमी एवं सत्ता की लोलुपता के कारण नैतिक एवं माननीय मूल्यों की गिरावट के रूप में नवीन विकृतियाँ उभर रही हैं, वही दूसरी ओर वर्तमान परिदृश्य में जनता अपने दायित्वों के प्रति बढ़ती जागरूकता, सूचना का अधिकार, न्याय पालिका के महत्वपूर्ण निर्णय, चुनाव आयोग के कठोर प्रशासन ने गठबंधन सरकार में बढ़ती निरंकुशता, स्वार्थवादिता, संसदीय अशिष्टाचार को रोकने का प्रयास भी किया है। वर्तमान में आमजन द्वारा बड़बोले नेताओं एवं अपराधी प्रवृत्ति के उम्मीदवारों को सबक सिखाने की प्रवृत्ति का भी उद्भव हो रहा है। इसके अतिरिक्त वर्तमान में गठबंधन की राजनीति के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों आयाम देखे जा सकते हैं। गठबंधन सरकार के नकारात्मक पक्षों की चर्चा करें तो देखते हैं कि गठबंधन सरकार की कुछ नकारात्मक प्रवृत्तियाँ वर्तमान में उभर कर सामने आ रही हैं।

विभिन्न दलों की उपस्थिति के कारण वैचारिक संघर्ष की स्थिति बनी रहती है। क्योंकि इनकी पृष्ठभूमि अलग-अलग आकांक्षाओं और आवश्यकताओं के रूप में होती हैं। वैचारिक एकता का अभाव में इसका निष्पादन कमजोर होता है। एवं गठबंधन सरकार व्यवस्था में लोकवाद की प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर हुई है। क्योंकि चुनाव की संभावनाएं बनी रहती हैं। घटक दल अपनी स्थिति को मजबूत करने के अन्तर्गत अपने जनाधार को बढ़ाने के लिए विशेष प्रकार के कूट रियायत, सहायता को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। क्षेत्रीय दल अपने प्रदेश विशेष के विकास के सन्दर्भ में आर्थिक पैकेज जैसे सुविधाएं प्राप्त करती हैं। इससे संसाधनों का समुचित उपयोग नहीं हो पाता है तथा बृहत्तर राष्ट्रीय हित महत्वहीन हो जाते हैं।

छोटे दलों के उद्भव में नेतृत्व की अधिक भूमिका होती है। संपूर्ण दल पर व्यक्ति विशेष ही आच्छादित रहता है। इससे उत्तरदायी सरकार व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विभिन्न दलों के बीच संवैधानिक पदों की प्राप्ति की नई होड़-लग जाती है, जिसके कारण अस्वस्थ प्रवृत्तियाँ भी उभरी हुई हैं। एवं गठबंधन की राजनीति में राजनीतिक अस्थायित्व के कारण बार-बार चुनाव की संभावनाएं बनी रहती हैं। इससे राजनीतिक भ्रष्टाचार को बल मिलता है। भारत में राजनीतिक भ्रष्टाचार के अधिसंख्यक मामले विगत दो दशकों में ही प्रकाश में आए हैं। तथा गठबंधन सरकार ने दलीय राजनीति में अस्वस्थ प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया है। इसे राज्यपाल की भूमिका, अनु: 356 के इस्तेमाल के अन्तर्गत देखा जा सकता है। तथा इसने

संसदीय प्रणाली के स्वरूप को परिवर्तित किया है। गठबंधन सरकार के इस दौर में राजनीतिक अपराधीकरण, राजनीति भ्रष्टाचार के कारण विधायिका जैसी संस्था का अपकर्ष हुआ है। संसदीय सरकार व्यवस्था में राष्ट्रपति एवं राज्यपाल संवैधानिक प्रमुख के रूप में कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान होता है। वास्तविक शक्ति मंत्रिपरिषद् में सहित होती है। राष्ट्रपति की भूमिका को गठबंधन राजनीति के अन्तर्गत विधायिका एवं कार्यपालिका की भूमिका के संदर्भ में ही देखे जाने की आवश्यकता है।

गठबंधन राजनीति में दलीय राजनीति की प्रकिया बहुत ही जटिल हो गई है। इससे राज्यपाल की भूमिका में परिवर्तन आया है। राज्यपाल केन्द्र सरकार की अभिकर्ता के रूप में अधिक तथा राज्य के संवैधानिक प्रमुख के रूप में कम प्रतीत होते हैं। वर्तमान में राज्यपालों की भूमिका केन्द्र सरकार के निर्देशानुसार कार्य करने के रूप में अधिक दृष्टिगोचर होने लगी है। राज्यपाल अपने वैवेकिक शक्तियों का इस्तेमाल केन्द्र सरकार के निर्देश के अनुसार करने लगे हैं। राज्यपालों द्वारा अनु. 356 के अधीन राज्य में राष्ट्रपति शासन की सिफारिश तथा अनु. 201 में प्रयोग में भी यह दृष्टिगोचर होते हैं। चुनाव पश्चात् नई सरकार के गठन में भी उनकी भूमिका विवादास्पद हो गई है। हाल के दिनों के बिहार, झारखंड, गोवा तथा उत्तर प्रदेश में इसे देखे जाने की आवश्यकता है। इस प्रकार की भूमिका से राज्य के संवैधानिक ढांचे तथा प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। दोहरी सरकार व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य सरकारों के अस्तित्व संविधान के प्रावधानों पर आधारित हैं न कि केन्द्र सरकार की इच्छा पर।

गठबंधन के अन्तर्गत विभिन्न दलों की उपस्थिति से वैचारिक मतभेद बने रहते हैं। अतः सरकार चलाने हेतु इनके बीच समन्वय समिति अथवा संयोजक समिति जैसे निकाय उभरकर सामने आए हैं। इसकी भूमिका एक सुपर कैबिनेट के रूप में उभरी है। यह एक गैर संवैधानिक निकाय की भूमिका के अतिमत्वपूर्ण होने को बतलाता है। गठबंधन सरकार के अन्तर्गत मंत्रिपरिषद् के सदस्यों के विचारों में समन्वय का अभाव होता है। इससे उद्देश्य की एकता का भी अभाव होता है। इस संदर्भ में मंत्रिपरिषद् के सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है।

इस सरकार व्यवस्था में प्रधानमंत्री दबाव की स्थिति में होता है। संसदीय सरकार व्यवस्था में मंत्रिपरिषद् का प्रधान प्रधानमंत्री होता है। जो प्रशासन से संबंधित विभिन्न प्रकार के फैसलों, नीति-निर्माण आदि में अपनी भूमिका को स्थापित करता है। बहुदलीय स्थिति में विभिन्न प्रकार के हितों को समन्वित करने की आवश्यकता होती है। इसके कारण प्रधानमंत्री का नेतृत्व प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। कार्यपालिका के अस्थायित्व की स्थिति बनी रहती है। वैचारिक मतभेदों के अन्तर्गत छोटे-छोटे मुद्दों पर समर्थन देने एवं सरकार में बने रहने के अन्तर्गत इनके द्वारा पुनर्विचार किए जाने का दबाव बना रहता है। ऐसी स्थिति में मध्यावधि चुनाव की संभावनाएं बनी रहती हैं। ऐसी स्थिति में मध्यावधि बार-बार होने वाले चुनाव से राज्य पर आर्थिक भार बढ़ता है।

गठबंधन सरकार व्यवस्था के अन्तर्गत नौकरशाही (स्थायी कार्यपालिका) की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है चूंकि प्रशासन के अन्तर्गत नीतियों के क्रियान्वयन में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। बहुदलीय सरकार में राजनीतिक कार्यपालिका की कमजोरियों का ये लाभ उठाते हैं, क्योंकि इन पर नियंत्रण, अधीक्षण की शक्ति अपेक्षाकृत कमजोर होती है। ये न तो संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं और न ही लोगों के प्रति। अस्थायित्व की स्थिति के कारण जनसमुदाय के द्वारा सरकार व्यवस्था की भूमिका व निष्पादन को सराहे जाने की सीमाएं स्थापित होती हैं। इससे प्रजातंत्र के मौलिक सिद्धान्तों का हनन होता है।

लेकिन पिछले दशक से गठबंधन सरकार के कुछ सकारात्मक पक्ष देखने को मिले हैं। गठबंधन सरकार के अन्तर्गत हितों के समन्वय को बल मिला है। व विभिन्न हितों का राष्ट्रीय स्तर पर अभिव्यक्ति को बल मिला है इससे नीति निर्माण में और सामाजिक-आर्थिक विकास प्रक्रिया में विभिन्न क्षेत्रीय आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं के प्रतिनिधित्व से प्रशासन एवं विकास की प्रवृत्ति जनोन्मुखी भी हुई है। नियोजन प्रक्रिया में जनसहभागिता के कारण निचले स्तर पर प्रजातंत्र को बल मिलता है। गठबंधन सरकार के अन्तर्गत शासन विभिन्न दलों के राजनीतिक दर्शन पर आधारित एक साझा न्यूनतम कार्यक्रम निर्देशित होता है। साझा न्यूनतम कार्यक्रम में विभिन्न दलों के प्रगतिशील आदर्श को शामिल किया जाता है। जिससे शासन में ये प्रगतिशील तत्व मौलिक हो जाते हैं। एवं क्षेत्रीय आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति और प्रतिनिधित्व से कुछ सीमाओं तक संघीय ढांचे को बल मिला है। क्योंकि ये क्षेत्रीय दल स्थानीय जनता के आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करते

हैं। इससे प्रजातांत्रिक व्यवस्था में वास्तविक जन आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति और प्रतिनिधित्व से प्रजातंत्र को अर्थ और बल मिलता है। क्षेत्रीय आकांक्षाओं के कारण भारतीय प्रजातांत्रिक व्यवस्था में विभिन्न प्रकार के समस्याओं का उद्भव हुआ है। एवं प्रजातांत्रिक व्यवस्था के कार्यान्वयन ने इसे दर्शाया है और गठबंधन सरकार ने इस प्रकार के आकांक्षाओं को प्रतिनिधित्व प्रदान किया है। भारत में अनेक स्तरों पर विविधता की स्थिति है तथा विभिन्न प्रकार की आकांक्षाओं का होना स्वाभाविक है। इस संदर्भ में यह क्षेत्रीय दलों के उद्भव तथा सरकार व्यवस्था में उनकी सहभागिता, क्षेत्रीय आकांक्षाओं के विशेष महत्व को दर्शाता है।

एक दलीय सरकार व्यवस्था की स्थिति में दल की प्रभुत्वशाली स्थिति के कारण प्रजातंत्र के कुछ मौलिक सिद्धान्तों के हनन हुआ। भारत में इस काल में निरंकुशवादिता की प्रवृत्ति देखी गयी है। किसी एक दल के बहुमत होने के कारण संविधान संशोधन में भी शीघ्रता एवं मनमाने तरीके से इसके इस्तेमाल हुए। गठबंधन सरकार का भारत के संदर्भ में वर्तमान में यथात अवलोकन करने पर कुछ नये बिन्दु उभरकर सामने आते हैं। भारत एक विकसित एवं क्रियाशील लोकतंत्र के रूप में है। इसमें विभिन्न प्रकार के राजनीतिक प्रवृत्तियों के उद्भव की संभावनाएं निहित हैं। वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में यह एक वास्तविकता के रूप में है। इसे वस्तुतः भारत के प्रजातांत्रिक विकास के एक चरण के रूप में समझे जाने की आवश्यकता है।

विगत वर्षों में गठबंधन की संस्कृति का विकास हुआ है। गठबंधन के अन्तर्गत विभिन्न दलों के बीच आपसी सहमति भी बनी है। इसे वर्तमान राष्ट्रपति चुनाव में गठबंधन द्वारा उम्मीदवारी के चयन और उनके बीच निर्वाचन के रूप में देखा जा सकता है। गठबंधन सरकार भारत के प्रजातांत्रिक विकास के एक चरण के रूप में है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह वास्तविकता के रूप में है। यह सरकार गठन के अन्तर्गत इन क्षेत्रीय दलों का दो प्रमुख राष्ट्रीय दलों के साथ धुवीकरण की प्रवृत्तियों को दर्शाता है। इसे एन.डी.ए. तथा यू.पी.ए. के रूप में देखा जा सकता है। विगत वर्षों में एन.डी.ए. गठबंधन ने अपने कार्यकाल को पूरा किया है तथा वर्तमान में यू.पी.ए. सरकार भी अपने पूर्व के कार्यकाल को पूर्ण कर अगले कार्यकाल के अधिकांश अवधि को भी पूर्ण कर चुकी है। इस सन्दर्भ में गठबंधन के अन्तर्गत मध्यावधि चुनाव के संकट में भी कमी आई है। हाल के दिनों में क्षेत्रीय दलों द्वारा अस्थिर राजनीति को बल प्रदान करने के कारण चुनाव में उनकी स्थिति कमजोर भी हुयी है। वर्ष 2006 में बिहार के चुनाव में इस प्रकार के लक्षण दृष्टिगोचर हुए हैं। अतः ये दल भी अब सरकार गठन में स्थायित्व की संकल्पना को स्वीकार करने लगे हैं। कई राज्यों में भी गठबंधन सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया है। संघीय गठबंधन से सरकार के स्थायित्व को बल मिला है। दोनों ही स्तरों पर गठबंधन से सहयोग और समन्वय स्थापित होता है।

भारत में स्वतंत्रता के उपरान्त शुरुआती चरण में प्रजातंत्र एवं एकदलीय सरकार व्यवस्था को कांग्रेस शासन के अन्तर्गत देखा जा सकता है। इसका कारण था कांग्रेस का प्रभावी नेतृत्व तथा जनता पर इसका नैतिक और बौद्धिक प्रभाव जो राष्ट्रीय संघर्ष के दिनों में ही स्थापित होन शुरु हो गया था। कांग्रेस के एक दल के रूप में मजबूत होने के कारण गठबंधन सरकार की कल्पना नहीं की जा सकती थी।

गठबंधन सरकार में शामिल अलग-अलग दलों में सैद्धान्तिक आदर्शों पर मतभेद एवं असंतुलन, नीतियों पर आम सहमति का अभाव एवं अस्थायित्व एवं कमजोर सरकारें इनका नकारात्मक बिन्दु है। वही लिंग, जाति, वर्ग और क्षेत्र सन्दर्भ में उभरते न्याय एवं लोकतंत्र के मुद्दे, कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर समन्वय एवं सहमति, देश के शासन में प्रान्तीय दलों की बढ़ती भूमिका और उन्हें प्राप्त स्वीकृति, भारत में बढ़ती संघात्मक प्रवृत्ति, घटती सामाजिक खाई, महत्वपूर्ण मुद्दों पर बढ़ता जनता का ध्यानाकर्षण, ये सुधार भारतीय राजनीति को गठबंधन राजनीति की देन है। वर्तमान में प्रत्येक मतदाता अपने-अपने मत मूल्य एवं उससे जुड़ा उसका भविष्य और परिणामों से बेहतर रूप में अवगत दिखता है जो गठबंधन राजनीति की ही देन है।

निश्चित ही ये कहा जा सकता है कि वर्तमान यथार्थ में गठबंधन सरकारों की बदलती आचार संहिताएँ, गठबंधन राजनीति एवं इसके सन्दर्भ में भारतीय लोकतंत्र का परिवर्तित होता भविष्य कालीन परिदृश्य व साथ ही स्थिरता, उत्तरदायित्व, ई-गवर्नेन्स, क्षेत्रीय राजनीति, भ्रष्टाचार, गुटीय राजनीति एवं संवैधानिक मूल्य के सन्दर्भ में गठबंधन सरकारों को भविष्य में प्राप्त होने वाली चुनौतियाँ निश्चित ही भविष्य में भारत में गठबंधन की राजनीति को एक नवीन स्वरूप प्रदान करेंगीं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

- |                                      |   |                                       |
|--------------------------------------|---|---------------------------------------|
| 1. कश्यप एवं गुप्त                   | : | राजनीति कोष                           |
| 2. पार्थ घटनी                        | : | स्टेट एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया         |
| 3. राय, हरिद्वार एवं प्रसाद सिंह     | : | तुलनात्मक सरकार एवं राजनीति           |
| 4. जे.सी. जोहरी                      | : | रिलेशन ऑन पॉलिटिक्स                   |
| 5. रजनी कोठारी                       | : | पॉलिटिक्स इन इंडिया                   |
| 6. राजीव रंजन                        | : | चुनाव लोकसभा और राजनीति               |
| 7. महेश्वर नाथ कौल और श्याम लाल शकजर | : | संसदीय प्रणाली तथा व्यवहार            |
| 8. विपिन चन्द्र                      | : | आजादी के बाद का भारत                  |
| 9. निर्मल कुमार सिंह                 | : | अपराध एवं भ्रष्टाचार की राजनीति       |
| 10. डा. सच्चिदानन्द मिश्र            | : | भारतीय निर्वाचन संस्कृति दशा एवं दिशा |
| 11. शरद के. घटर्जी                   | : | द कोलेशन गवर्नमेन्ट                   |
| 12. प्रभुदत्त शर्मा                  | : | तुलात्मक राजनीति संस्थाएँ।            |

# जैन दर्शन एवं सिद्धान्तों का वैश्विक शांति तथा स्वस्थ समाज के विकास में योगदान

डॉ. यशवन्त कुमार

उपप्राचार्य, श्री शांतिनाथ वि.भा. महाविद्यालय, जालौर (राज.)

वर्तमान युगीन परिस्थितियों ने यह सोचने को बाध्य कर दिया है कि अब यदि इस संघर्ष तथा अशांति के बढ़ते विकराल स्वरूप पर नियंत्रण स्थापित नहीं किया गया तो वास्तव में ही यह सृष्टि काल-कवलित हो जाएगी। अतः वैश्विक शांति तथा स्वस्थ समाज की पुनर्चना करने के लिये हमें पुनः एक बार उन महापुरुषों द्वारा बताये गए पथ पर चलना होगा, जिन्होंने इसके लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर अपने जीवन मंथन द्वारा विभिन्न सिद्धान्त रूपी अमृत रत्नों को प्राप्त कर उनका विकास किया। विश्व शांति के प्रवर्तकों में महावीर स्वामी, महात्मा बुद्ध से लेकर आधुनिक सदी में महात्मा गांधी, मार्टिन लूथर, नेल्सन मंडेला, आचार्य तुलसी, आचार्य महाप्रज्ञ इत्यादि कुछ ऐसे ही नाम हैं, जिन्होंने अहिंसा दर्शन को वैश्विक दर्शन बनाने के लिए एक नया दिशा बोध प्रदान किया।

जैन धर्म में वैश्विक शांति एवं स्वस्थ सामाजिक विकास के लिए न केवल सिद्धान्तों तथा विचारों को दिया गया अपितु उनका सूक्ष्म विवेचन भी किया गया है। जैन धर्म के अनुसार आत्मा ही कर्मों की कर्ता और भोक्ता है। आत्मा में ही कर्म से मुक्त हो परमात्मा बनने की क्षमता है। और इसके लिए आवश्यक है, सम्यक् आचरण। आत्म उत्थान के लिए जो आचरण निर्धारित है, वह आचार है, और आचार ही आधार-ज्ञान है। दसवैकालिक सूत्र में कहा गया है कि- 'पठमं णाणं तयो दया' अर्थात् पहले जानो फिर उसका आचरण करो। क्योंकि ज्ञान के बिना आचरण का निर्धारण नहीं हो सकता। ऐसा इसलिए कि ज्ञानी मनुष्य ही आचार तथा अनाचार का विवेक कर सकता है एवं अनाचार छोड़कर आचार का पालन कर सकता है। और इसके बिना मानव कल्याण एवं शांति की बात करना व्यर्थ है। भगवान महावीर ने ज्ञान पर ही बल नहीं दिया अपितु ज्ञान के सार तत्व कि खोज की। उनके अनुसार 'णाणस्य सारमायारो' अर्थात् ज्ञान का सार आचार ही है।

भगवान महावीर ने आचार के दो मार्ग बतलाए हैं- पहला 'श्रमणाचार' तथा दूसरा 'श्रावकाचार'। जिसमें पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुणित तथा दस धर्मों का अखांड रूप से पालन करना श्रमणाचार है। तथा पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत आदि व्रतों का अणुरूप में पालन करना श्रावकाचार है। महावीर स्वामी के अनुसार अहिंसा एवं अणुव्रत पालन के बिना विश्व शांति तथा एक स्वस्थ समाज की कल्पना करना संभव नहीं है। उनके अनुसार अहिंसा का अर्थ है- 'हिंसा न करना'। किन्तु तात्पर्यार्थ में जायें तो अहिंसा केवल निषेधात्मक ही नहीं बल्कि विधेयात्मक भी है। किसी भी प्राणी का वध नहीं करना, राग-द्वेष नहीं करना या प्रवृत्तिमात्र का निरोध करना ; निषेधात्मक अहिंसा है। जबकि आध्यात्मिक सेवा, उपदेश, ज्ञानचर्चा तथा सत्प्रवृत्ति आदि आत्महितकारी प्रवृत्तियाँ करना; विधेयात्मक अहिंसा है। आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसा का जीवन व्यवहार में आचरण कैसे हो? इसके लिए अहिंसा प्रशिक्षण की प्रायोगिक प्रक्रिया प्रस्तुत की है। उनके अनुसार हिंसा का मूल कारण परिग्रह है। अतः अहिंसा के विकास के लिए परिग्रह सिद्धान्त का पालन अतिआवश्यक है। साथ ही नैतिकता के अभाव में भी अहिंसा का विकास नहीं हो सकता और इसके लिए अणुव्रत आवश्यक है। जो व्यक्ति में नैतिकता का विकास करता है। इन जैन सिद्धान्तों के अनुरूप यदि व्यक्ति अहिंसा, परिग्रह, अणुव्रत आदि सिद्धान्तों को अपनायें तथा इनकी मूल भावना का आचार-विचार तथा व्यवहार में समावेश करें तो वैमनस्य कम होकर व्यक्ति-व्यक्ति में और वैश्विक स्तर पर समाज में अहिंसा, प्रेम एवं शांति की भावना का विकास होगा। अतः इन्हीं प्रमुख जैन आचार-विचारों तथा नियमों को अपनाकर इन्हें जीवन-शैली का अंग बनाकर एक स्वस्थ समाज की स्थापना की जा सकती है।

## 1. अहिंसा दर्शन: अर्थ एवं परिप्रेक्ष्य

आचार्य महाप्रज्ञ का मानना है कि हिंसा और अहिंसा के स्रोत कहीं बाहर नहीं वे हमारे भीतर ही हैं।

हमारे नकारात्मक भाव हिंसा के तथा इसके विपरित सकारात्मक भाव अहिंसा का कारण बनते हैं। क्रोध, अहंकार, लोभ, घृणा, भय, साम्प्रदायिक विद्वेष, जातीय विद्वेष आदि नकारात्मक भाव हैं। तथा इसके विपरित सहिष्णुता, विनम्रता, प्रेम, साम्प्रदायिक सद्भाव, मानवीयता आदि सकारात्मक भाव हैं। हृदय परिवर्तन, दृष्टिकोण परिवर्तन, जीवन शैली परिवर्तन तथा आजीविका शुद्धि आदि प्रक्रियाओं तथा इनके प्रशिक्षण द्वारा विभिन्न नकारात्मक भावों को सकारात्मक भावों में परिवर्तित कर मनुष्य को हिंसा से अहिंसा के मार्ग पर अग्रसर किया जा सकता है। और इन अहिंसक आचार-विचारों तथा जीवन शैली में ही मानवता का विकास निहित है। सत्य, अचौर्य, नैतिकता, मर्यादा आदि सभी व्रत अहिंसा के ही पोषक हैं। जैन आचार विधि का सम्पूर्ण क्षेत्र अहिंसा से व्याप्त है। सभी नैतिक नियम तथा मर्यादाएं इसमें समाहित हैं जो मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन की सार्थकता के साथ उसके वैश्विक औचित्य को भी निर्धारित एवं नियमित करता है। अतः अच्छे आचार का पालन करने के लिए अहिंसा के स्वरूप तथा उसकी सूक्ष्मता को समझना आवश्यक है। और अहिंसा की थाह पाने के लिए सर्वप्रथम हिंसा के स्वरूप को समझना अतिआवश्यक है।

वर्तमान समय में मनुष्य के मन में क्रोध, मोह, माया, लोभ आदि हीन भावनाओं से उत्पन्न आवेशजन्य तनाव तथा निराशा, निष्क्रियता, आलस्य, कर्महीनता आदि से उत्पन्न अवसादजन्य तनाव भी व्यक्ति को हिंसा की ओर ले जाता है। मनुष्य के मन में उत्पन्न निषेधात्मक भाव जैसे घृणा, ईर्ष्या, भय, काम, द्वेष आदि तथा रासायनिक हार्मोन्स के असंतुलन से भी विकृति बढ़ती है और व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में हिंसा की प्रवृत्ति का विकास होता है। इसके अतिरिक्त भौतिक जीवन शैली तथा अत्यधिक महात्वाकांक्षा से शारीरिक असंतुलन, मानसिक तनाव, अकेलापन, हीनभावना, चारीत्रिक भ्रष्टता, मानवीय संबंधों का असंतुलन, आर्थिक स्पर्धा, राजनीतिक भ्रष्टता एवं अव्यवस्था, जातीय-प्रजातीय रंगभेद, वर्गभेद की समस्या, इसके साथ ही समाचार पत्र, मीडिया, टेलिविजन कार्यक्रमों, फिल्मों आदि के कुप्रभाव ने स्वस्थ मानसिकता की जगह लोगों में अस्वस्थ मानसिकता को बढ़ावा दिया है, जिसने मानव को अधिक पाशविक तथा हिंसक बनाया है। वर्तमान में इन सभी विषमताओं पर नियंत्रण तथा नियमन अहिंसा दर्शन के व्यावहारिक सिद्धान्तों को व्यक्ति द्वारा अपने जीवन में स्वतः ही अपनाकर आसानी से किया जा सकता है, जिसका सूक्ष्म विवेचन जैन दर्शन एवं साहित्य में किया गया है।

अहिंसा का शाब्दिक अर्थ है- हिंसा न करना। जैन दर्शन में सभी जीवों को स्थावर तथा त्रसकाय दो भागों में विभाजित किया गया है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा वनस्पति; ये सभी स्थावर जीव हैं जबकि जिनमें चलायमान रहने का सामर्थ्य होता है अर्थात् जो गतिशील हैं, वे त्रसजीव हैं। इसप्रकार इन दोनों जीवों के प्रति मन, वचन तथा कर्म से हिंसक नहीं होना ही अहिंसा है। और इसके विपरित भावों का होना ही हिंसा है। 'प्राणानामनतिपातः सर्वभूतेशु संयमः अप्रमादो वा अहिंसा'- अहिंसा की इस परिभाषा में प्राणों का हनन न करना, प्राणीमात्र के प्रति संयम रखना तथा अप्रमत्त रहना ही अहिंसा है। इस सूक्ष्म परिभाषा के अतिरिक्त जैन दर्शन में अहिंसा की बहुत ही व्यापक विवेचना भी की गई है। इसके अनुसार किसी भी जीव को उत्पीड़ित करना, शोषण करना, अतिरिक्त श्रम लेना, अनुचित लाभ लेना, मर्मभेदी कटु शब्द बोलना, अपमानित करना, अन्य के अधिकारों में स्वार्थवश कटौति करना आदि विषम व्यवहार भी हिंसा है। सद् चिंतन तथा सद् प्रवृत्ति मात्र अहिंसा है।

## अहिंसा दर्शन एवं वैश्विक शांति

अहिंसा के विकास का वैश्विक शांति से संबंध देखा जायें तो वर्तमान में दोनों ही एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जैन दर्शन में अहिंसा की सूक्ष्म व्याख्या दो आधारों पर की गई है जिसमें एक निषेध तथा दूसरा विधेय हैं। इन्हीं निषेधात्मक तथा विधेयात्मकता के आधार पर अहिंसा में विभेदन किया गया है। राग द्वेषात्मक प्रवृत्ति नहीं रखना, प्राण वध नहीं करना अथवा प्रवृत्ति मात्र का निरोध करना, निषेधात्मक अहिंसा है। जबकि सत्प्रवृत्ति करना, स्वाध्याय करना, दान, ज्ञान चर्चा आदि आत्महितकारी प्रक्रिया करना विधेयात्मक अहिंसा है। वर्तमान समय में मनुष्य विधेयात्मक प्रवृत्ति से दूर होकर केवल निषेधात्मक प्रवृत्ति में रत है। यदि वह विधेयात्मक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हो जाए तो वह निश्चित ही मानसिक एवं आत्मिक शांति को प्राप्त कर स्वस्थ समाज तथा वैश्विक शांति की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

हमारी संस्कृति जो विभिन्न धर्मों एवं समुदायों का सम्मिश्रण है, के दर्शन को अपना कर अहिंसा के विकास के लिए आंदोलन किया जा सकता है और विशेष रूप से जैन दर्शन को क्योंकि सम्पूर्ण जैन दर्शन अहिंसा के सिद्धान्त पर आधारित है आचार्य तुलसी लिखते हैं कि अहिंसा की शक्ति कम नहीं है, यदि अपेक्षा है तो उस शक्ति को जानने तथा उसके दर्शन को अपनाने की। उनके अनुसार मनुष्य के मस्तिष्क में जो हिंसा के केन्द्र है, उनका परिष्कार करने के लिए और अहिंसा के केन्द्र को जाग्रत करने के लिए प्रशिक्षण और प्रयोग की आवश्यकता है। प्रशिक्षण का संबंध उपदेश से नहीं, आचरण से है। 'हिंसा मत करो' यह उपदेश है किन्तु जीवन व्यवहार में अहिंसा का होना आचरण है। जैन दर्शन में अहिंसा के लिए प्रशिक्षण की बात कही गयी है और इसके लिए आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसा प्रशिक्षण के चार आयाम दिये हैं- 1. हृदय परिवर्तन 2. दृष्टिकोण परिवर्तन 3. जीवन-शैली परिवर्तन 4. आजीविका शुद्धि प्रशिक्षण।

हृदय परिवर्तन का अर्थ है- 'भाव परिवर्तन'। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार हृदय परिवर्तन का तात्पर्य निषेधात्मक भावों को समाप्त कर विधायक भावों को जगाने से है। राग, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या आदि निषेधात्मक भाव हैं। मैत्री, करुणा, दया, प्रेम आदि विधेयात्मक भाव हैं। निषेधात्मक भाव हिंसा को जन्म देते हैं। सामान्यतः लोक विचार यह है कि मनुष्य परिस्थितिवश हिंसा करता है। परन्तु अनुसंधान मत में देखा गया है कि परिस्थिति ही हिंसा का कारण नहीं है क्योंकि बहुत सी बार परिस्थिति होने पर भी व्यक्ति उत्तेजित-हिंसक नहीं बनता और कई बार परिस्थिति नहीं होने पर भी व्यक्ति हिंसक बन जाता है। इससे स्पष्ट है कि परिस्थिति हिंसा का मूल कारण नहीं है, वह तो निमित्त कारण बन सकती है। मूल कारण मनुष्य के निषेधात्मक भाव हैं और इन्हें मनुष्य की मूलवृत्ति कहा जा सकता है। अतः इन्हीं भावों का परिष्कार ही हृदय परिवर्तन है। यह हृदय परिवर्तन, अनुप्रेक्षा का प्रयोग कर पुराने संस्कारों का, अर्जित आदतों का एवं निषेधात्मक भावों को समाप्त कर तथा नवीन संस्कारों, नई आदतों तथा शुभ एवं स्वच्छ भावों का निर्माण कर किया जा सकता है।

अहिंसा प्रशिक्षण का दूसरा आयाम है- दृष्टिकोण परिवर्तन। गलत दृष्टिकोण के कारण मिथ्या धारणाएँ तथा निरपेक्ष चिन्तन बढ़ता है। और ये ही हिंसा का मुख्य कारण है। साथ ही उपनिषद् के लिखित इस वाक्य कि- 'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' के अर्थ कि 'मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है' अर्थात् मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है; के मिथ्या एवं निरपेक्ष अर्थग्रहण से मनुष्य में भोक्ता प्रवृत्ति का विकास हुआ है। जिससे वह सम्पूर्ण सृष्टि का स्वार्थपरकता से अनियमित एवं अनियंत्रित उपभोग करने लगा और सभी के हित टकराने लगे, मनुष्य के संबंधों में कटुता आई, पर्यावरणीय तथा पारिस्थितीय असंतुलन हो गया जिससे मानवीय दृष्टिकोण का हास हुआ और हिंसक एवं पाशविक दृष्टिकोण विकसित हुआ। अतः जैन दर्शन में सम्यक् दृष्टिकोण के प्रशिक्षण द्वारा निरपेक्ष व मिथ्या दृष्टिकोण का विकास रोका जा सकता है। यहाँ सप्रतिपक्ष अर्थात् सामंजस्य की अनुप्रेक्षा, सहअस्तित्व, स्वतंत्रता, सापेक्षता एवं समन्वय की अनुप्रेक्षा द्वारा सम्यक् दृष्टिकोण के विकास से मनुष्य मात्र में हिंसक प्रवृत्ति को अवरुद्ध कर उसे अहिंसा की ओर अग्रसर किया जा सकता है।

अहिंसा प्रशिक्षण का तीसरा आयाम है- जीवन-शैली परिवर्तन। जीवन-शैली को बदलने का महत्वपूर्ण सूत्र है- सुविधावादी जीवन-शैली का पूर्णतया त्याग अथवा उसमें परिवर्तन। सुविधावादी जीवन-शैली प्रदूषण तथा संकीर्णता पैदा करती है। यह संयमित जीवन की जगह भोग दर्शन को बढ़ाती है। और अनियंत्रित भोग ही हिंसा को बढ़ावा देते हैं। इस प्रकार जीवन-शैली में परिवर्तन के लिए संयम, श्रम, एवं स्वावलम्बन का जीवन में महत्वपूर्ण योगदान है। और जैन दर्शन में अणुव्रत की आचार संहिता का जीवन-शैली के परिवर्तन में बहुत बड़ा आलम्बन है। इसके साथ-साथ विभिन्न अनुप्रेक्षाओं का अभ्यास भी जीवन-शैली के परिवर्तन के लिए अपेक्षित है। इनमें अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, इच्छापरिमाण, व्यसनमुक्ति तथा स्वावलम्बन की अनुप्रेक्षा आदि प्रमुख हैं, के अभ्यास से जीवन-शैली में सात्विक प्रवृत्तियों का विकास कर वैश्विक शांति को बढ़ावा दिया जा सकता है।

अहिंसा प्रशिक्षण का चौथा आयाम है- आजीविका शुद्धि एवं आजीविका प्रशिक्षण। मनुष्य को उत्तरोत्तर अपने जीवन को बनाए रखने के लिए पोषण की आवश्यकता होती है। और इसके लिए आजीविका अत्यन्त आवश्यक है, किन्तु हिंसा प्रधान आजीविका का निषेध होना चाहिए। कुछ ऐसे व्यापार जैसे- मांस का विक्रय, पर्यावरण या जंगलों का नष्ट करना, व्याभिचार आदि सीधे ही हिंसक प्रवृत्तियों को बढ़ावा देते हैं। अतः आजीविका प्राप्ति के साधन नैतिक एवं सात्विक होने चाहिए। इस प्रकार अहिंसा प्रशिक्षण में आजीविका का

सम्यक् प्रयोग जहाँ व्यक्ति को परिग्रह से मुक्त करता है। वहीं अन्य लोगों की आजीविका की रक्षा भी करता है। जिससे तनाव एवं हिंसा जैसी नकारात्मक सोच की जगह शांति एवं अहिंसा की सकारात्मक सोच विकसित होती है। और वैश्विक शांति को बढ़ावा मिलता है।

इस प्रकार जैनदर्शन में हृदय परिवर्तन से दृष्टिकोण परिवर्तन, दृष्टिकोण परिवर्तन से जीवनशैली परिवर्तन और जीवनशैली में संयम की प्रतिष्ठा होने से आजीविका की शुद्धि होती है। अहिंसा में विश्वास रखने वाले सभी लोगों के लिए यह आवश्यक है कि वे स्वयं इनका प्रशिक्षण ले और दूसरों को भी प्रशिक्षण लेने की प्रेरणा प्रदान करें। इस प्रशिक्षण से निश्चित रूप से अहिंसा का वर्चस्व स्थापित हो सकता है। हिंसा के जितने कारण हैं, प्रशिक्षण और प्रयोग द्वारा उन कारणों को समाप्त करके अहिंसा का विकास किया जा सकता है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार इन चार सूत्रों को अहिंसा प्रशिक्षण में अपना कर वैश्विक शान्ति के मार्ग को प्रशस्त किया जा सकता है। इस प्रकार स्वच्छ व स्वस्थ समाज की स्थापना वर्तमान युग में हिंसा के परिष्कार के साथ की जा सकती है।

## 2. परिग्रह परिमाण व्रत: अर्थ एवं परिप्रेक्ष्य

जैन दर्शन में श्रमण परिग्रह का पूर्णरूप से त्याग करते हैं अतः उनका व्रत अपरिग्रह महाव्रत कहलाता है। जैन दर्शन में कहा गया है कि जिस प्रकार समुद्र को पार करने के लिए नौका आवश्यक है किन्तु यात्री उस नौका में आसक्त नहीं होता, उसी प्रकार जीवन निर्वाह के लिए अनेक भौतिक वस्तुएँ आवश्यक हैं परन्तु व्यक्ति उसमें आसक्त नहीं हो तथा आसक्तिवश आवश्यकता से अधिक पदार्थों का संग्रह न करें। और अतिरिक्त पदार्थों का समाज में वितरण कर लें।

परिग्रह शब्द 'परि' उपसर्ग एवं 'ग्रह' धातु में 'घ्' प्रत्यय लगाने से बना है। जिसका अर्थ पकड़ना, थामना, ग्रहण करना है।

'परिग्रहयते अनेनेति परिग्रहं'- अर्थात् जिसके द्वारा ग्रहण किया जाए, वह परिग्रह है।

'परिग्रहयते इति परिग्रह'- अर्थात् जो ग्रहण किया जाता है, वह परिग्रह है।

जैनदर्शन के सूक्ष्म अर्थों में मूर्च्छा (आसक्ति) परिग्रह है। और अमूर्च्छा (अनासक्ति) अपरिग्रह है। वस्तुतः पदार्थ अपने आप में न परिग्रह है और नहीं अपरिग्रह अपितु उस पदार्थ के प्रति जब ममत्व भाव जुड़ता है, आसक्ति जुड़ती है तब वह परिग्रह बन जाता है और जब ममत्व भाव हटता है, आसक्ति टूटती है तब वह अपरिग्रह बन जाता है।

जैन दर्शन के अनुसार यह परिग्रह बाह्य एवं आंतरिक दोनों प्रकार का हो सकता है जिसमें क्रमशः क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, द्विपद, चतुष्पद, कुप्य आदि बाह्य तथा मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, भय, शोक, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद आदि आन्तरिक परिग्रह प्रमुख हैं। इन सभी परिग्रहों का कारण इच्छा, तृष्णा, काम, लोभ, तथा सुखवादी-सुविधावादी मनोवृत्ति है। इन प्रकारों तथा इनके प्रभावी कारणों के परिणामस्वरूप वर्तमान विश्व में निजवादी विचारों की निरन्तर वृद्धि की वजह से आध्यात्मिकता का हास तथा भौतिकता का विकास हुआ है, जिसने मानसिक तथा सामाजिक जटिलता को बढ़ाया है और इसी से व्यक्ति से लेकर वैश्विक स्तर तक तनाव एवं अशांति बढ़ी है।

## अपरिग्रह: वैश्विक शांति तथा स्वस्थ सामाजिक विकास

जैन दर्शन के अनुसार परिग्रह अनेक दोषों की जननी है। परिग्रह के लिए व्यक्ति हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, अनेक कष्टों को सहन करता है। अतः परिग्रह का परिमाण व्यक्ति के लिए कष्टदायक होता है। परिग्रह का सुख तो सभी बांट लेते हैं परन्तु इससे उत्पन्न दुःख का अनुभव व्यक्ति अकेला करता है। वह अकेलापन महसूस करता है उसे स्वयं से, व्यक्ति एवं समाज से विरक्ति होने लगती है जिससे असन्तोष अविश्वास एवं हिंसा की प्रवृत्ति का विकास होता है। अतः अपरिग्रह दर्शन एवं प्रशिक्षण पाकर मनुष्य इन सभी कष्टों से मुक्ति पाकर दुःखों से मुक्त हो सकता है।

जैन दर्शन के अनुसार परिग्रह परिमाण व्रत का औचित्य वर्तमान परिवेश में और बढ़ गया है। यह व्यक्ति को संतोष एवं शांति प्रदान करता है। इससे व्यक्ति हिंसा, झूठ, चोरी आदि दोषों से बच सकता है। इससे अनैतिकता, असंयम, भ्रष्टाचार, लोभ, मिलावट, तस्करी आदि समस्याओं का समाधान संभव है। इससे सर्वजन हिताय सर्वजनसुखाय होता है क्योंकि सम्पदा पर एकाधिपत्य की भावना समाप्त होती है। इस प्रकार भगवान महावीर के अपरिग्रह का विचार और आचार केवल परमार्थ साधना का विषय नहीं, यह व्यक्तिगत जीवन में सुख एवं शांति के लिए तथा स्वस्थ समाज संरचना के लिए भी अतिआवश्यक है। जिससे राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान निश्चित रूप से संभव हो जाएगा और वैश्विक समाज की स्थापना से वैश्विक शांति स्थापित हो पाएगी।

### 3. अणुव्रत: अर्थ एवं परिप्रेक्ष्य

भगवान महावीर ने दो प्रकार के धर्म का प्रतिपादन किया- गृहस्थ धर्म एवं मुनि धर्म। उन्होंने एक सामान्य व्यक्ति अर्थात् गृहस्थ के लिए अहिंसा, सत्य आदि बारह अणुव्रतों का विधान किया। ये अणुव्रत तत्कालीन समाज व्यवस्था में व्याप्त विकारों को दूर करने में सक्षम थे। युग परीवर्तन के साथ-साथ मूल्य भी बदलते गए। समस्याओं ने भी नवीन रूप धारण कर लिया उनके निराकरण के लिए प्राचीन अणुव्रतों के विश्लेषण कर आचार्य तुलसी ने इन्हें युगीन संदर्भों में प्रस्तुत किया।

हमारे समाज में जातिवाद, प्रजातिवाद, अस्पृश्यता, साम्प्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता, अमीरी-गरीबी, नस्लवाद, नैतिक मूल्यों का पतन, अनुशासनहीनता, महात्वाकांक्षाएँ, भाषायी विवाद, प्राचीन विवाद, हिंसा, चारित्रिक पतन एवं मानसिक उत्पीड़न बढ़ा। जिससे अनेक समस्याएँ बढ़ी। जो व्यक्ति स्तर से लेकर वैश्विक स्तर तक विकराल रूप से प्रस्तुत हुई है। अतः जैन दर्शन में इसके समाधान के लिए अणुव्रत सिद्धान्त प्रस्तुत किये। इसे ही वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आचार्य तुलसी ने एक असाम्प्रदायिक एवं नैतिक आन्दोलन के रूप में प्रस्तुत किया। जोकि मानव मात्र की न्यूनतम आचार संहिता है। जो न केवल मानव के व्यक्तित्व को तथा उसके जीवन को अच्छा बनाते हैं बल्कि स्वस्थ समाज की संरचना में भी वे अपनी अहम् भूमिका निभाते हैं।

शाब्दिक दृष्टि से अणु का अर्थ- 'छोटा' एवं व्रत का अर्थ 'नियम' है। अर्थात् अणुव्रत छोटे-छोटे नियमों की एक आचार संहिता है। जिसमें सम्प्रदाय गौण है, धर्म और चरित्र प्रमुख है। आचार्य महाप्रज्ञ ने चरित्र विकास के लिए किये जाने वाले छोटे-छोटे संकल्प को ही अणुव्रत कहा।

अणुव्रत का लक्ष्य-जीवन मूल्यांकन के दृष्टिकोण और उसकी उच्चता के मानदण्ड को बदलता है। चरित्र का न्यूनतम विकास सब में हो क्योंकि चारित्रिक उच्चता के बिना मानव समाज की सभ्यता और संस्कृति उच्च नहीं बन सकती। अतः अणुव्रत का लक्ष्य जाति, रंग, वर्ण, सम्प्रदाय, द्वेष और भाषा का भेदभाव न रखते हुए मनुष्य मात्र को आत्मसंयम की प्रेरणा देना, मैत्री, एकता, शान्ति, आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों का विकास करना एवं अहिंसक समाज की स्थापना करना।

### अणुव्रत: वैश्विक शांति एवं स्वस्थ सामाजिक विकास

आचार्य तुलसी ने महावीर स्वामी द्वारा प्रदत्त जैन दर्शन एवं सिद्धान्तों को युगीन सन्दर्भ में प्रस्तुत किया। जिसे उन्होंने अणुव्रत आन्दोलन का नाम दिया। उन्होंने प्रथम स्वंत्रता दिवस पर असली आजादी अपनाओ का शंखनाद किया। जिसका अर्थ- 'नैतिक विकास' से है और इसके प्रायोगिक रूप का नाम अणुव्रत आन्दोलन रखा। मार्च 2, 1949 को सरदार शहर से आचार्य तुलसी ने अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया उसकी आचार संहिता निर्धारित की। जहाँ प्रारम्भ के तेरह नियम दिये गये। जिसे धीरे-धीरे बढ़ाकर छियासी कर दिया गया। वर्तमान युगीन परीस्थितियों ने इनकी संख्या में लगातार वृद्धि की है।

वैश्विक शान्ति एवं सामाजिक विकास के लिए प्रस्तुत आचार संहिता के प्रमुख नियम-

- वध नहीं करना: जिसमें आत्महत्या व भ्रूणहत्या का भी समावेश है।
- आक्रमण नहीं करना: जिसमें आक्रमण की नीतियों का समर्थन नहीं करना तथा वैश्विक शान्ति एवं निःशस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करना शामिल है।

- हिंसात्मक प्रवृत्तियों से दूर रहना।
- अस्पृश्यता, जाति, रंग आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करना।
- धार्मिक सहिष्णुता।
- साम्प्रदायिक उत्तेजना नहीं फैलाना।
- व्यवसाय व व्यवहार में स्वयं के लाभ के लिए अन्य को हानि नहीं पहुँचाना।
- छलपूर्वक व्यवहार नहीं करना।
- ब्रह्मचर्य साधना एवं संग्रह की मर्यादा का निर्धारण करना।
- चुनाव में अनैतिक आचरण नहीं करना।
- सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक कुरीतियों को प्रश्रय नहीं देना।
- व्यसनमुक्त जीवन शैली अपनाना।
- पर्यावरण के प्रति जागरूक होना।
- हरे-वृक्ष नहीं काटना तथा पानी का अपव्यय नहीं करना आदि।
- वायुमण्डल को प्रदूषित नहीं करना।

उपर्युक्त अनिवार्य अणुव्रतों के अतिरिक्त जैन दर्शन में अन्य उल्लिखित अणुव्रत भी दिये गये हैं जो निम्नलिखित हैं-

### विद्यार्थी अणुव्रत:-

- परीक्षा में अवैध साधनों का प्रयोग नहीं करना।
- हिंसात्मक एवं तोड़-फोड़ की प्रवृत्ति नहीं करना।
- अश्लील शब्दों एवं व्यवहार का प्रयोग नहीं साथ ही अश्लील साहित्य, चलचित्र का उपयोग नहीं करना।
- मादक व नशील पदार्थों का सेवन नहीं करना।
- पर्यावरण हित का ध्यान रखना।
- दहेज जैसी सामाजिक बुराइयों को बढ़ावा नहीं देना।
- अन्य अणुव्रतों के प्रसार में सहयोग करूँगा।

### शिक्षक अणुव्रत:-

- मैं विद्यार्थी के चारित्रिक एवं बौद्धिक विकास में सहायता दूँगा।
- राष्ट्र विकास में सहयोगी गतिविधियों में स्वयं भाग लूँगा एवं विद्यार्थियों को भी सटीक करूँगा।
- अन्य अणुव्रतों के प्रसार में सहयोग करूँगा।

### अधिकारी/कर्मचारी अणुव्रत:-

- मैं रिश्वत नहीं लूँगा।
- अधिकारों का अनुचित उपयोग नहीं करूँगा।
- अन्य अणुव्रतों में कर्तव्य पालन में जान बूझकर विलम्ब नहीं करूँगा।
- अन्य अणुव्रतों के प्रसार में सहयोग करूँगा।

### श्रमिक अणुव्रत:-

- मैं अपना कार्य ईमानदारी से करूँगा।
- हिंसात्मक एवं उपद्रवी गतिविधियों में भाग नहीं लूँगा।
- मद्यपान व नशीली वस्तुओं का सेवन नहीं करूँगा।
- अन्य अणुव्रतों के प्रसार में सहयोग करूँगा।

इस प्रकार आचार्य तुलसी ने अणुव्रत के माध्यम से स्वस्थ समाज की संरचना के लिए अणुव्रत प्रशिक्षण की बात कही। उनके अनुसार अणुव्रत प्रशिक्षण से मनुष्य मात्र में अहिंसक वृत्तियों का विकास होगा, जिससे हिंसक प्रवृत्तियों का समाधान होगा, समाज में जितना-अहिंसा का विकास होगा, मैत्री-प्रेम, भाईचारे की भावना का विकास होगा और स्वस्थ समाज की परिकल्पना साकार होगी। अणुव्रत से माननीय एकता एवं सहयोग की भावना का विकास होगा, जिससे वैचारिक सहिष्णुता बढ़ेगी, करुणा का विकास होगा। जिससे मानव में वर्ण, जाति, रंग के आधार पर जो घृणा एवं अहंकार का भाव विकसित हो रहा है, वह दूर हो सकेगा और संबंधों का विकास होगा, परिणाम स्वरूप संयुक्त परिवारों की टूटन में कमी होगी रिश्ते मजबूत होंगे। एक दूसरे की सहायता की भावना का विकास होगा जो व्यक्ति स्तर से वैश्विक स्तर पर धीरे-धीरे प्रभावी होगा और अनेक समस्याओं का समाधान होगा और वही स्वस्थ समाज की संरचना का आधार बनेगा।

साथ ही अणुव्रत व्यसन मुक्ति तथा आहार शुद्धि की बात भी करता है। यह अर्थव्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था को भी प्रभावित करता है। इनके पालन से स्वस्थ शरीर का विकास होगा और स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क होगा तो विचारों की शुद्धता का भी विकास होगा। जिससे हिंसक प्रवृत्तियाँ समाप्त होंगी एवं सात्विक प्रवृत्तियों का विकास होगा जो कि स्वस्थ समाज के विकास की रीढ़ होती है। इस प्रकार अणुव्रत आन्दोलन विश्व में अहिंसा द्वारा शान्ति स्थापित करने का एक रचनात्मक उपक्रम है। न्यूनतम मानवीय मूल्यों के प्रति वैयक्तिक संकल्प का विकास कर विश्व को हिंसा से मुक्ति दिलाने का एक अनूठा प्रयोग है। इस प्रकार जैन दर्शन एवं सिद्धान्त को आचार-विचार एवं व्यवहार में अंगीकार कर समाज तथा विश्व में वैमनस्य को दूर कर अहिंसा, प्रेम, शान्ति एवं समन्वय का विकास संभव किया जा सकता है। इसी से वैश्विक समाज में शान्ति स्थापित होगी। जिस प्रकार समाज में हिंसक प्रवृत्तियाँ बढ़ाने के लिए योजनाबद्ध प्रशिक्षण दिया जाता है, उसी प्रकार प्रमुख रूप से अहिंसा, अपरिग्रह एवं अणुव्रत जैसे जैन दर्शन तथा सिद्धान्तों का समाज में प्रशिक्षण देना उसका आत्मसातीकरण बढ़ाकर विचार शैली, व्यवहार शैली एवं जीवन शैली में परिवर्तन लाकर स्वस्थ व्यक्ति, स्वस्थ समाज एवं स्वस्थ विश्व का निर्माण किया जा सकता है तभी स्वस्थ सामाजिक विकास एवं वैश्विक शांति का सपना साकार कर पाएँगे। साथ ही हिंसा, वैमनस्य, भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता की मानसिकता से परे एक स्वच्छ, स्वस्थ, सुसंगठित एवं दृढ़ समाज की संरचना तथा संगठन का विकास कर वैश्विक शांति स्थापित कर सकते हैं।

#### संदर्भ ग्रंथ सूची:-

- |                                    |                        |
|------------------------------------|------------------------|
| 1. उत्तरज्झयणाणि :                 | -सं. आचार्य महाप्रज्ञ  |
| 2. तत्त्वार्थसूत्र :               | -आचार्य उमास्वाति      |
| 3. जैन दर्शन : मनन और मीमांसा      | -आचार्य महाप्रज्ञ      |
| 4. जैन आचार मीमांसा :              | -आचार्य देवेन्द्रमुनि  |
| 5. जैन दर्शन : स्वरूप और विश्लेषण  | -आचार्य देवेन्द्रमुनि  |
| 6. मूताचार : एक समीक्षात्मक अध्ययन | -डॉ. फूलचन्द जैन       |
| 7. अहिंसा प्रशिक्षण :              | -आचार्य महाप्रज्ञ      |
| 8. प्रेक्षाध्यान : आधार और स्वरूप  | -आचार्य महाप्रज्ञ      |
| 9. जैन सिद्धान्त दीपिका :          | -आचार्य तुलसी          |
| 10. जैन तत्त्व विद्या :            | -आचार्य तुलसी          |
| 11. जीवन विज्ञान की रूपरेखा :      | -मुनि धर्मेश कुमार     |
| 12. अणु से पूर्ण की यात्रा :       | -आचार्य देवेन्द्र मुनि |

## हाड़ीती प्रदेश में व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन

डॉ. सन्दीप यादव, श्री जुबेर खान  
व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, बून्दी

जनसंख्या भूगोलवेत्ताओं का मुख्य रोचक विषय है, क्योंकि भूगोलवेत्ताओं किसी क्षेत्र की संसाधन उपलब्धता एवं प्रति व्यक्ति आर्थिक उन्नति का आंकलन करता है। मानव ही प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके संस्. ति का निर्माण करता है। इसलिये किसी भी प्रदेश में मानव की संख्या, उसका वितरण, कार्यशील जनसंख्या आदि का अध्ययन अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। हाड़ीती प्रदेश की व्यावसायिक संरचना में 20 वर्षीय (1981-2001) परिवर्तन का अध्ययन इस शोध पत्र में किया गया है।

#### अध्ययन क्षेत्र :-

राजस्थान राज्य का दक्षिण-पूर्वी भाग हाड़ीती प्रदेश के नाम से जाना जाता है। राजपूतों के हाड़ा वंश के शासित क्षेत्र, हाड़ीती भाषा एवं भू-आकृति की दृष्टि से इस प्रदेश में सम्पूर्ण बून्दी जिला, रामगंजमंडी तहसील (मुकन्दरा पहाड़ी शृंखला के दक्षिण में स्थित) को छोड़कर सम्पूर्ण कोटा जिला, छबड़ा, किशनगंज एवं शाहबाद तहसीलों (सभी तहसीलें पार्वती नदी के पूर्व में स्थित है) को छोड़कर सम्पूर्ण बारां जिला और झालावाड़ जिले की खानपुर तहसीलें सम्मिलित हैं।

हाड़ीती प्रदेश राजस्थान राज्य का एक महत्वपूर्ण औद्योगिक एवं कृषि प्रधान प्रदेश है। इसका अक्षांशीय विस्तार 24°25' से 25°21' उत्तरी अक्षांश तथा 75°15' से 76°45' पूर्वी देशान्तर है (मानचित्र 1) इस क्षेत्र की पूर्व से पश्चिम लम्बाई 155 किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण चौड़ाई 180 किलोमीटर है।

#### विधितन्त्र :-

शोध कार्य के विश्लेषण हेतु जिला सांख्यिकीय विभाग -कोटा, बून्दी, झालावाड़ एवं बारां से प्राप्त द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन हेतु व्यापक स्तर पर संगणक तकनीकी के प्रयोग द्वारा प्रतिशत मूल्यों का आंकलन किया गया है तथा कोरोक्रोमेटिक मानचित्रों की मदद से व्यवसायिक संरचना में परिवर्तनों को प्रदर्शित किया गया है।

#### विश्लेषण :-

##### व्यावसायिक संरचना

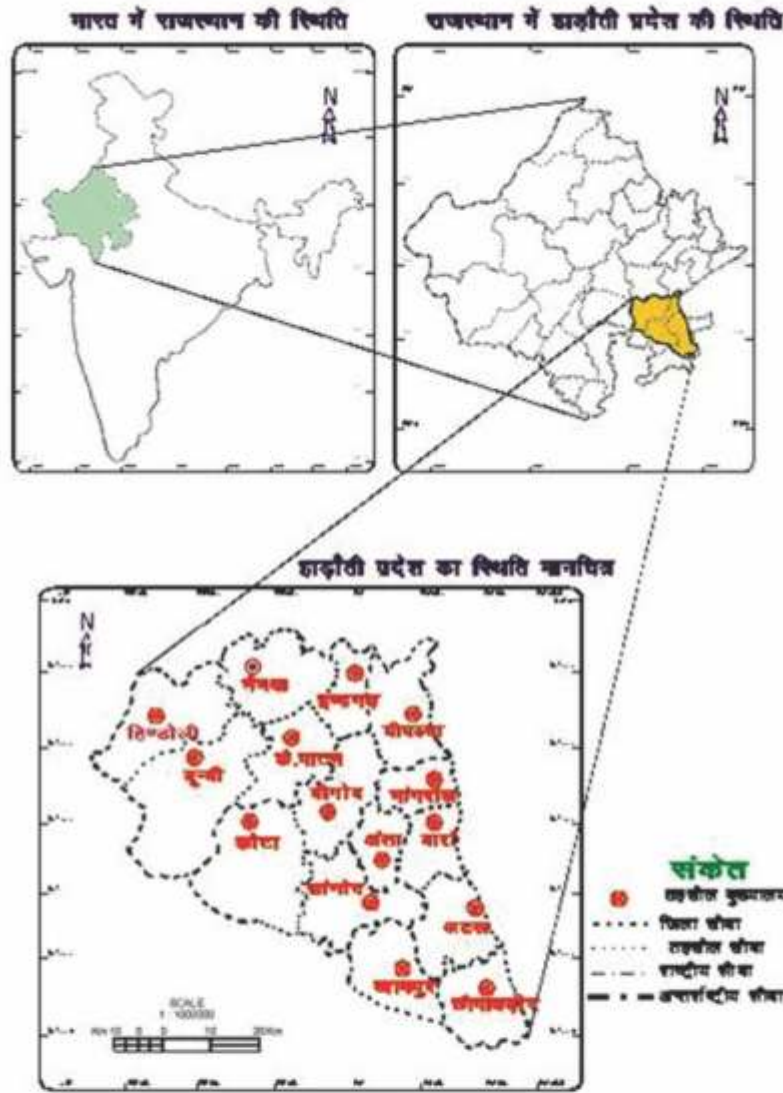
किसी भी क्षेत्र के निवासियों द्वारा आजीविका हेतु किये जाने वाले कार्यों के आधार पर उनकी व्यवसायिक संरचना का गठन होता है जो उस प्रदेश की अर्थव्यवस्था को प्रदर्शित करता है। शारिरिक अथवा मानसिक रूप से किसी आर्थिक रूप में उत्पादक गतिविधि में भाग लेना काम है। अतः काम की अवधि के आधार पर जनसंख्या को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है।

- मुख्य कामगार/कार्यशील
- सीमान्त कामगार
- गैर कामगार/अकार्यशील

कार्यशील अथवा मुख्य कामगार वे व्यक्ति हैं जिन्होंने परिगणना से पहले के एक वर्ष में 183 दिन अथवा उससे अधिक आर्थिक रूप से उत्पादक कार्यों में भाग लिया है। ऐसे व्यक्ति जिन्होंने 183 से कम दिनों तक आर्थिक रूप से उत्पादक कार्यों में भाग लिया है, सीमान्त कामगार की श्रेणी में आते हैं। गैर कामगार वे हैं जिन्होंने अपनी आजीविका हेतु वर्षभर आर्थिक रूप से कोई उत्पादक कार्य नहीं किया है। इस श्रेणी में विद्यार्थी, घरेलू कार्य करने में लगे व्यक्ति, आश्रितजन तथा अवकाश प्राप्त व्यक्ति या किराया भोगी व्यक्ति आते हैं।

## अवस्थिति मानचित्र

मानचित्र 1



### मुख्य कार्यशील जनसंख्या

किसी भी प्रकार का कार्य, व्यापार अथवा पेशा जिसके द्वारा कोई व्यक्ति अपनी रोजी रोटी का अर्जन करता है वह उसका व्यवसाय कहलाता है।

तालिका संख्या 1 से स्पष्ट है कि हाड़ौती में सन् 1981 में कार्यशील जनसंख्या 31.26 प्रतिशत थी जो 2001 में बढ़कर 37.95 प्रतिशत हो गई। इस प्रकार गत दो दशकों में कार्यशील जनसंख्या में 6.69 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसका मुख्य कारण प्रदेश में रोजगार के साधनों की उपलब्धता है। विगत दो दशकों के दौरान कृषि प्रतिरूपों में परिवर्तन ने व्यावसायिक संरचना में अभूतपूर्व बदलाव किये हैं। हाड़ौती प्रदेश कृषि आधारित प्रदेश है और कृषि वर्षा व सिंचाई पर आधारित है। प्रदेश में कुल कार्यशील व्यक्तियों का लगभग 50 प्रतिशत व्यक्ति कृषि कार्यों में संलग्न है। प्रदेश में दो दशकों में वर्षा व नहरी सिंचित क्षेत्र में कमी आई है।

तालिका 1  
हाड़ौती प्रदेश : तहसीलवार मुख्य कार्यशील जनसंख्या  
1981, 1991, 2001

(प्रतिशत में)

क्र. सं.	तहसील का नाम	कुल जनसंख्या में से कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत			परिवर्तन 1981 के उपरान्त (+) वृद्धि (-) कम
		1981	1991	2001	
1.	अटरू	30.01	31.10	41.82	+11.82
2.	अन्ता	-	-	40.26	+13.26
3.	बारां	27.00	30.45	36.16	+9.16
4.	बून्दी	34.72	34.16	43.11	+8.39
5.	छीपाबड़ौद	39.60	39.26	48.11	+8.51
6.	दीगोद	30.61	31.20	40.69	+10.08
7.	हिण्डोली	39.62	38.05	59.92	+20.30
8.	इन्द्रगढ़	-	-	42.01	+12.88
9.	के. पाटन	29.13	30.57	46.78	+17.65
10.	खानपुर	35.50	34.51	46.61	+11.11
11.	लाडपुरा	27.44	28.70	30.24	+2.80
12.	मांगरोल	28.15	29.44	40.72	+12.57
13.	नैनवा	32.06	34.97	46.76	+14.70
14.	पीपल्दा	27.15	30.14	38.46	+11.31
15.	सांगोद	27.37	30.11	42.21	+14.84
16.	हाड़ौती प्रदेश	31.26	31.86	37.95	+6.69

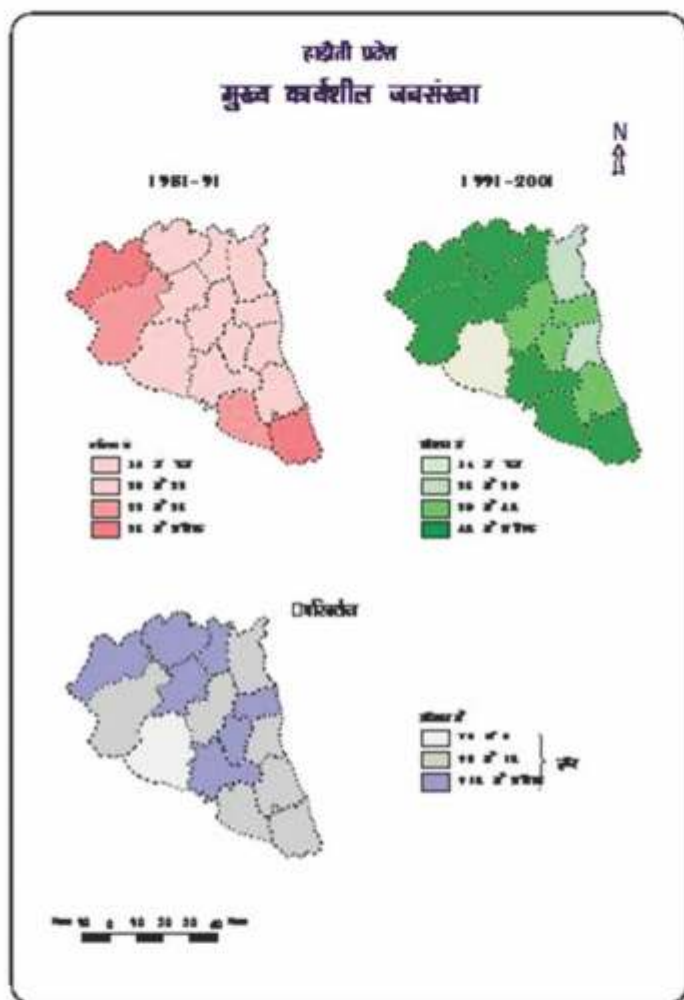
स्रोत : जनगणना प्रतिवेदन - 1981, 1991, 2001, जिला कोटा, बून्दी, झालावाड़ एवं बारां, जनगणना निदेशालय, जयपुर।

साथ ही मशीनीकरण में वृद्धि हुई है। कृषि के साथ-साथ औद्योगिक विकास में वृद्धि भी कुल कार्यशील जनसंख्या के प्रतिशत में वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण है।

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार कार्यिक जनसंख्या का प्रतिशत सबसे अधिक हिण्डोली (59.92 प्रतिशत) व छीपाबड़ौद (48.11 प्रतिशत) तहसीलों में तथा सबसे कम लाडपुरा (30.24 प्रतिशत) तहसील में पाया जाता है। (मानचित्र 2) प्रदेश की बारां तहसील में औसत (37.95 प्रतिशत) से कम कार्यिक जनसंख्या का प्रतिशत पाया जाता है जबकि बून्दी, के.पाटन, इन्द्रगढ़, नैनवा, पीपल्दा, दीगोद, सांगोद, अन्ता, अटरू, खानपुर एवं मांगरोल तहसीलों में औसत (37.95 प्रतिशत) से अधिक कार्यिक जनसंख्या का प्रतिशत है।

## परिवर्तन

गत 20 वर्षों में कार्यरत जनसंख्या में वृद्धि हुई। इसका प्रमुख कारण वर्ष 1981 में सीमान्त कार्यरत जनसंख्या का अलग से वर्ग बना दिया जाना रहा है जबकि 2001 में कार्यात्मक जनसंख्या में सीमान्त कार्यशील को संयुक्त रूप से जोड़ दिया जाना है।



प्रदेश में कृषि के व्यापारीकरण के कारण कृषि एवं कृषि आधारित अन्य कार्यों में वृद्धि के कारण कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि हुई है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार मुख्य कामगारों को चार वर्गों में वर्गीकृत किया गया है।

- (अ) काश्तकार (ब) खेतीहर मजदूर  
(स) पारिवारिक उद्योग (द) अन्य कामगार

(अ) काश्तकार - काश्तकार वह है जो अकेले अथवा अपने परिवार के साथ स्वयं की/सरकारी भूमि/किसी अन्य व्यक्ति की भूमि/संस्था की भूमि पर जिन्स या बटाई पर कार्य करता है। काश्तकारी में फसल की देखरेख, निर्देशन, हल जोतना, बुवाई करना, काटना, फसल तैयार करना एवं बेचने हेतु मण्डी तक पहुँचाने आदि कार्य शामिल हैं।

हाड़ौती प्रदेश में (तालिका 2) वर्ष 1981 में कुल कार्यशील जनसंख्या में से काश्तकार जनसंख्या का 46.90 प्रतिशत था जो 2001 में बढ़कर 47.91 प्रतिशत हो गया। अर्थात् इन दो दशकों में काश्तकारों की संख्या में 1.01 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसका प्रमुख कारण नहरी सिंचित क्षेत्र में वृद्धि तथा कुएँ व नलकूपों की संख्या में वृद्धि होने के कारण काश्तकारों का कृषि की ओर रुझान बढ़ा है।

वर्ष 2001 में सर्वाधिक काश्तकार छीपाबड़ौद तहसील 70.68 प्रतिशत है, जबकि लाडपुरा तहसील में सबसे कम 8.32 प्रतिशत है। छीपाबड़ौद में काश्तकार अधिक होने का प्रमुख कारण कृषि पर निर्भरता तथा कुओं व नलकूपों की संख्या में अधिक वृद्धि होना है। जबकि लाडपुरा में काश्तकार कम होने का मुख्य कारण जिला मुख्यालय होने तथा प्रमुख नगरीय एवं औद्योगिक क्षेत्र होने के कारण जनसंख्या द्वितीयक एवं तृतीयक व्यवसाय में अधिक लगी है। खानपुर, के.पाटन, नैनवा, इन्द्रगढ़, बून्दी, पीपल्दा, सांगोद, अटरू एवं हिण्डोली में प्रदेश के औसत (47.91 प्रतिशत) से अधिक जनसंख्या काश्तकार है। जबकि शेष तहसीलों दीगोद, मांगरोल, बारां एवं अंता तहसीलों में औसत से कम जनसंख्या (47.91 प्रतिशत) काश्तकारी कर रहे हैं।

तालिका 2  
हाड़ौती प्रदेश : तहसीलवार कृषि कार्य में संलग्न जनसंख्या

क्र. -	तहसील का नाम	कृषि कार्य में संलग्न जनसंख्या		परिवर्तन (+) वृद्धि (-) कम (प्रतिशत में)
		1981	2001	
1-	अटरू	56.65	55.42	-1.23
2-	अंता	-	42.56	+4.43
3-	बारां	38.13	36.22	-1.91
4-	बून्दी	49.16	49.63	+0.47
5-	छीपाबड़ौद	74.06	70.68	-3.98
6-	दीगोद	46.10	45.60	-0.50
7-	हिण्डोली	73.40	69.29	-4.11
8-	इन्द्रगढ़	-	51.79	+0.50
9-	के.पाटन	51.29	53.19	+1.91
10-	खानपुर	59.67	59.98	+0.31
11-	लाडपुरा	10.14	8.32	-1.82
12-	मांगरोल	49.21	45.18	-4.03
13-	नैनवा	71.90	65.86	-6.04
14-	पीपल्दा	60.93	53.30	-7.65
15-	सांगोद	52.39	52.50	+0.11
	हाड़ौती प्रदेश	46.90	47.91	+1.01

स्रोत : जिला सांख्यिकी रूपरेखा कोटा, बून्दी, झालावाड़ एवं बारां 1986, 2006 जनगणना निदेशालय, जयपुर।

दो दशक से तहसीलवार विश्लेषण से ज्ञात होता है कि जहाँ एक ओर हिण्डोली, नैनवा, पीपल्दा, दीगोद, मांगरोल, बारां, लाडपुरा, अटरू एवं छीपाबडौद में काश्तकारों की प्रतिशत में कमी आई है। वहीं बून्दी इन्द्रगढ़, खानपुर, के.पाटन, अंता एवं सांगोद तहसीलों में काश्तकारों की प्रतिशत में वृद्धि हुई है।

(ब) खेतीहर मजदूर - वे व्यक्ति जो नकद, जिन्स या बटाई के रूप में मजदूरी लेकर किसी अन्य के खेत पर कार्य करते हैं, खेतीहर मजदूरों की श्रेणी में आते हैं। हाड़ौती प्रदेश में (तालिका 3) वर्ष 1981 में कुल कार्यशील जनसंख्या का 13.21 प्रतिशत व्यक्ति खेतीहर मजदूर थे जो 2001 में बढ़कर 17.98 प्रतिशत हो गई। अर्थात् दो दशक के दौरान कुल 4.77 प्रतिशत की वृद्धि हुई। स्वयं की कृषि भूमि की अनुपलब्धता के साथ रोजगार अवसरों के कम होने के कारण खेतीहर मजदूर के प्रतिशत में वृद्धि हुई है।

सन् 2001 में हाड़ौती प्रदेश में सर्वाधिक 35.54 प्रतिशत खेतीहर मजदूर दीगोद तहसील में हैं। स्वयं की कृषि भूमि अनुपलब्धता तथा रोजगार अवसरों की कमी होने के कारण खेतीहर मजदूर अधिक है। हिण्डोली तहसील में सबसे कम खेतीहर मजदूर 8.78 प्रतिशत है क्योंकि भूमि जोत का आकार का छोटा होना है। नैनवा, इन्द्रगढ़, बून्दी, छीपाबडौद तहसीलों में औसत से कम (17.98 प्रतिशत) खेतीहर मजदूर हैं जबकि शेष तहसीलों में औसत से अधिक (17.98 प्रतिशत) खेतीहर मजदूर हैं।

तालिका 3  
हाड़ौती प्रदेश : तहसीलवार खेतीहर मजदूर

क्र.स.	तहसील का नाम	खेतीहर मजदूर जनसंख्या		परिवर्तन (+) वृद्धि (-) कम
		1981	2001	
1.	अटरू	22.74	24.24	+1.50
2.	अंता	-	31.50	+15.26
3.	बारां	16.24	18.56	+2.32
4.	बून्दी	11.22	14.45	+3.23
5.	छीपाबडौद	12.34	16.53	+4.19
6.	दीगोद	28.92	35.34	+6.42
7.	हिण्डोली	5.80	8.78	+2.98
8.	इन्द्रगढ़	-	14.85	-0.14
9.	के. पाटन	14.99	25.26	+10.27
10.	खानपुर	21.36	24.11	+2.75
11.	लाडपुरा	5.66	5.76	+0.10
12.	मांगरोल	19.33	27.07	+7.74
13.	नैनवा	4.79	10.50	+5.71
14.	पीपल्दा	16.97	26.98	+10.01
15.	सांगोद	22.91	25.71	+2.80
	हाड़ौती प्रदेश	13.21	17.98	+4.77

स्रोत : जिला सांख्यिकी रूपरेखा कोटा, बून्दी, झालावाड़ एवं बारां 1986, 2006 जनगणना निदेशालय, जयपुर।

दो दशकों में (तालिका 3) तहसीलवार विश्लेषण दर्शाते हैं कि प्रदेश की मात्र तहसील इन्द्रगढ़ में खेतीहर मजदूरों की संख्या में 0.14 प्रतिशत की कमी आई है। जबकि शेष सभी तहसीलों में खेतीहर मजदूरों की संख्या में वृद्धि हुई है। सर्वाधिक खेतीहर मजदूरों की संख्या अंता तहसील में 15 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जो कि छज्ज जैसे औद्योगिक संस्थान की स्थापना है।

(स) पारिवारिक उद्योग - पारिवारिक उद्योग वह उद्योग है जो परिवार के मुखिया द्वारा स्वयं अथवा परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में घर या गांव की सीमा के अन्दर और उस मकान के अहाते में जिसमें परिवार रहता है चलाया जाता है। (तालिका 4) वर्ष 1981 में प्रदेश में कुल कार्यशील जनसंख्या का 3.45 प्रतिशत व्यक्ति पारिवारिक उद्योग में संलग्न थे जबकि वर्ष 2001 में 3.10 प्रतिशत रह गये। परम्परागत घरेलू उद्योगों के निरन्तर कम होने से ऐसी कमी रिकार्ड की गई।

वर्ष 2001 में सर्वाधिक पारिवारिक उद्योग में लगे व्यक्तियों की संख्या मांगरोल तहसील में 5.59 प्रतिशत है। जबकि इन्द्रगढ़ तहसील में न्यूनतम 1.60 प्रतिशत है। बारां एवं लाडपुरा तहसीलों में औसत से (3.1 प्रतिशत) अधिक जबकि शेष तहसीलों में औसत से (3.10 प्रतिशत) कम पारिवारिक उद्योग में लगे हुये हैं।

तालिका 4  
हाड़ौती प्रदेश : तहसीलवार पारिवारिक उद्योग में कार्यरत जनसंख्या

क्र.स.	तहसील का नाम	पारिवारिक उद्योग में जनसंख्या		परिवर्तन (+) वृद्धि (-) कम
		1981	2001	
1.	अटरू	2.95	1.90	-1.05
2.	अंता	-	2.00	-2.23
3.	बारां	4.23	4.17	-0.06
4.	बून्दी	2.47	2.08	-0.39
5.	छीपाबडौद	2.25	2.08	-0.17
6.	दीगोद	2.79	1.93	-0.86
7.	हिण्डोली	4.11	1.78	-2.33
8.	इन्द्रगढ़	-	1.60	-1.30
9.	के. पाटन	2.90	2.17	-0.73
10.	खानपुर	3.74	1.92	-1.82
11.	लाडपुरा	4.61	5.10	+0.49
12.	मांगरोल	5.81	5.59	-0.22
13.	नैनवा	5.90	2.55	-3.55
14.	पीपल्दा	2.40	2.60	-0.20
15.	सांगोद	3.95	2.00	-1.95
	हाड़ौती प्रदेश	3.45	3.10	-0.35

स्रोत : जिला सांख्यिकी रूपरेखा कोटा, बून्दी, झालावाड़ एवं बारां 1986, 2006 जनगणना निदेशालय, जयपुर।

पारिवारिक उद्योगों में निरन्तर कमी के कारण इसमें संलग्न व्यक्तियों के प्रतिशत में भी कमी आयी है। तहसीलवार विश्लेषण से ज्ञात होता है कि दो दशकों में प्रदेश की 14 तहसीलों में पारिवारिक उद्योग में लगे व्यक्तियों की प्रतिशत में कमी आई है जो कि आधुनिक मशीनीकरण के कारण, घरेलू उद्योगों की वस्तुओं की लागत अधिक आने के कारण व व्यक्तियों के परम्परागत घरेलू उद्योग की ओर रुझान कम होने से है।

(द) अन्य कामगार - ऐसे व्यक्ति जो कार्यशील तो हैं परन्तु उपरोक्त तीनों श्रेणियों में नहीं आते हैं अपितु कारखानों में काम करने वाले, बागान में काम करने वाले व्यापारी, व्यवसायी, खननकर्मि निर्माण में कार्य करने वाले राजनैतिक तथा सामाजिक कार्यकर्ता, सभी कर्मचारी, नगरपालिका कर्मचारी अध्यापक, पुजारी मनोरंजन की कुल कार्यशील जनसंख्या का 36.73 प्रतिशत व्यक्ति अन्य कार्य कलापों में संलग्न है जबकि वर्ष 2001 में यह प्रतिशत 37.05 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार से दशकों में अन्य कार्य करने वाले व्यक्तियों की संख्या में 0.32 प्रतिशत की वृद्धि हो गई। (तालिका 5) प्रदेश में यह वृद्धि द्वितीयक व तृतीयक व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या को दर्शाती है।

तालिका 5

हाड़ौती प्रदेश : तहसीलवार अन्य कार्य करने वाले व्यक्तियों की जनसंख्या

क्र.स.	तहसील का नाम	अन्य कार्य करने वाले व्यक्तियों की संख्या		परिवर्तन (+) वृद्धि (-) कम
		1981	2001	
1.	अटरू	17.65	18.42	+0.77
2.	अंता	-	23.91	-17.47
3.	बारां	41.38	41.03	-0.35
4.	बून्दी	37.13	33.82	-3.31
5.	छीपाबड़ौद	11.33	10.68	-0.65
6.	दीगोद	22.17	17.12	-5.05
7.	हिण्डोली	18.48	20.13	+1.65
8.	इन्द्रगढ़	-	31.75	+0.56
9.	के. पाटन	31.19	19.36	-11.83
10.	खानपुर	15.20	14.97	-0.23
11.	लाडपुरा	79.57	80.30	+0.73
12.	मांगरोल	25.74	22.14	-3.60
13.	नैनवा	19.92	21.08	+1.16
14.	पीपल्दा	19.67	17.09	-2.58
15.	सांगोद	20.74	19.68	-1.06
	हाड़ौती प्रदेश	36.73	37.05	+0.32

स्त्रोत : जिला सांख्यिकी रूपरेखा कोटा, बून्दी, झालावाड़ एवं बारां 1986, 2006 जनगणना निदेशालय, जयपुर।

वर्ष 2001 में अन्य कार्य करने वाले व्यक्तियों की संख्या का लाडपुरा तहसील में 80.30 प्रतिशत है। सबसे कम अन्य कार्य करने वाले व्यक्तियों की संख्या छीपाबड़ौद तहसील में 10.68 प्रतिशत हैं जहाँ आज भी कृषि आधारित जनसंख्या का अधिक होना है। प्रदेश की बारां तहसील में औसत से अधिक (37.05 प्रतिशत) व्यक्ति तथा शेष सभी तहसीलों में औसत से कम व्यक्ति अन्य काम करने में लगे हैं।

गत दो दशकों में तहसीलवार विश्लेषण से स्पष्ट है कि अन्य कार्य करने में लगे व्यक्तियों की संख्या में सर्वाधिक कमी अन्ता तहसील में 17.47 प्रतिशत तथा के.पाटन में 11.83 की कमी आई है। इसका मुख्य कारण के.पाटन शुगर मील का बन्द हो जाना है। प्रदेश की हिण्डोली, नैनवा, इन्द्रगढ़, लाडपुरा एवं अटरू तहसीलों में अन्य कार्य में लगे व्यक्तियों की संख्या में 2 प्रतिशत की वृद्धि आई है। वर्षा की कमी के कारण काश्तकार कृषि कार्यों को छोड़कर शहरों की ओर मजदूरी करने या अन्य व्यवसायों की ओर प्रवृत्त हुये हैं। जबकि शेष तहसीलों में अन्य कार्य करने वाले व्यक्तियों की संख्या में 6 प्रतिशत से कम की कमी हुई है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. जिला सांख्यिकी रूपरेखा, जिला कोटा, बारां, बून्दी, झालावाड़ 1986
2. जिला सांख्यिकी रूपरेखा, जिला कोटा, बारां, बून्दी, झालावाड़ 2006
3. District Census Handbook, Kota, Baran, Bundi, Jhalawar 1981, 1991, 2001.

## अज्ञेय कृत 'असाध्य वीणा' (आख्यान मूलक) में सर्जन की सिद्धावस्था

अल्का जैन

व्याख्याता, राजकीय महिला महाविद्यालय, चैम्पू

'तारसप्तक' की भूमिका के अन्तर्गत कवि अज्ञेय ने अपने और अपने समान-धर्मी कवियों के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए यह कहा था कि "हम राही नहीं राहों के अन्वेषी है।" प्रस्तुत पुस्तक में दीर्घकाय कविता 'असाध्य वीणा' भी नव राहों के अन्वेषण किन्तु एक सार्थक अन्वेषण की प्रक्रिया की ओर इंगित करती हैं। समस्त कविता को पढ़ने से जो मूल बिन्दु उभरते हैं, उनसे यह ध्वनित होता है कि किरीटी तरु में से वज्रकीर्ति के द्वारा काट-छांट कर जीवन पर्यन्त की साधना के द्वारा जो वीणा तैयार की गई वह उसके बाद अभी तक असाध्य बनी हुई है और आज भी उसकी साध्यता का प्रश्न अनुत्तरित बना हुआ है। देखना यह है कि असाध्य वीणा का प्रतीकार्थ क्या है? और क्या उससे ध्वनित अर्थ केवल एक ही स्तर का हो सकता है या उससे हटकर किसी दूसरे अर्थ का भी उससे ध्वनन होता है। कावरु का क्या सृजन धर्म है और उसकी क्या सच्ची प्रक्रिया है - इसके अन्वेषण का प्रश्न एक शाश्वत प्रश्न है। यह भी असाध्य वीणा का एक अर्थ है और शायद एक प्रमुख अर्थ भी किन्तु इससे हटकर भी एक दूसरा अर्थ ध्वनित होता है। जिससे शायद रचनाकार सहमत हो भी पाता या नहीं भी और वह है जीवनवीणा की असाध्यता का अर्थ। यह प्रश्न भी गम्भीर और चिर पुरातन है। अतः हम अपने उत्तर में आगे इन्हीं दो बिन्दुओं पर विमर्श करते हुए कविता के शिल्पगत वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालना आवश्यक समझेंगे। यह तो एक सधे और मजे शिल्पी का ही अपना कौशल है कि उसने वीणा का असाध्यता के अनुसुलझे और असूझे रहस्य को गूढ़ता, दुर्बोधता और बौद्धिक जटिलता से बचाते हुए आख्यान शैली के द्वारा सरस और रोचक बनाने की चेष्टा की है। वीणा के व्याख्यान के माध्यम से कवि ने काव्य प्रक्रिया की तलाश के प्रश्न का उत्तर खोज निकाला है। गति की अवतारणा कैसे होती? वह कौन-सा क्षण है जब कविता का साक्षात् होता है और कविता भाषा, छंद, बिम्ब, प्रतीकादि के संज्ञक रूप लेकर रचना धर्म अपना लेती है? इस रहस्यमयता का उद्घाटन अज्ञेय ने कथाक्रम में इस प्रकार किया है।

कविता के अध्ययन से ज्ञात होता है कि काव्य उत्स की पहचान के लिए कवि अज्ञेय ने किरीटी तरु से गढ़ी गई 'असाध्य वीणा' से गीति की उत्पत्ति की समस्या को उभारने और उसका समाधान पाने के लिए बतलाया है कि वह वीणा किसी राजा के दरबार में है। राजा ने अनेक कलावंतों, गुणियों और विद्याधारियों को उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए बुलाया किन्तु परिणाम शून्य रहा और प्रश्न अनुत्तरित। 'हार गये मेरे सब जाने माने कलावंत'। राजा की जिज्ञासा फिर भी अशांत और बेचैन है। वह परम-साधक गुहावासी और केशकम्बली साधु को इस आशा के साथ बुलाता है कि सम्भवतः वह इसके स्वर-संधान में सफल हो जाये। यह केशकम्बली काई अन्य नहीं प्रकारान्तर में अज्ञेय ही हैं या अज्ञेय का सनातन कवि है। यह गुहावासी साधक दरबार में आने पर सम्मानित होकर स्वर साधना के लिए प्रत्यन्तशील होता है। किन्तु उसके क्रियाकलापों को देखकर लगता है कि साधक पराजित होकर सो गया है किन्तु ऐसा हुआ नहीं है। वरन् वह उस आसाध्य वीणा के विराट स्वरूप और रहस्यमय रूप को जानने वाला साधक अपने को तुच्छ, विनम्र, अज्ञेय आदि अभावों से पूर्ण मानकर अपने को शरण्य ठहराता हुआ उस किरीटी तक को वीणा में अवतरित होने के लिए प्रार्थना करता है। निवेदन करता है कि वह स्वतः उतने और अपने से अपने को गाये। 'आ उतर वीणा के तारों में अपने को अपने से गा'। जिससे सभी डूबें, तिरें, पूरें, छिपें। अन्त में यही होता है। रस-प्लावन करता हुआ नादमय संसृति का प्रवाह सबको डुबो लेता है, वीणा साध्य हो हो जाती है। यही स्वर-शब्द की ब्रह्म साधना है, वाग्देवता का स्वरूप है और दूसरे स्तर पर यही विश्व जीवन के वीणा की झंकार भी है।

इस आख्यान-मूलक शैली में उठाए गये प्रश्नों को हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर समीक्षित कर सकते हैं-

- 1 असाध्य वीणा एक विराटता का प्रतीक है।
- 2 असाध्य वीणा के रहस्य को विवेचित करने में दर्शन की पीठिका का आश्रय ग्रहण किया गया है।
- 3 साधक और साध्य की सापेक्ष स्थिति निरूपित की है।

- 4 साधक का वीणा के प्रति दैन्य निवेदन और आत्म-समर्पण में वैष्णव भाव-व्यंजना है।
- 5 जगत के नानात्व का चित्रण - गीति अवतारण की असाधरणता का सूचक है।
- 6 सृष्टि के पुरातन और समयतीत स्वरूप की व्यंजना द्वारा वीणा के महात्म्य का प्रकाशन करना है।
- 7 नाद-सृष्टि और तज्जन्य प्रभाव की व्यंजना द्वारा वीणा के महोत्सव का प्रकाशन करना है।
- 8 भारतीय संगीत और जीवन पद्धति से अनुराग निरूपण भी है।
- 9 कवि-कर्म की सफलता का चित्रण प्राप्त है।
- 10 सृजन की प्रेरणा और धर्मता के बीच शिल्पगत विशेषता जीवन के विविध परिदृश्यों से सम्पत्ति की चेतना व्यक्त की गई है। अज्ञेय ने यहाँ काव्य संरचना यात्रा का प्रतीकात्मक इतिहास दीर्घ कविता के रूप में लिखा है।
- 11 कथा शिल्प से कविता में रोचकता का सन्निवेश जीवनानुभव सम्बन्धी दृष्टिबोध किया है।
- 12 शैली में नाटकीयता का स्वरूप-विधान प्राप्त है।
- 13 अलंकार-प्रयोग की मौलिकता और सटीक प्रयोग उच्च कवित्व के सोपान है।
- 14 शैली वैविध्य प्रस्तुति विधान की सफलता का प्रमाणीकरण है।
- 15 शब्द-शक्ति-प्रयोग और शब्द-प्रयोग के नानात्व में कवि क्षमता का प्रदर्शन है।
- 16 प्रतीक और बिम्ब-योजना में नव आयामों का उन्मेष है।
- 17 सम्प्रेषणीयता, संवादात्मकता और आख्यान-परकता के बल पर सृजन की सार्थकता प्रमाणित है।
- 18 नव-प्रयोगों में परम्परा से आगे प्रगति विधान है।

उक्त का संक्षेप में विश्लेषित रूप इस प्रकार है-

कवि अज्ञेय ने 'असाध्य वीणा' की असाध्यता का कारण उसकी विराटता को माना है और स्वतः कवि अज्ञेय ने काव्य-बिन्दु को उभारते हुए लिखा है-

“ओ मूर्ति!

ओ, शीलीभूत संकेत

ओ! आत्मसाक्ष के मुकुर

प्रतीकों के निहितार्थ .....

ओ, निःश्रेयस स्वयंसिद्ध।”

काव्य की इस विराटता के लिए असाध्य वीणा में संकेत दिए हैं कि यह वीणा उत्तराखण्ड के पर्वतीय प्रदेश से लाई गई है। इसे जीवन भर वज्रकीर्ति ने मंत्रपूत कर किरीटी तरु से गढ़ा है। साथ ही कवि ने वीणा के महात्म्य और विराटता को चित्रित करने के लिए किरीटी तरु के गौरव और ऐश्वर्य का पौराणिक संदर्भों से जोड़ते हुए उल्लेख किया है। इससे प्रकारान्तर रूप में वीणा का महात्म्य ही अभिव्यंजित होता है। इस तथ्य को महाराजा पुराख्यान द्वारा इस प्रकार प्रमाणित किया गया है कि-

“मेरे हार गये

सब जाने-माने कलावंत .....

यह असाध्य वीणा ही ख्यात हो गयी।”

कवि अज्ञेय ने वीणा और वीणा से निकलने वाले स्वर - संभार की स्थिति का विवेचन करते हुए यह प्रश्न उठाया है कि क्या वीणा और उससे निःसृत होने वाला नाद क्या परस्पर साधन-साध्य की स्थिति से जुड़े

हैं? अज्ञेय इस सम्बन्ध-भावना को नहीं स्वीकारते बल्कि वे कवि और कविता में अर्थात् वीणा और स्वर-संभार में एकात्मकता की स्थिति या अभेद की स्थिति को ही स्वीकारते हैं। उन्होने कहा है "संचित संगीत जिसे रचने में 'स्वयं' न जाने कितनों के स्पन्दित प्राण रच गए।" स्पष्ट है कि संगीत और उसके रचनाकार में अभेद की स्थिति ही संगीत की उत्पत्ति है। यही तथ्य वीणा के सम्बन्ध में भी है। इस अभेद में भारतीय अद्वैत का चिंतन प्रेरक तत्व बनकर आया है। जब वीणा झनझना उठी तो एक पक्ष में संगीतकार की आंखों में ठंडी पिघली ज्वाला झलकने लगी और दूसरे पक्ष में सबके तन में बिजली सी दौड़ गई। इस विवेचन से तीन पक्ष उभरते हैं। एक पक्ष में रचना, दूसरे में रचनाकार और तीसरे में पाठक और श्रोता। इनका परस्पर क्या स्वरूप और स्थिति हो, यह भी एक समस्यापूर्ण स्थिति है। किन्तु अज्ञेय ने इन तीनों की एकात्म स्थिति हो, यह भी एक समस्यापूर्ण स्थिति है। किन्तु अज्ञेय ने इन तीनों की एकात्म स्थिति को त्रिवेणी का रूप दिया है। यही रचना या संगीत का चरम परिणति है। ऐसे संगीत में ब्रह्मा का अशेष प्रभामय मौन अखण्ड सोता है। अर्थात् संगीत या रचना की परिणति की प्रक्रिया या दूसरे शब्दों में रचना-प्रक्रिया का लक्ष्य, ब्रह्मानन्द सहोदर की स्थिति तक कवि और पाठक को पहुँचाना है।

पूर्व में कहा जा चुका है कि साधक कवि और साध्य काव्य की सृजन प्रक्रिया की सही तलाश बराबर काव्यानुभूति के बीच कवि की गहन अन्विति होती है या पूरा समर्पण का भाव होता है। यदि यह समर्पण नीरंध्र होगा तो निश्चित की काव्य-रूपील असाध्य वीणा से वह नादमय संसृति का विकास होगा जिसका रस-प्लावन इतना सुखद होगा कि राजा-रानी और सभासद बनाम पाठक या सहृदय श्रोता तिर्रे, झिपे, डूबे और पूरे की स्थिति में आ सकेंगे और शब्द ब्रह्मकी सृष्टि सम्भव हो सकेंगी। वीणा की असाध्यता का अवगुंठन हटकर उसमें झंकार पैदा हो जायेगी। काव्य संरचना की गूढ और रहस्यमय या कहिये कि असाध्य यात्रा अपने सही, किन्तु अंतिम पड़ाव तक पहुंच जायेगी। इसके लिए कवि अज्ञेय ने गुहावासी साधक के द्वारा वीणा के गोद में रख लेने के बाद दैन्य और निवेदन पूर्ण भाषा(अहम् का विगलित कर) में बार-बार नादमय संसृति को अवतरित होने और अपने से अपने को गाने के लिए आमंत्रित किया है यही रचना की प्रक्रिया और उसकी पहचान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. आंगन के पार द्वार से "असाध्य वीणा"-अज्ञेय
2. हिन्दी साहित्य में विविधवाद-डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल
3. साढोतरी हिन्दी कविता : शिल्प के नये आयाम-डॉ. बादामसिंह
4. आत्मनेपद-अज्ञेय
5. सर्जना के क्षण-अज्ञेय
6. तारसप्तक-अज्ञेय

## मीडिया की भूमिका : 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के प्ररिप्रेक्ष्य में

डॉ. अनीता

प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, दयालबाग शिक्षण संस्थान, दयालबाग, आगरा

यूरोप में आयी औद्योगिक क्रान्ति (18 वीं शताब्दी) के पश्चात् जैसे-जैसे निरंकुश राजतन्त्र का स्थान लोकतान्त्रिक शासन-व्यवस्था लेती चली गयी वैसे-वैसे जन-सम्पर्क तथा लोकतन्त्र के प्रचार-प्रसार के लिए संचार-माध्यमों (मीडिया) का विकास उत्तरोत्तर तेजी से होना लगा। लोकतान्त्रिक शासन-प्रणाली के क्रियान्वयन में संचार-माध्यम महत्त्वपूर्ण स्तम्भ का कार्य करते हैं। वर्तमान समय में जन-सम्पर्क के अभाव में, जिसका सर्वप्रमुख साधन संचार-माध्यम ही हैं, सजग, सक्रिय व सफल जीवन-यापन की कल्पना 'आकाश-कुसुम' जैसी है। 'सूचना ही शक्ति है' का सिद्धान्त आज सर्वमान्य है। सरकारों द्वारा प्रदत्त विभिन्न सेवाओं एवं संसाधनों को जन-सामान्य तक पहुँचाने में मीडिया की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

आज विश्व-बाजार में गुंजित 'वैश्वीकरण' शब्द सर्वाधिक विभ्रम पैदा करने वाला शब्द है। इसको अनेकानेक नामों यथा 'भूमण्डलीकरण' 'विश्वव्यापीकरण' तथा 'वैश्विक गाँव' से पुकारा जाता है। भारत में इसे 'डंकल प्रस्ताव' के नाम से भी पुकारा गया। प्रायः 'वैश्वीकरण' का अर्थ भारतीय संस्कृति की मूल विचारधारा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' से लिया जाता है यथार्थतः इन दोनों शब्दों में निहित भावना में व्यापक अन्तर है। 'भूमण्डलीकरण' अथवा 'वैश्वीकरण' से तात्पर्य है, किसी देश की अर्थव्यवस्था का 'एकीकरण' शेष विश्व के साथ हो जाना। यह एकीकरण आर्थिक नीतियों के स्तर पर, सूचना प्रौद्योगिकी एवं संचार-माध्यमों के स्तर पर तथा उत्पादन तकनीक के प्रयोग एवं हस्तांतरण के स्तर पर होता है। जबकि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के अन्तर्गत सम्पूर्ण विश्व को एक 'परिवार' के रूप में देखा जाता है। यह 'सृष्टि परिवार' अथवा 'विश्व-परिवार' प्रेम, त्याग, सहयोग, सेवा, उदारता तथा निःस्वार्थ भाव से पारस्परिक निर्भरता के कारण 'एकीकरण' को प्राप्त करता है। संक्षेप में स्वार्थपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जब विभिन्न देश पूर्व नियोजित निर्देशों के आधार पर आपस में समझौता करते हैं, उसे वैश्वीकरण कहते हैं और निःस्वार्थ भाव से प्रेम, सेवा, उदारता एवं त्याग के परिणाम स्वरूप विभिन्न देशों में बन्धुत्व का भाव पैदा होता है, उसे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त कहते हैं। 'पंचतन्त्र' में आया है-

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानास्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।'

अर्थात् यह मेरा है, यह दूसरे का है, ऐसी गणना छोटे हृदय वाले लोग ही करते हैं। उदार व्यक्तियों के लिए तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही एक कुटुम्ब के समान है। इसी भाव की अभिव्यक्ति करते हुए वैदिक ऋषि कहता है-

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिवी'

श्वेताश्वतरोपनिषद् 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करती है-

ऊँ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।

तेजस्विनावधीमस्तु मा विद्विषावहै।

ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।'

अर्थात् हे परमात्मा! टाप हम दोनों (गुरु-शिष्य) की साथ-साथ रक्षा करें। हम दोनों का साथ-साथ पालन करें। हम दोनों साथ-साथ शक्ति अर्जित करें। हम दोनों की पढ़ी हुई विद्या तेजस्वी (प्रखर) हो। हम दोनों एक दूसरे के प्रति द्वेष न करें। हमारे त्रिविध (आधिभौतिक, आधिदेविक और आध्यात्मिक) तापों की शान्ति हो और हम अक्षय शान्ति को प्राप्त करें। इसी प्रकार से एक अन्य स्थान पर कहा गया है-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ।।'

अर्थात् विश्व के प्राणीमात्र सुखी हों, प्राणीमात्र निरोग हों, सभी का कल्याण हो या सभी मंगलदर्शी हों और कोई दुःखी न हो।

आज से सदियों पूर्व ही भारतीय मनीषियों ने यह घोषणा कर दी थी कि 'मानवमात्र की परस्पर रक्षा व सहायता करना मनुष्य का कर्तव्य है' (पुमान् पुंसां परिपातु विश्वतः)। वैदिक ऋषि के हृदयोद्गार देखिए- मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। अर्थात् मैं प्राणीमात्र को मित्र की दृष्टि से देखूँ और उनके द्वारा भी मित्र की दृष्टि से ही देखा जाऊँ। ऋषियों के इन उद्गारों में विश्व-बन्धुत्व की भावना विश्व के कल्याणार्थ स्वाभाविक रूप में आयी है। आज जो एकांगी अर्थ लिये हुए स्वार्थपूर्ण लालसाओं की पूर्ति हेतु 'वैश्वीकरण' का जो उद्घोष सुनाई दे रहा है, उसमें 'विश्व-बन्धुत्व' का भाव न होकर 'विश्व-बाजार' का भाव निहित है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'विश्व-बन्धुत्व' और 'वैश्वीकरण' दो अलग-अलग भावभूमि का आधार लेकर निर्मित सिद्धान्त हैं। एक (वैश्वीकरण) का स्वरूप बाह्य एवं संकीर्ण है तो दूसरा (वसुधैव कुटुम्बकम्) समग्र सृष्टि के हित-चिन्तन को अपने आपमें समाहित किये हुए है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' ही भारतीय संस्कृति का सार है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जहाँ अखिल ब्रह्माण्ड को एक 'परिवार' के रूप में देखता है, वहीं 'वैश्वीकरण' की दृष्टि में सम्पूर्ण विश्व एक बाजार है।

'वैश्वीकरण' के सम्बन्ध में विभिन्न देशों को एक मंच पर लाने का मीडिया एक महत्त्वपूर्ण साधन रहा है। जन संचार-माध्यम हमें सजग बनाते हैं, सजगता के कारण हम अपनी आवश्यकताओं के प्रति जागरूक होते हैं और आवश्यकताओं की पूर्ति ही परस्पर निर्भरता का कारण है। विभिन्न देशों की एक-दूसरे पर आर्थिक, सामरिक, तकनीकी व प्रौद्योगिकी के आधार पर निर्भरता ही 'वैश्वीकरण' है। इस वैश्वीकरण के सिद्धान्त को परिपूर्ण एवं सफल बनाने में समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, टेलीविजन, कम्प्यूटर, इंटरनेट, रेडियो, कैसेट्स, टैप-रिकार्डर तथा फिल्म इत्यादि की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आज विश्व के किसी भी भाग में घटित घटना विश्व भर में क्षणभर में पहुँच जाती है। किसी भी देश में हुआ आविष्कार, सुधार-कार्य या किसी विशेष क्षेत्र का योगदान उसी देश के लिए नहीं है, वह तत्क्षण अपने प्रभाव से सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित करता है। इसके मूल में संचार-माध्यम ही हैं। संचार-क्रान्ति ने दुनिया को एक सूत्र में बाँधकर 'ग्लोबल-विलेज' (वैश्विक-गाँव) के रूप में परिवर्तित कर दिया है। अरेबियन-क्रान्ति सोसल-वेवसाइट्स का ही परिणाम है जो कि ट्यूनिशिया से आरम्भ होकर कई अरब देशों में सत्ता परिवर्तन का कारण बनी। इसी प्रकार से 'विकीलीक्स' ने विश्व-भर के राजनयिकों व सुरक्षा संगठनों के होश उड़ा दिये। 'विकीलीक्स' खोजी पत्रकारिता या जासूसी पत्रकारिता का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। राष्ट्रीय-स्तर पर देखें तो बोफोर्स काण्ड, तहलका काण्ड, 2-जी स्पेक्ट्रम घोटाला, अन्ना की भ्रष्टाचार विरोधी मुहिम तथा वर्तमान में तमिलनाडू एटमिक पावर स्टेशन के विरुद्ध वहाँ के मछुआरों द्वारा छेड़ी गयी मुहिम को संचार-माध्यमों ने ही जन-जन तक पहुँचाकर व्यापक जन-समर्थन जुटाने में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है। संचार-माध्यमों ने प्रशासन की मनमानी, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, तथा कॉलेज-विश्वविद्यालयों की मनमानी को रोकने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस समय मतदान के लिए जागरूकता अभियान विभिन्न जन-संचार-माध्यमों के द्वारा चलाया जा रहा है।

संचार-माध्यमों ने वैश्विक-स्तर पर यद्यपि विभिन्न देशों को एक मंच पर ला दिया है परन्तु विश्व-बन्धुत्व के विषय में इनकी परिपूर्णता अभी शेष है। भले ही 21वीं सदी को 'सूचना एवं प्रौद्योगिकी' की सदी कह दिया गया हो परन्तु आज भी मीडिया के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती आदर्शों की प्रस्तुति की है। किसी भी क्षेत्र में आदर्शवादिता यथार्थ की सफलतम परिणति होती है। 'योगः कर्मसु कौशलम्' के अनुसार किसी भी कार्य की पूर्णतया सफल-सिद्ध के लिए उसके प्रति योग (अनन्य निष्ठा) का होना परमावश्यक है। संचार-माध्यमों को भी समाज में आदर्श की स्थापना के लिए प्रयास करना चाहिए। वर्तमान में प्रचलित 'वैश्वीकरण' में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव तब आयेगा जब विश्व भर में संचार-माध्यमों के माध्यम से जन-जन तक असत्य से सत्य की ओर, अज्ञान रूपी अंधकार से प्रकाश की ओर मृत्यु (विपन्नता) से अमृत-तत्त्व (सम्पन्नता) की ओर प्रेषित करने का सन्देश पहुँचेगा-

असतो मा सत् गमय,  
तमसो मा ज्योतिर्गमय,  
मृत्योर्मा अमृतं गमय।'

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. विष्णु शर्मा, पंचतन्त्र (अपरीक्षित कारकम्), श्लोक संग्रह 38, संस्कृत ग्रन्थागार, दिल्ली।
2. ऋग्वेद, पृथ्वी सूक्त-12/01/12, गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. अमृतनादोपनिषद्, शान्ति पाठ, गीता प्रेस, गोरखपुर।
4. गीता-2/50
5. बृहदारण्यकोपनिषद्-1/3/28

## ‘डांडियो’ में समाज सुधार दर्शन : ऐतिहासिक संदर्भ में

प्रा. गणेश एन. निसरता

सरकारी विनयन कोलेज, शहेरा, पंचमहाल (गुजरात)

19 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में गुजराती समाज नगर एवं गांव से निर्मित था। गुजरात के लोग कृषि, पशुपालन और कारीगर जैसे व्यवसायों में जुड़े हुए थे। समाज को धर्म और रीति-रिवाजों से युक्त तो था ही साथ व्यवसाय में भी इसी की भूमिका महत्वपूर्ण थी। समाज में जातिवाद का महत्व था। समाज में कई अनिष्टों का प्रवेश हो चुका था। जिसको दूर करना सोचने जैसा आसान नहीं था, फिर भी कई समाज सुधारकों ने अपना पूरा जीवन उसमें समर्पित कर दिया। इसमें एक समाज सुधारक के रूप में कविवर नर्मद का बहुमूल्य योगदान रहा है।

### समाज सुधारक कवि नर्मद का परिचय

कवि नर्मद के रूप में प्रसिद्ध नर्मदाशंकर लालशंकर दवे का जन्म 28 अगस्त 1833 सूरत में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनकी प्राथमिक शिक्षा सूरत में हुई थी। वे दुर्गाराम मेहता के विद्यार्थी रहे। इसके बाद इन्होंने उच्च शिक्षा मुम्बई की एल्फिस्टन कॉलेज में प्राप्त की। माता के अवसान के बाद बचपन से नर्मद अपने पिता की छत्रछाया में बड़े हुए। इनके पिता मुंबई के छापे खाने में नौकरी करते थे। 19 वीं शताब्दी के मध्यकाल में मुम्बई में प्रचलित विचारों से वह प्रभावित हुए थे। मुंबई में ई.सं. 1853 में भारतीय प्रथम रेल की शुरुआत से नर्मद पर काफी गहरा प्रभाव पड़ा।

नर्मदाशंकर लालशंकर दवे के कवित्व के पीछे समाज सुधार की कहानियाँ काव्यों में कहने से नहीं बल्कि उस समय की परिस्थिति ने उन्हें सुधारक कवि बनाया। एक बार वे सूरत गए, वहाँ “इन्द्रलतावली” नाम की किताब के अभ्यास से इन्होंने दोहा, चौपाई, छंद जैसे नियमों से ज्ञात हुए थे। इसके पश्चात् वे कलम की कटार से संसार को सुधारने में लग गए। इन्होंने कहा है “डग भर्यु के ना हटवु ना हटवु, न जवाय जो आगल तो पण पाछु ना हटवु.” इनका आशय गद्य और पद्य की पुरानी परंपराओं से मुक्त करना। इसलिए उन्होंने कविता, निबंध, लेख के माध्यम से धर्मज्ञान, धार्मिक मान्यताओं, बालविवाह जैसे सामाजिक कलंक से समाज को मुक्त करने का प्रयास किया। नर्मद ने ई.सं. 1851-1853 तक सूरत के रांदेर में एक शिक्षक के रूप में सेवा की थी। इसी समय के दौरान “स्वदेशी हितेच्छु” नाम की एक संस्था का निर्माण किया और “ज्ञानसागर” नाम से एक साप्ताहिक भी शुरू किया। इसके पश्चात् ई.सं. 1864 में इन्होंने “डांडियो” साप्ताहिक की शुरुआत की। ऐसे कवि, शिक्षक, पत्रकार और एक समाजसुधारक के रूप में सफल नर्मद 26 फरवरी, 1886 के दिन इनका अवसान हो गया।

### गुजराती पत्रकारित्व और समाज सुधार

मध्यकालीन राज्य व्यवस्था में सन्देश भेजने के लिए दूत को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजे जाते थे। आधुनिक पत्रों का प्रयोग पश्चिमी प्रेरणा से होने लगे। 18 वीं शताब्दी में मुद्रणयंत्रों के अस्तित्व से मुद्रण-कला का जन्म हुआ। किन्तु दैनिक पत्रों, साप्ताहिक और सामायिक 18 वीं शताब्दी की देन है। सबसे पहले अंग्रेजी भाषा में कलकत्ता मुम्बई और मद्रास से दैनिकपत्रों की शुरुआत हुई। इसके बाद बांग्ला भाषा में दैनिकपत्र का प्रारम्भ हुआ था। ई.सं. 1788 के आसपास रुरुस्तम नामक एक व्यक्ति ने मुंबई से प्रेस की स्थापना की और अंग्रेजी में सबसे पहले पंचांग छापने का प्रयास किया।

गुजराती भाषा का सबसे पहला दैनिक जुलाई सन् 1822 में “मुंबई समाचार” प्रकट हुआ था। यह दैनिक सन् 1855 से आज तक प्रकाशित हो रहा है। इसके पश्चात् गुजरातमित्र चाबूक जामेजमशेद रास्तगोकतार, बुद्धिप्रकाश, सत्यप्रकाश जैसे कई पत्र निकले और बंद भी हो गए। इन सभी समाचार पत्रों में डांडियों का भी अपना अलग स्थान था। डांडियों एक पाक्षिक था। जिसका प्रथम अंक 1 सितम्बर 1864 के दिन प्रकाशित हुआ था।

### डांडियो में नर्मद का पत्रकारित्व

19 वीं शताब्दी के प्रारंभ में चौरी और दंगों से समाज भययुक्त था। रात्रि के समय 12 से 2 बजे तक डांडियो गांव की गलियों में घूमकर लोगों को जागृत रहने के लिये सचेत किया जाता और दांडी को पिटा जाता था। इसके तनखाह में लोग रात को बचा-कुचा खाना देते थे। डांडियो का कार्य देखकर नर्मद को अपना पाक्षिक का नाम डांडियो रखने की प्रेरणा मिली। नर्मद जब मुम्बई में थे उस समय लोग कम मेहनत पर अधिक आमदनी के लिए शहर की ओर आकर्षित हुए थे। इसका परिणाम यह आया कि कई लोगों को फायदा तो कितने बेघर हो गए और बुरे रास्तों को भी अपनाने लगे थे। उसी समय नर्मद ने अपने दोस्तों और अन्य लोगों को सही रास्ते पर लाने के लिए “लिटररी क्लब” की स्थापना की। इसमें कई दोस्त जुड़े और इसी की फलश्रुति के आधार पर नगीनदास तुलसीदास मारफतिया ने उसका नाम “डांडियो” रखने का सुझाव दिया।

नर्मद को यह नाम बहुत ही उचित लगा। इसलिए वह कहते हैं कि “मोहटुं नाम राखी हलकुं काम करवुं तेना करता हलकुं नाम राखी मोहटुं काम करवुं वधारे सारु.” इस तरह 1 सितम्बर 1864 के दिन “डांडियो” का प्रारम्भ हुआ।

### डांडियो का विषयवस्तु - 1864 - 1869

नर्मद का “डांडियो” समाज में व्याप्त चौरी, डकैती, शोषण, अंधविश्वास जैसी बढियों से समाज को बचाने का आह्वान था। “डांडियो” में हास्य-व्यंग का पुटा भी था। नर्मद का “डांडियो” दैनिक पत्र और चोपानिया दोनों की कार्य-पूति करता था। दैनिक वृत्तान्तों का पूरा व्योरा नहीं था पर जनमानस का स्पर्श करने वाली घटनाओं और समस्याओं की चर्चा अवश्य की जाती थी। इन में भय, आक्रोश होने के साथ-साथ वैचारिक स्वच्छता भी थी। डांडियो में केवल नकारात्मक लेख ही नहीं थे बल्कि विधेयक विचारधारा का भी प्रवाह था। रसिक जनने प्रीति संबंधी प्रश्न “मानेकठारी पुनमे” “जे घडी जाय ते सुकृत ने आनंद माँ कहाडवी” “ऊंचु कुल कोने कहेवु” “नवा ज्ञाननु अजवालु अने विचाररूपी हवा” “सुख” “उद्यम मोटा विश्व माँ” “अवकाश तरंग” “रसिक स्वप्नचित्र” “सरस्वती सर्वोपरि छे” जैसे विचारप्रेरक, माहितप्रधान, शिक्षात्मक लेखन इसकी समृद्धि है।

डांडियो ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति का वर्णन बड़े आत्मविश्वास से कहा है कि बुद्धिवर्धक, बुद्धिप्रकाश और गुजरातीमाला जैसे पत्रों के साथ-साथ गद्य के रूप में भी अपना विशिष्ट स्थान बना सके है। डांडियों के स्वमूल्यांकन में वस्तुनिष्ठता कम है जबकि आत्मरति नर्मद कि तरह डांडियों की प्रकृति थी। अन्य सामयिको गुजराती भाषा के विकास और लोक-रुचि प्राप्त करने में डांडियो से पीछे रहे थे। डांडियो हकीकत में सीमित वर्ग का नहीं व्यापक समाज का पाक्षिक था। इसका स्तर सत्यप्रकाश रास्तगोकतार और चन्द्रोदय जैसे सामयिको से अवश्य ऊँचा रहा था।

### समाज सुधार का वर्णन

डांडियो ने समाज में प्रवर्तमान बढियों वैष्णव समाज के पापकाण्डों और लोगों में व्याप्त अंधश्रद्धा का विरोध किया। शेरबाजार के कलुषित वातावरण और उसके अनिष्टों से लोगों को जागृत किया। चौरी, डकैती, अन्याय, घूस, दंभ जैसे अमानवीय कार्यों पर प्रकाश फेंका। दूसरे की मेहनत पर पलने वाले ऑफिसरों सरकार की विचित्र नीतियों की टीका की जाती थी। गांव के राजाओं में भी अपना आधिपत्य दिया था। इस तरह के मानव का अनुभव करते हुए जाति भाईयों पर व्यंग करते हुए लिखते हैं - “जात जातने खाय तेम मारा जाति भाइओ तो मुंगा बैटा छे, हूँ मरूँ छुं के जीवु तेनी तेमने दरकार नथी।”

डांडियो में स्वयं मेहनत करके भी साहेबों के प्रति अपनी अपार दृष्टि रखने वाले गुजरातीयों की और से व्यंग करता है। अपने आपको समाज सुधारक कहलाने वाले दुर्गाराम विधवा पुनः विवाह के समर्थक तो थे, किन्तु इन्होंने स्वयं इस बात का पालन नहीं किया। इस पर भी व्यंग किया गया है। डांडियो के प्रारंभिक लेख आमतौर पर मजाक की अधिकता है किन्तु बाद के अंकों में गंभीरता रही है। तत्वज्ञान जैसे विषय को डांडियों ने छुआ है। “सुख” नाम के एक निबंध में सचेत सुख की व्याख्या दी गई है। “आजकल” निबंध में उन्होंने कहा - “आजकाल सहुना माथामा ऐज धुन भराई रहेली छे के पुष्कल धन कमाईने गाडी, वाडी, लाडीनो उपभोग करवो ऐ ज जिव्यानु सार्थक छे। ख. प. च. ऐ बीज अक्षरों पूरा सधाय एटले आठ सिद्धि अने नवनिधि प्राप्त थई, साधनारो कृतार्थ थयो एम माने छे। सघलु सुख अने साचु सुख ऐ त्रणमाँ ज छे, एम कहेवाय।”

डांडियो ने राजकीय विषय पर भी अपनी जिम्मेदारी समझकर लिखा था। हिन्दी राष्ट्रीय महासभा का जन्म उस समय नहीं हुआ था। किन्तु इसी और डांडियो का ध्यान गया था। इन्होंने भारतीयों को सैन्य तालीम देने की सिफारिश की गई। नमक पर ले जाने वाले बेट की टीका की थी, साथ में हिन्दी भाषा सीखने की आवश्यकता को भी बताया था। हिन्दी सरकार के 1868 से 1869 के बजट की भी चर्चा की थी। डांडियो ने स्वीकारा है कि इनमें लिखा जाने वाले लेख न किसी विशिष्ट व्यक्ति के लिए नहीं, किन्तु सामान्य लोगों के लिए भी है। इसी तरह डांडियो ने समाजसुधार का महत्वपूर्ण कार्य किया।

#### डांडियो का महत्व

डांडियो का लेवल पुरातत्वीय महत्व नहीं है, इससे भी बढ़कर ग्रंथालय मूल्य से अलग स्मारक मूल्य है। नर्मद ने जिस शस्त्र से संघर्ष किया इससे ही उन्होंने सर्वक्षेत्रों में जनजागृति का प्रचार-प्रसार किया। इतना ही नहीं अपने गद्य की ताकत से नये आयामों के आविष्कार में सांस्कृतिक मूल्य ज्यादा है। इससे नये विचार और जनमानस में नवचेतना के आंतरिक सत्य जागृत करने वाला प्राणयुक्त माध्यम था।

#### संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. दवे नर्मदाशंकर लालशंकर "डांडियो", (संपा.) रमेश शुक्ल, कवि नर्मद युगावर्त ट्रस्ट, सूरत।
2. वही, पृष्ठ - 10, 11
3. कवि नर्मद "मारी हकीकत", नर्मद की आत्मकथा, युगावर्त ट्रस्ट, सूरत, 1994.
4. माशेल रतन, "गुजराती पत्रकारत्वनो इतिहास", गांडीव साहित्य मंदिर, सूरत, 1931.
5. वही, पृष्ठ - 13
6. ब्रोकर गुलाबदास, "नर्मद", गुजराती ग्रंथकार श्रेणी - 6 (संपा.) जोशी रमनलाल, अहमदाबाद, 1977.
7. वैध विजयराय, लीला, सूका पान, सूरत।

## Juvenile Hormone Like Substances: Part XXXII

### Search for greener pesticides: eco-friendly approach towards management of pests

Dr. V. P. Patial

Associate Professor, Govt. P.G. College Dharamshala (H.P.)

The continuous growth of population around the globe requires substantial resources for the production of food. Agriculture is the driving force for broad-based economic growth in developing countries where food demand is particularly critical because of the slow rate of net food production. Insecticides have a pivotal role in our lives, not only for crop protection, but also to avoid the spreading of harmful pests causing human diseases such as malaria. Due to economic, health and more especially, environmental reasons, the designing of effective compounds that could control these pests is quite an important task in agrochemical, environmental sciences and in the industrial world. The use of highly toxic classical insecticides for several decades continuously has led to serious negative effects in the environment like killing of non-targeted harmless species, both plants and animals, thereby creating imbalance in biodiversity which ultimately leads to negative effects in the environment. Synthesis, mode of action and environmental profile of juvenile hormone analogues, biological insecticides such as spinosyns, microbial insecticides and azadirachtin as green alternatives for synthetic insecticides have been reviewed.

**Introduction:** The first efficient insecticides were introduced in the middle of the 20<sup>th</sup> century. Before that, the pests were mainly controlled by inorganic compounds like sulphur, arsenicals, HCN or cryolite, some of which are still being used despite of their high toxicity. Later on the introduction of organochlorine, organophosphorus and carbamate insecticides brought a revolution<sup>1</sup> in agrochemical science as they significantly brought down the crop reduction due to insect and pests activity.

The introduction of DDT as organochlorine insecticide with wide spectrum insecticidal action and having a long residual activity<sup>2</sup> brought a significance enhancement in the agriculture production. A few years later, organochlorine insecticides were shown to cause severe negative environmental damages, both in terrestrial and aquatic ecosystem<sup>3</sup>. Their long persistence caused an accumulation of organochlorine insecticides in animals through the food chain and as a result most of were banned in many countries<sup>3</sup>, although DDT is botanical insecticide seems to be azadirachtin,

still in use in some of the countries where malaria is endemic<sup>4</sup>. Recent studies reveal that chronic exposure to DDT is associated with neurological impairments<sup>5</sup>, accelerated ageing<sup>6</sup> and breast cancer<sup>7</sup>. Organophosphorus insecticides prove to be the reliable and effective insect control agents. They affect the nervous system by phosphorylation of acetylcholinesterase, causing respiratory muscle weakness and neuromuscular dysfunction<sup>8</sup>. Carbamates are still in use and are selective against targeted species<sup>9</sup>. These are toxic against some useful species like honey bees. Carbamates have low persistence in the soil, plants and the environment<sup>3</sup>.

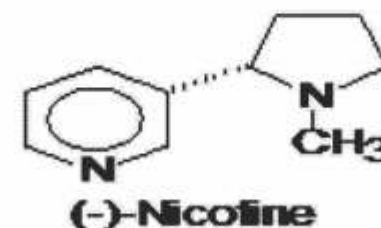
Apart from these negative environmental aspects, now days there are populations of insects which are resistant to organochlorine, organophosphorus and carbamate insecticides<sup>10</sup>. For example 98 species of insects including Anopheles vector of malaria, the human body louse, *Pediculus humanus*, vector of plague and four other fleas, 18 species of culicine mosquitoes have become resistant to one of the oldest and most effective insecticide, 2, 2-bis-(p-chlorophenyl)-1, 1, 1-trichloroethane, DDT<sup>11</sup>. Further, 27 species of agricultural pests including such destructive forms as the pink boll worm, *Pectinophora gossypiella*, cabbage looper and the corn earworm have also developed DDT<sup>12</sup> resistance. In order to overcome this resistance it would be interesting to have new pesticides with a different mechanism.

Also the use of 2, 4-D, i.e., (2, 4-dichloro phenoxyacetic acid), a volatile herbicide, by corn growers is reported to decrease the production of grapes in the adjoining area to an extent of about 96%. So, the main aim of pesticide research is the development of new, selective and highly effective compounds that cause no harm to human health and the environment<sup>13</sup>.

**Pyrethroids:** Pyrethroids are synthetic insecticides structurally derived from six natural pyrethrins, isolated from pyrethrum, the plant extract<sup>14</sup> of *Chrysanthemum cinerariaefolium* flowers. Pyrethrum itself exhibits insecticidal activity<sup>15</sup> against some pests and have low mammalian toxicity; however, its instability in light and air strongly reduces potential effectiveness. The activity of these compounds is due to their high affinity to insect Na<sup>+</sup>-channels, causing neuronal hyperexcitability. The synthetic approach allowed the development of pyrethroids not only for indoor uses but also for crop protection and for veterinary and medical pest management<sup>16</sup>. Many features together with a good degree of biodegradability and selectivity, allowed pyrethroids to be taken as the safest and one of the most effective insecticides, with a better environmental profile than organochlorine, organophosphorus and carbamate insecticides. Toxicological studies

revealed that some pyrethroids are highly toxic to fish<sup>16</sup>. Due to the economic and environmental importance of pyrethroids; intense research on these substances is still being carried out.

**Neonicotinoids:** (-)-Nicotine and nicotinoids have been tested as compounds in insect control<sup>17</sup>. (-)-Nicotine, obtained from tobacco extracts has been used as an aphicide against sucking insects, although it has low potency and highly toxic to mammals.

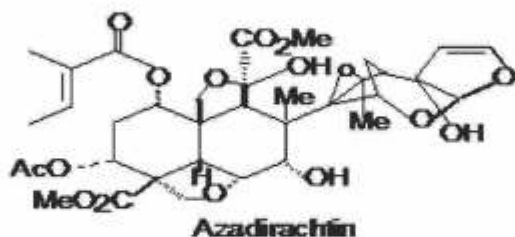


The neonicotinoids represent a new generation of synthetic insecticides as they have unique property allowing them to be the fastest growing synthetic insecticides in the market. Some of these unique properties are broad-spectrum insecticidal activity, especially lethal for sucking and chewing insects, low application rate, a novel mode of action and a safety profile, as well as lacking cross-resistance to other insecticides. As a result, neonicotinoids are increasingly used in crop protection and animal health care.

**Spinosyns and spinosoids:** Spinosyns are a new class of lactone-derived macrolides with a 21-carbon tetracyclic backbone produced by a culture of the actinomycete *Saccharopolyspora spinosa* as secondary metabolites<sup>18</sup>. These novel compounds were discovered in a soil sample in the Caribbean area in 1980s. Spinosad exhibits extraordinary potency against a broad spectrum of insect pests, especially against lepidopterans and dipterans<sup>19</sup>. They degrade photochemically when exposed to light after application and strongly adsorb to most soils and do not reach up to groundwater. There is no evidence that spinosad is a reproductive toxicant or carcinogen to mammals.

**Neem insecticides: azadirachtin:** Many plants generate chemicals for self defence that are toxic to insects. These naturally occurring insecticides are called botanical insecticides or botanicals. These comprise rotenone, d-limonene, ryania, pyrethrum and nicotine. However the most promising

a triterpenoid isolated from the seeds of the Indian neem tree *Azadirachta indica*<sup>20</sup>. For thousands of years, the therapeutic and insecticidal properties of the neem tree have been recognised in India.



Azadirachtin exhibits insecticidal activity against more than 200 pest species<sup>21</sup>, although only a few of them can be used as commercial insecticides because of the high cost of production as compared to synthetic insecticides. Azadirachtin exhibits a variety of modes of action. It is active as an antifeedant and as an insect growth regulator<sup>22</sup>. As it reduces the level of the insect hormone ecdysone. Mating and sexual communications may also be disrupted.

Azadirachtin is an ideal complementary insecticide in Integrated Pest Management (IPM) programme because it kills phytophagous insects but has no activity against beneficial predatory mites or insects<sup>21</sup>. The compound is relatively short lived and easily degradable; further, its mammalian toxicity is low although it shows toxic effects against fishes and certain aquatic invertebrates. A reversible effect on reproduction of both male and female mammals seems to be the most important toxic effect upon chronic exposure<sup>23</sup>. Azadirachtin was classified by US EPA as a biorational insecticide because of its natural origin and its limited adverse effect on the environment or useful organisms<sup>21</sup>.

**Microbial insecticides:** The use of living systems as agents for pest control is emerging as a promising area for the future design of environment friendly insecticides<sup>24</sup>. These living systems comprise virus, bacteria, fungi, insect predators, engineered plants and microorganisms. Although currently biopesticides represent only 1% of the world pesticide market, this percentage is expected to increase to 20% by 2020. Biopesticides are very safe to non-targeted organisms like humans and the environment. In USA, several baculoviruses have been registered as pesticides. These baculoviruses do not infect man or plants and thereby provide effective control against many insect species. The use of baculoviruses as insecticides presents many advantages

such as high specificity, adequate pathogenicity, ease of genetic manipulation and residual problem. These biopesticides are safe for their use as pest control agents against pests as they do not replicate in mammalian cells and even they do not seem to be able to enter the mammalian cell nucleus<sup>25</sup>. The main disadvantages of baculoviruses as insecticides are a slow action; very narrow specificity and instability in the environment as they get deactivated if exposed to UV radiations. These factors, together with the difficulty of production have limited the use of baculoviruses as commercial insecticides. The most important microorganisms used as biopesticides are bacteria, especially *Bacillus thuringiensis* (*Bt*), an endospore-forming soil bacterium<sup>26</sup>. There are hundreds of *Bt*-subspecies and during sporulation most of them produce one or more insecticidal proteins called  $\delta$ -endotoxins<sup>27</sup> or insecticidal proteins (ICPs or Cry proteins). Every bacterial strain produces a toxin which is specific against a group of insects and there are currently 160 insect pests which are susceptible to *Bt*.

*Bacillus thuringiensis* (*Bt*)-based insecticides have been used since 1961 against caterpillars and more recently against mosquito and black fly larvae<sup>28</sup>. *Bt*-insecticides comprise a mixture of spores, spores undergoing germination, vegetative cells, Cry proteins and cell debris<sup>28</sup>. *Bt* derived insecticides have a favourable environmental profile and they are practically non-toxic to human and mammals and are safer for most non-targeted species. These insecticides do not leach with groundwater and are biodegradable and do not persist in the environment. However,  $\delta$ -endotoxins are readily inactivated and the number of spores decreases quickly.

**Insect growth regulators:** Insect growth regulators are the compounds that alter the normal growth process of insects and can therefore be used to control insects. These compounds interfere with insect metamorphosis, embryogenesis or reproduction. In this category we have compounds that mimic insect juvenile hormone activity and substances that inhibit chitin synthesis in the exoskeleton. Juvenile hormones (JH) and juvenile hormone analogues (JHA) fall in this category.

**Juvenile hormones and juvenile hormone analogues—as potential greener pesticides:** Juvenile hormones have been described as *Potential insecticides*<sup>29</sup> and *Third generation pesticides*<sup>30</sup> because they inhibit the metamorphosis and preserve the larval stage in insects. JH and JHA will control the insect problem by developmental disturbances like female sterility, oviduct effects, adult emergence failures, defects in structure and function of some organs to final inability of mating and insemination. The JH causes developmental

disturbances in insects after their contact with the treated plants<sup>31</sup>. Also JH will control the insect problem by physiological action rather than lethal action and their degradation products are not harmful to warm blooded animals, the environmental pollution will be negligible in their use. The study of insect hormones has assumed a great importance because of the possibility of their use as pesticides and insecticides. Insect Juvenile Hormones are a class of organic compounds which control the post-embryonic development of insects from egg to their adult stage. They are secreted by endocrine glands, the Corpora allata. These JH have been characterized by certain size and shape of the molecule, presence of certain specific functional groups and substituents. All compounds whether naturally occurring or synthetic, which can affect or control the growth and developmental processes in insects or which may be able to exhibit the physiological characteristics of Juvenile Hormones (JH), may be termed as Juvenile Hormone Analogue (JHA) or JH Mimics or broadly Juvenoids.

The existence of JH was first reported<sup>32</sup> by Sir Vincent Wigglesworth in 1934. However, it was as late as 1956 that William<sup>29</sup> prepared lipid extract from the abdomen of the adult male *Cecropia* moth which showed a high JH activity. Broadly the juvenoids may be classified into two categories:

1. Acyclic
2. Cyclic

The most important acyclic JH isolated from natural sources<sup>33</sup> are JH-I (*Cecropia* C<sub>18</sub>-JH); (1.1), JH-II (*Cecropia* C<sub>17</sub>-JH); (1.2); and JH-III (*Manduca* C<sub>16</sub>-JH); (1.3).

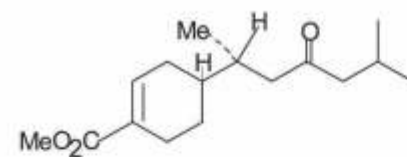


JH-I  
(1.1)

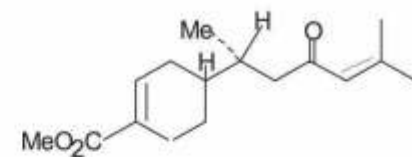
JH-II  
(1.2)

JH-III  
(1.3)

The large number of synthetic acyclic juvenoids have been reported in the literature in recent past which have shown significant JH activity<sup>34</sup>. The cyclic juvenoids are those in which acyclic or aromatic ring is linked with side chain. Juvabione (1.4) and dehydrojuvabione (1.5) were perhaps the first cyclic juvenoids isolated from *Balsamea* fir, *Abies balsam*<sup>35</sup> and from Slovak fir<sup>36</sup>. Both these exhibited a high specific JH activity against hemipterans of the family Pyrrhocoridae.

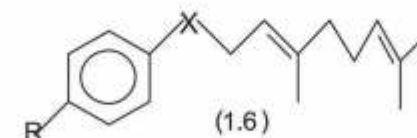


(1.4)



(1.5)

A lot of work has also been reported in compounds of the type (1.6) in which terpenic moiety is linked to aromatic ring through hetero atoms like O, N and/or S<sup>37-38</sup>.

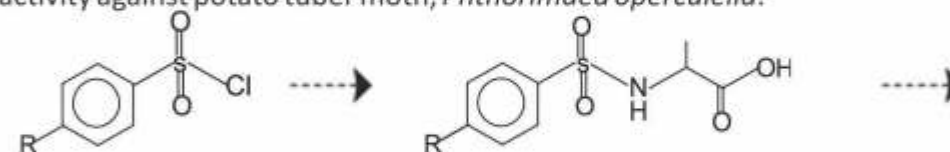


(1.6)

X = O, N, S

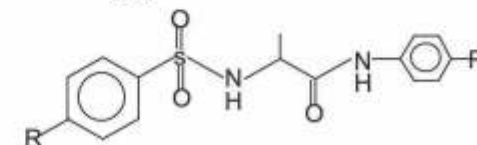
Chemosterilization of insects seems to be one of the promising methods of insect control. Sulphonamide feature has been reported to be responsible for chemosterilizing activity of some compounds<sup>39-40</sup>. Some of phosphorus amides have also been reported to exhibit insect chemosterilant activity<sup>41</sup>. Large number of modified JHA synthesized in our laboratory in which hetero atoms were incorporated in the form of ether, amide, hydroxamate, carbamate and peptidic feature exhibited promising JH/chemosterilizing activity<sup>42-43</sup>. Some of JHA synthesized in our laboratory containing sulphonamide feature have shown promising JH/chemosterilizing activity against potato tuber moth<sup>44-47</sup> and they have not shown any measurable environmental pollution.

Hereunder, we report the synthesis of some JH like substances containing sulphonamide feature and aromatic rings in addition to hetero atoms like O and N. The compound N-(2-p-Chloroanilino-1-methyl-2-oxo-ethyl) toluene-p-sulphonamide (1.9b) showed high JH/chemosterilizing activity against potato tuber moth, *Phthorimaea operculella*.



1.7

1.8



1.9

### Series

'a' R = H, R' = Cl.

'b' R = CH<sub>3</sub>, R' = CH<sub>3</sub>.

Compound (1.9b): R = CH<sub>3</sub>, R' = Cl

**Experimental section:** All melting points are uncorrected. The IR spectra were recorded in nujol mull or KBr pellets on Hitachi 270/50 Spectrophotometer ( $\nu_{\max}$  in cm<sup>-1</sup>), <sup>1</sup>H NMR spectra in CDCl<sub>3</sub>/CCl<sub>4</sub> or CF<sub>3</sub>COOH diluted with CCl<sub>4</sub> on Bruker AC 300 F NMR at 300 MHz (chemical shifts in  $\delta$ , ppm) using TMS as internal standard and Mass spectra on Varian Mat CH-7 Mass Spectrophotometer (values in m/z).

Potato tuber moths (both sexes) were maintained on fresh potato leaves in petri dishes with covers and bottles with muslin covers in laboratory under normal environmental conditions (ambient temperature 16-20°). These were kept under constant watch for the egg laying.

The eggs were collected and four sets (A, B, C & D) containing 60 control and treated eggs were prepared. Similarly, larvae and pupae were obtained and maintained for treatment. The compound was dissolved in 50% acetone to obtain solutions with concentrations of 10, 25 and 50  $\mu$ g/mL respectively. Thus in each case the sets were managed as given below:

Stage	Normal controls untreated	10 $\mu$ g/mL	25 $\mu$ g/mL	50 $\mu$ g/mL
	A	B	C	D
Eggs	60	60	60	60
Larvae	30	30	30	30
Pupa male	30	30	30	30
Pupa female	30	30	30	30

Acetone solution (1mL) containing the compound was poured on the filter paper in each petri dish and allowed to evaporate. Later, the counted number of eggs/larvae/pupae to be treated was transferred to the petri dishes.

**Benzenesulphonyl alanine 1.8a:** A mixture of alanine (8.9g, 0.1mol), benzenesulphonyl chloride (17.6 g, 0.1mol) and NaOH solution (1N, 200 mL) was stirred at 65-70° for 2 hours. A clear solution was obtained. The reaction mixture was cooled to 5-10° and treated with conc. HCl to make it slightly acidic (pH 6.5) whereby benzenesulphonyl alanine 1.8 separated out as white crystals. It was recrystallized from hot water to give pure benzenesulphonyl alanine (12.01 g, 68%), m.p. 163-164°. Anal. found: C, 47.12; H, 4.06; N, 6.19; C<sub>9</sub>H<sub>11</sub>N<sub>4</sub>S requires: C, 47.16; H, 4.80; N, 6.11%.

**Toluene-p-sulphonyl alanine 1.8b:** The reaction of alanine (8.9 g, 0.1 mol) with toluene -p-sulphonyl chloride (19.09 g, 0.1 mol) as above furnished toluene-p-sulphonyl alanine 1.8b (13.74 g, 72 %), m.p. 145-147°. Anal. found: C, 49.40; H, 5.30; N, 5.70; C<sub>10</sub>H<sub>13</sub>NO<sub>2</sub>S requires: C, 49.38; H, 5.34; N, 5.76%.

### N-(2-p-Chloroanilino-1-methyl-2-oxo-ethyl) benzenesulphonamide 1.9a:

Acid chloride of benzenesulphonyl alanine freshly prepared from benzenesulphonyl alanine (2.33 g, 0.01mmol) was taken in dry benzene (10mL). It was constantly stirred while aniline (1.28g, 0.01 mmol) in 5 mL of dry benzene was added drop wise to it. The reaction mixture was further stirred at room temperature for three hours. It was then poured over crushed and extracted with chloroform. The solvent was removed under reduced pressure leaving behind a solid residue which was recrystallized from chloroform to give N-(2-p-Chloroanilino-1-methyl-2-oxo-ethyl) benzenesulphonamide 1.9a, 2.08g, 72%, m.p. 128-29°, Rf 0.57 (system 'a'), <sup>1</sup>H NMR :  $\delta$  8.41(s, 1H, -CO-NH-Ar); 7.90 (2H, Ar-H, *ortho* to -SO<sub>2</sub>NH- group); 7.55 (3H, Ar-H, *meta* and *para* to -SO<sub>2</sub>NH- group); 7.44(2H, Ar-H, *ortho* to -NH-CO- group); 7.26 (2H, *meta* to -NH-CO- group); 5.87 (broad, 1H, Ar-SO<sub>2</sub>-NH-); 1.94 (quartet, 1H, -CH-(CH<sub>3</sub>)-CO-); 1.20 (d, 3H, -CH(CH<sub>3</sub>)-CO-).

IR:  $\nu_{\max}$  cm<sup>-1</sup> 3280 (broad due to >N-H); 1670 due to  $\text{C}=\text{O}$  group); 1370 and 1165 due to  $\text{Ar}-\text{SO}_2$  group).





Mass: m/z [M]<sup>+</sup> 338, 184, 154, 153, 141, 127, 126, 11, 77 (base peak).

Anal. found: C, 53.20; H, 4.39; N, 8.20%, C<sub>15</sub>H<sub>15</sub>N<sub>2</sub>O<sub>3</sub>Cl requires: C, 53.25; H, 4.43; N, 8.28%.

### N-(2-p-Chloroanilino-1-methyl-2-oxo-ethyl) toluene-p-sulphonamide 1.9b:

The reaction of acid chloride of toluene-p-sulphonyl alanine freshly prepared from toluene-p-sulphonyl alanine (2.67g, 0.01mol) with p-chloroaniline (1.28g; 0.01mol) in dry benzene as above furnished N-(2-p-Chloroanilino-1-methyl-2-oxo-ethyl) toluene-p-sulphonamide 1.9b, (1.89g; 71%), m.p. 145-146°, Rf 0.52 (system 'a'). Anal. found: C, 54.50; H, 4.85; N, 7.99, C<sub>16</sub>H<sub>17</sub>N<sub>2</sub>SO<sub>3</sub>Cl requires: C, 54.46; H, 4.82; N, 7.94%.

The characterization data of the compounds 1.9a & 1.9b synthesized above is given in Table 1.

Compound No.	M.p. °C	Rf <sup>a'</sup>	<sup>1</sup> H NMR (δ values)	IR (ν <sub>max</sub> cm <sup>-1</sup> )	Mass (m/z)
1.9a	145-146	0.57	8.41(s, 1H, -CO-NH-Ar); 7.90 (2H, Ar -H, ortho to -SO <sub>2</sub> NH- group); 7.55 (3H, Ar -H, meta and para to -SO <sub>2</sub> NH- group); 7.44(2H, Ar -H, ortho to -NH-CO- group); 7.26 (2H, meta to -NH-CO- group); 5.87 (broad, 1H, Ar -SO <sub>2</sub> -NH-); 1.94 (quartet, 1H, -CH-(CH <sub>3</sub> )-CO-); 1.20 (d, 3H, -CH(C H <sub>3</sub> )-CO-).	3280 (broad due to >N-H); 1670 due to  ; 1370 and 1165 due to  group).	<sup>4</sup> [M] <sup>+</sup> 338, 184, 154, 153, 141, 127, 126, 111, 77 (base peak).
1.9b	132-133	0.51	8.41(s, 1H, -CO-NH-Ar); 7.75 (2H, Ar -H, ortho to -SO <sub>2</sub> NH- group); 7.42 (2H, Ar -H, ortho to -NH-CO- group); 7.31(2H, Ar-H, meta to -SO <sub>2</sub> NH- group); 7.26 (2H, Ar -H, meta to -NH-CO- group); 5.87(broad, 1H, Ar-SO <sub>2</sub> -NH-); 2.42(s, 3H, Ar-CH <sub>3</sub> ); 1.94 (quartet, 1H, -CH-(CH <sub>3</sub> )-CO-); 1.21 (d, 3H, -CH(C H <sub>3</sub> )-CO-).	3280 (broad due to >N-H); 1670 due to  ; 1370 and 1165 due to  group).	<sup>4</sup> [M] <sup>+</sup> 352, 198, 155, 154, 153, 127, 126, 111, 91 (base peak).

<sup>a'</sup> Solvent system for TLC: 'a' Benzene: Ethyl acetate 9:1; 'b' Ether: Pet ether: Ethyl acetate 5:5:2

# In the mass spectrum of the compounds 1.9a & 1.9b containing chlorine atom, additional [M<sup>+</sup>+2] peaks at m/z 340, 184, 156, 155, 141, 129, 128, 113 for 1.9a and at 354, 198, 156, 155, 129, 128, 113 for 1.9b were also observed due to the presence of <sup>37</sup>Cl isotope.

**Biological evaluation:** Preliminary biological testing of compound N-(2-p-Chloroanilino-1-methyl-2-oxo-ethyl) toluene-p-sulphonamide (1.9b) for JH/chemosterilizing activity indicated a positive JH activity. The eggs treated with at adose rate of 25µg/mL and 50µg/mL gave rise to adults with under developed ovarioles which had abnormal wings that were generally short and curled. From the historical studies, it was observed that compound (1.9b) had a distinct chemosterilizing influence on the ovaries of potato tuber moth, *Phthorhmaea operculella* at a dose rate of 25µg/mL and 50µg/mL. The damage to the ovaries was so acute that not a single normal oocyte could be seen in any of the sections. However, at a smaller dose rate of 10µg/mL, the compound was almost inactive. Since, there was no mortality and almost 100% eggs remained viable, the compound does not seem to have any insecticidal action.

**Advantages:** The main advantage of juvenoids over insecticides depends on its very low or practically zero toxicity. JH and their degradation products are not harmful to warmblooded animals; the environmental pollution will be negligible in their use. Moreover, juvenoids act selectively on certain species of insect pests which may enable to apply selective control with

minimum disturbance of natural zoocenoses, including normal development of the pest's natural enemy such as parasites, and predators. Another advantage is the enormously high biological activity of certain juvenoids which make it possible to use considerably smaller amounts of the active compounds and to reduce the chances of environmental pollution.

**Conclusion:** The combination of recent synthetic approaches and biological and physiological studies has resulted in the preparation of insecticides with a better environmental profile with different mechanism of action and with reduced risk to living systems. In this context, compounds such as insect growth regulators or Juvenile hormone analogues show a remarkable activity.

**Acknowledgement Author (VPP) thanks UGC New Delhi for PDF and Research Project.**

#### References:-

1. I. Ishaaya, *Arch Insect Biochem. Physiol.*, 2003, **54**, 144
2. W. B. Wheeler, *J. Agric. Food Chem.*, 2002, **50**, 4151.
3. M. Perugini, M. Cavaliere, A. Giammarino, P. Mazzone, V. Olivieri and M. Amorena, *Chemosphere*, 2004, **57**, 391.
4. L. Lopez-Carrilio, L. Torres-Arreola, L. Torres-Sanchez, *Environ. Health Perspect.* 1996, **104**, 584.
5. B. van Wendel de Joode, C. Wesseling, H. Kromhout, P. Mong, *Lancet*, 2001, **357**, 1014.
6. B. Weiss, *Neurotoxicology*, 2000, **21**, 67.
7. M. Zumbado, m. Goethals, E. E. Alvarez-Leon, O. P. Luzardo, *Sci. Total Environ.* 2005, **339**, 49.
8. B. Walker, Jr. and J. Nidiry, *Inhalation Toxicol.* 2002, **14**, 975.
9. M. A. Sogorb and E. Vilanova, *Toxicol. Lett.* 2002, **128**, 215.
10. J. Hemingway and H. Ranson, *Annu. Rev. Entomol.*, 2000, **45**, 371.
11. A. W. A. Brown and R. Pal, *Insecticidal Resistance in Arthropods*, World Health Organization, Geneva, Switzerland, 1971.
12. A. W. A. Brown, "Pesticides in the Environment", White Stevens, R. Ed., Vol. I, Pt. II, Marcel Decker, New York, **457**, 1971.
13. *Chemistry, Agriculture and Environment*, ed. M. L. Richardson, The Royal Society of Chemistry, Cambridge, 1991.
14. M. Elliot, in *Pyrethrum Flowers: Production, Chemistry Toxicology, and Uses*, ed. J. E. Casida and G. B. Quistad, Oxford University Press, New York, 1995, p. 3.
15. D. M. Soderlund, J. M. Clark, L. P. Sheets, *Toxicology*, 2002, **171**, 3.
16. Y. Katsuda, *Pestic. Sci.*, 1999, **55**, 775.
17. M. Tomizawa and J. E. Casida, *Annu. Rev. Entomol.* 2003, **48**, 339.
18. G. D. Crouse and T. C. Sparks, *Rev. Toxicol.*, 1998, **2**, 133.

19. T. C. Sparks, G. D. Thompson, H. A. Kirst, *J. Econ. Entomol.* 1998, **91**, 1277.
20. G. Brahmachari, *ChemBioChem*, 2004, **5**, 408.
21. J. A. Immaraju, *Pestic. Sci.*, 1998, **54**, 285.
22. A. Murai, *J. Toxicol., Toxin Rev.* 2003, **22**, 617.
23. S. J. Boeke, M. G. Boersma, G. M. Alink, *J. Ethnopharmacol.*, 2004, **94**, 25.
24. P. Warrior, *Pest Manag. Sci.*, 2000, **56**, 681.
25. J. Barsoum, R. Brown, M. McKee and F. M. Boyee, *Hum. Gene Ther.*, 1997, **8**, 2011.
26. A. Chattopadhyay, N. B. Bhatnagar and R. Bhatnagar, *Crit Rev. Microbiol.*, 2004, **30**, 33.
27. A. I. Aronson and Y. Shai, *FEMS Microbiol. Lett.* 2001, **195**, 1.
28. J. P. Siegel, *J. Invertebr. Pathol.* 2001, **77**, 31.
29. C. M. Williams, *Nature*, 1956, **178**, 212-13.
30. C. M. Williams, *Scientific American* 1967, **217**, 13-17.
31. T. H. Babu and C. C. Blickenstaff, *Science*, 1972, **175**, 78-79.
32. Q. J. Wigglesworth, *Micro. Sci.*, 1934, **71**, 191.
33. K. H. Dahm, H. Roller and B. M. Trost, *Life Science*, 1968, **7**, 129.
34. K. Slama, M. Romanic and F. Sorm, *"Insect Hormones and Bioanalogues"* Springer-Verlag, New York 1974, 141.
35. W. S. Bowers, H. M. Fales, M. J. Thompson and E. C. Uebel, *Science*, 1966, **154**, 1020.
36. V. Cerny, L. Dolejs, L. Laber, F. Sorm and K. Slama, *Coll. Czech. Chem. Commun.* 1967, **32**, 3986.
37. R. K. Mahajan, Neelam Gupta, Satinder Kumar Uppal and Rakesh Bhardwaj, *Indian J. Exptl. Biol.* 1987, **25**, 86.
38. R. K. Mahajan, Yoiginder Pal and Shalu Anand, *J. Indain Chem.*, 1993, **93**, 9.
39. A. B. Borkovec, *Chem. Proc. Int. Congr. Pestic. Chem.*, 1972, **2<sup>nd</sup>**, 469.
40. R. L. Fye, C. W. Woods, A. B. Borkovec and P. H. Terry, *J. Econ. Entomol.* 1973, **66**, 38.
41. P. H. Terry, A. B. Borkovec and R. L. Fye, *J. Agr Food Chem.* 1974, **22**, 2.
42. R. K. Mahajan and Shalu Anand, *Nat. Acad. Sci. India*, 1997.
43. R. K. Mahajan and G. C. Sharama, *J. Ind. Council Chem.* 1998, **15**, 1&2, 51-54.
44. R. K. Mahajan, Ved Parkash Patial and Pamita Sharma, *Ind. J. Chem.* 2002, **41B**, 2635-2641.
45. R. K. Mahajan and Ved Parkash Patial, *J. Ind. Council Chem.*, 2001, **18**, 4-10.
46. R. K. Mahajan and Ved Parkash Patial, *Nat. Acad. Sci. India*, **72A**, 2002, 287.
47. V.P.Patial and Rajnish Dewan, *Shodh Shree*, 2012, **3**, 49-55.

## Physicochemical Parameters Of Fresh Water Reservoir Of Mataji Ki Nadi, Village Karamawas Patta, District- Pali (Rajasthan)

**Nisha Sharma, R.P. Kanther**

Department of Botany, S. D. Government College, Beawar

Freshwater is the most important natural renewable resource of mankind. It may be regarded as the pillar of our civilization. In India water is going to be the most serious problem in 21<sup>st</sup> century due to population explosion. As every water body exhibits its own peculiarities with regard to its physicochemical parameters. Mataji ki Nadi, Village Karmawas Patta District Pali (Rajasthan). Karmawas Patta is a small Village of Sojat tehsil, Pali district. It is situated eight kilometres far in south direction from Pipliya Kallan on national highway no. 14. Geographically this water reservoir is situated at one kilometre far from population area. It is a perennial pond receiving run off from the catchment during monsoon. The water of the pond is being used for irrigating fields, bathing and drinking purposes by cattle. It is situated in a semi arid region of Pali district of Rajasthan. As consequence the reservoir water is subjected to various biotic, abiotic influences which in turn affects the water quality. The lake water is extensively used by local people for various purposes. The main purpose of lake is irrigation and cattle also consume this water for drinking. The day to day influx of waste and sewage deteriorating water quality and accelerating eutrophication.

### MATERIALS AND METHODS

The physicochemical and biological parameters of a fresh water ecosystem serve as an indicator of water pollution. Surface composite water samples were collected from selected sites of reservoir at monthly intervals between 6.00 am to 11.00 am. Water samples were collected with the help of a plastic bucket and were transferred into a well rinsed polyethylene bottle for analysis. The water temperature was recorded on the spot using centigrade thermometer and its oxygen content was determined at the sampling site while remaining parameters in laboratory following the standard methods, Golterman (1969)<sup>1</sup> & APHA (1989).<sup>2</sup>

### RESULTS AND DISCUSSION

The physicochemical parameters of reservoir water (Table – 1) studied were viz. water temperature, pH, dissolved oxygen, free carbon dioxide, chloride, conductivity, phosphate, ammonical nitrogen, total alkalinity,

organic matter, total dissolved solids and transmission (turbidity). During the course of study the water temperature varied from 21.3°C to 35.3°C, being maximum in summer and minimum in winter. High water temperature during summer increases metabolic activities of the biotic components of reservoir ecosystem, thereby increasing oxygen consumption. During summer clear atmosphere and greater insulation from sun resulted in increased temperature of the lake water as also reported by Parvateesam et al., (1991)<sup>3</sup> and Sharma et al., (2009)<sup>4</sup>. The pH ranged from 6.5 to 7.8, minimum 6.5 being in monsoon, where as the maximum 7.8 during summer. Decreased pH during monsoon was observed possible due to inflow of rain water. The highest value of pH was observed in summer as also reported by Kumar et al. (2006)<sup>5</sup>. Dissolved oxygen - in the present investigation on the reservoir, the dissolved oxygen was in the range of 1.62 to 12.6 mg/l. Maximum O<sub>2</sub> was recorded in Monsoon and minimum in winter. A seasonal increase and decrease in dissolved oxygen value was due to the fact that increase in temperature facilitates the lowering dissolved gases concentration also reported by Welch, (1952)<sup>6</sup>. Free carbon dioxide varied between 0.0 to 1.46 mg/l, being maximum in summer due to increased respiration of living organisms including higher decomposition of organic matter. Very high values of carbon dioxide were found at the sewage site. Similar observations recorded by Sharma et al. (2009)<sup>4</sup>. The chloride concentration ranged from 44.6 to 82.36 mg/l minimum in spring and maximum in monsoon. Higher chloride content was observed at the most polluted site – which receives sewage, as also reported by Parvateesam et al. (1991)<sup>3</sup> and Sharma et al. (2009)<sup>4</sup>. The conductivity values were higher in the monsoon season, suggesting influx of salts with the runoff from catchment area and minimum in spring. It showed positive relationship with dissolved oxygen, pH and total dissolved solids. The phosphate value ranged from 20.0 to 240.0 mg/l was minimum during summer and maximum in monsoon. High value of phosphate contents attributed to the insolubility of phosphate in the runoff rain water from agriculture fields. The ammonical nitrogen fluctuated between nil to 0.16 mg/l, minimum in monsoon and maximum in summer.

**Table – 1**  
**Physicochemical parameters of reservoir water**

S.No.	Parameters	Units	Spring	Summer	Monsoon	Winter
1	Temperature	°C	22.5	35.0	32.0	20.0
2	pH	pH Units	7.0	7.5	6.5	7.5
3	Dissolve Oxygen	mg/lit	11.2	3.7	12.6	1.62
4	Free Carbon Di Oxide	mg/lit	Nil	Nil	1.46	Nil
5	Chloride	mg/lit	44.6	67.8	82.36	50.0
6	Conductivity	mhos	147.18	302.8	127.17	191.95
7	Phosphate	mg/lit	245.0	20.0	240.0	30.0
8	Ammonical nitrogen	mg/lit	Trace	0.16	Trace	Trace
9	Total alkalinity	mg/lit	260.0	50.0	80.0	175.0
10	Organic matter	mg/lit	12.50	62.0	30.8	17.5
11	Total dissolved solids	mg/lit	9800	3000	4800	6000
12	Transmission	Percent%	96.5	90.0	82.0	97.0

Low value of ammonical nitrogen, because in rainy season ammonia is oxidized to nitrate. The total alkalinity values ranged from 50.0 to 500. mg/l, minimum in summer and maximum in monsoon. High total alkalinity is an indicator of polluted water, as also reported by Prasad and Singh (2003)<sup>(7)</sup>. High amount of dissolved organic matter 62.0 mg/l was observed in summer and low 12.50 mg/l in winter. The total dissolved solids were minimum 3000 mg/l in summer and maximum 12200 mg/l in spring. The percentage of transmission ranged from 82.0 to 97.0 minimum being in monsoon and maximum in spring.

In the present study, it was found in general that as temperature increase the other abiotic factors like pH, dissolved oxygen, organic matter, ammonical nitrogen also increased. Where as phosphate, total alkalinity and chloride decreased. As a consequence of decreased in the temperature in of water, there was an increase free carbon dioxide, total dissolved solids and percent transmission. Low transparency but higher values for conductivity phosphate, total alkalinity confirm its eutrophic nature which is a major cause of extinction of the fresh water bodies Arya ( 2012 )<sup>(8)</sup>. There must be alternative waste disposal system away from reservoir and the disposal of solids and liquid waste must be stopped. Proper remedial measures should be taken immediately in order to restore it from further deterioration.

## References:-

1. Golterman, H.L. (1969). *Methods for physical and chemical analysis of fresh water*. I.B.P. hand book no.8, 2<sup>nd</sup> ed., Blackwells, Scientific publications oxford, 1 – 213.
2. A.P.H.A., A.W.W.A. and W.P.C.F. (1989). *Standard methods for the examination of water and waste water*. 17<sup>th</sup> ed. New York.
3. Parvateesam, M., Mathur, M. and Sharma, N. (1991). *Investigation on Physicochemical characteristics of Anasagar lake, Ajmer*. *Indian J.Ecol.* **18**(2), 166 – 170.
4. Sharma, N., Sharma, S and Joram, A. (2009). *Study of water quality parameters in Makrera fresh water lake, near Beawar (Ajmer)*. *National conference on environmental health hazard*, : 60-61.
5. Kumar, R., Manjappa, M. S., Kirand, B.R. and Puttaiah, E.T. (2006). *Phytoplankton periodicity in relation to abiotic factors in Kulahalli Tank near Harapanahalli, Karnataka*. *Nature environment and pollution technology* **5**, 157–161.
6. Welch, P.C. (1952). *Limnology* McGraw Hill, New York, 2<sup>nd</sup> ed., Book pp 536.
7. Prasad, B.B. and Singh, B. (2003). *Ecological status in relation to primary productivity of Tropical water body of East Champaran, Bihar*. *Nature environment and pollution technology* **2**, 387–390.
8. Arya, M., Mosalpuri, S., Sharma, N., Sharma, N, and Sharma, R. 2012. *Assesment of water quality of ground and surface water resources of Beawar city*. *National conference on chemical sciences in new millennium*.: 34.

## Assesment Of Water Quality Of Ground & Surface Water Resources Of Beawar

Mridula Arya, Rashmi Sharma

Department of Chemistry, S.D. Govt. College, Beawar

Surface water is essential component of the natural environment & matter of serious concern today. Ponds rivers lakes & estuaries have been exposed to waste waters from industrial, agricultural and domestic sources for decades. The quality of surface water is rapidly deteriorated in many regions, which is grave for public health & ecosystem. This problem assumes added significance, especially in water stressed area such as Rajasthan, where it is vitally important to conserve every drop of water. Hence, the conservation of wetlands deserves the utmost attention. The literature of ground water pollution due to textile industries and domestic wastes, is however scarce and limited.

Beawar city of Ajmer District in Rajasthan state has many industries, like cement, glass, textile dyeing, ceramics etc. Its water resources are polluted specially by sewage, and industrial waste. Water samples were collected from hand pumps, ponds, river etc. situated near farms, & industries.

Study of physicochemical properties of samples of these water bodies revealed that the water quality is not fit for drinking. Immense work has been done on water pollution, but it needs continuous monitoring, as their quality changes rapidly & wells, ponds are used for domestic purposes as well as for agriculture.

### MATERIALS AND METHODS

- Water samples are collected from Makrera, Bichadali ponds, Media stream, Chawani river & a hand pump. Many agricultural farms are located near these water bodies, and hand pump is used for drinking water, hence these water resources are selected for studies.
- **Collection and storage of water samples**  
The water samples were collected from a depth of 30 cm during morning hours between 8.00- 10.00 AM. For dissolved oxygen measurement, a 300 ml capacity BOD bottle was used for collection of water samples and the oxygen was fixed at the sampling site before being carried to the laboratory. The analysis of the collected water samples was done as per the standard methods (1,2).

### Calculation of sub index of quality rating (Q<sub>n</sub>)

$$Q_n = 100[(V_n - V_0) / (S_n - V_0)] \quad (1) \text{ where}$$

Q<sub>n</sub> = Quality rating for the n<sup>th</sup> water quality parameter

V<sub>n</sub> = Estimated value of n<sup>th</sup> parameter at a given sampling station.

S<sub>n</sub> = Standard permissible value of n<sup>th</sup> parameter

V<sub>0</sub> = Ideal value of n<sup>th</sup> parameter in pure water

All the ideal values of V<sub>0</sub> are taken as zero for drinking water except for pH = 7 & dissolved oxygen = 14.6 mg/L.

### Calculation of quality rating for pH

Ideal pH value for natural water is 7, permissible value for polluted water is 8.5 Therefore quality rating for pH is calculated from the following relation-  
 $Q_{pH} = 100 [(V_{pH} - 7.0) / (8.5 - 7.0)]$  (2) where  
 $Q_{pH}$  = Observed value of pH

### Calculation of quality rating for dissolved oxygen

Ideal value of VDO is 14.6 mg/L & standard permitted value for drinking water is 5 mg/L. Therefore quality rating is calculated from the following relation-  
 $Q_{DO} = 100 [(V_{DO} - 14.6) / (5 - 14.6)]$  (3)  
 $V_{DO}$  = Measured value for dissolved oxygen

### Calculation of unit weight ( $W_n$ )

$W_n = K / S_n$  (4) where

$W_n$  = Unit weight for  $n^{\text{th}}$  parameter :  $K$  = Constant /:  $S_n$  = Standard value for  $n^{\text{th}}$  parameter

### Calculation of WQI

$$WQI = \frac{\sum_{n=1}^n Q_n W_n}{\sum_{n=1}^n W_n} \quad (5)$$

### RESULTS AND DISCUSSION

- For computing WQI three steps are followed. In the first step, each of the parameters has been assigned a weight ( $w_i$ ) according to its relative importance in overall quality of water for drinking purposes (3).
- The value of the physico-chemical parameters were compared with desirable/permissible limit of IS: 10500 drinking water specification [4].
- WQI value of Chawani river water is 66.54 and of Media stream water is 55.15 which indicate they are harmful for agriculture, live stock as well as for human beings. The hand pump is situated near Chawani river, it's WQI value is 48.17, that is it's ground water is also polluted by Chawani river that it can not be used for drinking. If with the same speed, industrial waste discharges into water bodies it is no doubt, ground water quality will deteriorated rapidly.
- Bichadaly Pond's water WQI value is 39.00. As sewage of city discharge into it, it can be used for agriculture only.

**TABLE -1**  
 PHYSICO- CHEMICAL PROPERTIES OF  
 WATER SAMPLES OF SELECTED WATER RESOURCES (BEAWAR CITY)

S.N	PARAMETER	CHAWANI RIVER	MEDIA STREAM	BICHADALI POND	MAKERARA POND	GROUND WATER
1	TEMPERATURE	27.00	24.67	26.67	24.33	18.00
2	pH	7.67	7.73	8.90	7.20	8.5
3	TDS(mg/l)	2420.33	1978.33	641.00	672.00	859.33
4	CHLORIDE	351.00	255.00	148.00	140.00	178.00
5	NITRATE	1.45	1.41	1.13	1.20	1.05
6	ALKALINITY	471.00	478.00	259.00	228.00	219.00
7	CALCIUM HARDNESS	254.00	162.00	72.00	124.00	138.00
8	MAGNESIUM H ARDNESS	53.00	27.00	17.00	28.00	25.00
9	TOTAL HARDNESS	307.00	189.00	89.00	152.00	163.00
10	FLUORIDE	0.80	0.66	0.84	0.81	0.97
11	SULPHATE	94.00	59.00	142.00	107.00	87.00
12	IRON	0.0037	.0037	0.0013	0.003	0.0017
13	TURBIDITY	6.33	6.33	2.66	3.00	4.67
14	DO	6.10	6.07	6.90	9.50	6.65
15	BOD	32.21	22.50	7.37	8.4	10.50
16	COD	63.35	55.38	13.08	15.16	33.21
17	WQI	66.54	55.51	39.03	37.05	48.17

- Mekrera pond water's WQI value is 37.1. This pond used for fisheries, but all the water resources i.e. stream river etc. of city link directly or indirectly to this pond which pollute water its water continuously. At present Beawar city is facing big problem of drinking water. Our results may provide helpful information for authorities to effectively manage these problems.

**TABLE 2. RATING SCALE FOR WATER QUALITY PARAMETERS**

DEGREE OF POLLUTION RATING (QI)	PERMISSIBLE	SLIGHT	MODERATE	SEVERE
	100	80	50	0
Dissolved Oxygen (mg/l)	6	4.4-4.9	3-4.5	<3
Total Solids (mg/l)	500	500-1000	1000-1500	>1500
Total Suspended Solids (mg/l)	<30	30-65	65-100	>100

- Most significant parameters chosen as by DELPHI conducted by Brown (1970) for the NSF WQI on priority basis were Dissolved oxygen ,Biochemical oxygen demand ,Turbidity ,Total solids respectively.
- The addition of a variety of biodegradable pollutants from domestic and industrial sources stimulates the growth of microorganisms, which consume the DO of water. The values further deplete at high temperature, the oxygen holding capacity of water decreases. by algal blooms, which may also be responsible for depletion of DO. As DO of all the water samples are more than 6, according to table 3, these are in permissible range, i.e. fit for aquatic life.
- High content of BOD cause oxygen depletion which leads to suffocation of aquatic life, ( 5) level of BOD ranged from 8.4 to 32 mg /L which indicate Media stream and Chavani rivers are highly Polluted and harmful for aquatic flora and fauna
- Higher the turbidity of water less the ability of it to support plants and other aquatic organism. Thubidity of all the water samples lie in permissible range. All collected water samples of different water resources TDS ranges between 641 to 2420 mg/Ltr. The concentration is high during mansoon period, which may be due to addition of solids from run of water, sewage & industrial effluents to the river and the pond. High concentration of TDS in Damodar river is due to mixing of sewage and industrial waste was also reported by (6). Similar observation was made by (7), very high value of TDS were recorded for all the water samples, so, these are not fit for drinking, as they are beyond permissible limit of WHO which is < 500mg/Ltr.
- Nitrates concentrations of these water samples fall within excellent range.
- The high pH recorded can be attributed to higher productivity of water as evidenced by high growth rate of algal.
- The average chloride values are high which is an indicator of higher pollution due to higher organic waste of animal origin & domestic sewage.

#### Conclusion & Recommendation:

- So It is concluded that the pond waters, though used for drinking, were actually not potable and needed proper treatment.
- WQI can immensely help the public in getting an idea of how safe the water they drink is. Therefore, it may be worthwhile if Bureau of Indian Standards, Ministry of Environment & or by adopting the index common to the most number of states. Such a national WQI, on the lines of the national consumer price index, or national stock-market index, would be very useful in the public comprehension and broad assessment of water quality everywhere in India.
- A government commitment is needed along with cohesive academic research centered on wetlands as a problem and a vital biome, so that its importance may be understood, and so that conservation as a principle may be accepted by administrators.
- Careful management of natural resources should be a result – not destruction of habitat and erosion of resources. The Water Quality Indices are among the most effective ways to communicate the information on water quality trends to the general public or to the policy makers and water quality management.

#### Reference :-

1. APHA. 1989. American Public Health association :Standard methods for examination of water & wastewater in 17<sup>th</sup> Ed. APHA, Washington USA
2. Trivedym R.K., and P.K. Goel. 1986. Chemical and biological methods for water pollution studies, Environmental Publications Karad

Ramesh S., Sikuraman N., Murugesan A. G., Rajan M.P., Ecological Indicators, July 2010, 10,(4), 857-868.

3. Indian standard drinking water, specification (First Recision) IS- 10500 : 1991. BIS, New Delhi, India.
  4. Verema S. R,P.,Sharma,A.Tayagi,S.S.Rani,A.K.Gupta and R.C. Dalela. 1984. Pollution & saprobic status Eastern Kalinandi Limnology, 15:1, 69-133.
  5. Verma, S. R, Sharma, P. etal. 1984. Pollution & Saprobic status of Eastern Kalindi. Limnology, 15:1 69-133.
  6. Gupta, B.K., and G. Singh. 2000. Damodar river water quality status along dugda-Sindri industrial belt of Jharia coalfieldm In : Pollution and Biomonitoring of Indian Rivers, ABD Publlication, Jaipur, 58-69.
- Marker, A.F. 1977. The benthic algae of some stream in southern England, Journal of Ecology 65:223-225.

# Rock Art Of India: A General Study

Dr. Vineet Godhal

Asst.Prof., Acharya Kalu Kanya Mahavidyalaya, Jain Vishva Bharati Institute,  
Ladnun (Nagaur)

The rock art of India observed into two forms named pictograph and petroglyph. Pictograph refers to painted figures and petroglyphs to abraded drawings. Pictographs are found on the walls and ceilings of the naturally formed caves and rock shelters while petroglyphs are confined to open boulders, vertical rocks and on surface of stone slabs. Among petroglyphs, engraving occur in the form of line drawings, incised on rocks, carvings are carved out forms and bruising are produced by rubbing the upper surface of a coarse grained rock.

In last few years, Cupules are discussed as the most controversial issue in rock art in India. Cupules or cup-marks are probably the most common form of petroglyph in the world. Scholars believe that it is a form of rock art (Bednarik 2000-01). It is assumed by the scholars that these cupules were made for the similar purposes and may be possible that some of those found on horizontal surfaces were used for other purpose. The dots, shallow impressions, cup marks found in Indian rock art were probably a part of the specimen of utilitarian art. Cup mark is a depression executed on the natural rock surfaces. The shape of the cupules may be circular or so elliptical which varies in depth and diameter, are found in simple rows, U-shaped and in linear pattern and also without any definite arrangement. Mostly cupules or cup-marks occur in groups, often numbering in their hundred or single pattern. They occurs in all continents except Antarctica and it seems that they have been made in most periods of history, beginning with the lower palaeolithic and ending in the middle ages in Europe and in even more recent times in such regions as Australia where their manufacture only ceased in 20<sup>th</sup> century. Mountford (1976:213) who saw the making of cupules in Central Australia during 1940, reports that these depressions were made as increased ritual for the pink cockatoo. The cupules were hammered into was thought to contain the life essence of these birds, so the mineral dust rising from the activity was believed to fertilize the female cockatoos and thus increase their production of eggs, which the Australian used as food. Odak (1988) has described geometric assemblages of cupules from Southern Kenya. He reported an ethnographic example of non-ceremonial cupules. They are claimed to have been used in board games such as the *boa* game, but in that area, cupules were used also for another purposes (in ore processing).

On the basis of depiction of rock paintings in India region it can therefore assumed that cattle pastoralism was one of the main occupations of the inhabitants. The food economy included aquatic and avian fauna. Hunting and snaring of the birds was probably one of the major subsistence activities in this region. A variety of birds like fowl, goose, vulture, and crane were killed for the food. Probably the early settlers of the rock shelters had a pragmatic outlook and vision behind such meaningful and beautiful paintings. The painted figures might be the beginnings of are cord keeping system by the early settlers to as on the information from generation to generation and appears to be a beginning of information technology. From these figures or icons the children and younger generation might have given information about herbivores and carnivores dwelling around, further the animal figures might have been used to team not only about their shape habitat and their behaviour but also about the danger perspectives. Rock art is the evidence of earlier art activity in India since prehistoric period. Rock art provides an insignificant into the world view of hunting gathering population. It tells us about the hunting gathering techniques and weapons and also about their material culture, dress, ornaments and social and cultural life of ancient communities.

The artistic presentation of rock art does not corroborate in their antiquity but also they expose their cultural heritage of bygone days. The rock art presents regional influence in their life style with all around environment responsible for their human activities. Saraswati (1995) writes "Rock art, in one sense is an orphan. Those who produced it are no longer alive to defend their works or world view". Burkitt (1992) writes "it is the only man's handiwork that has survived from prehistoric times which can be accurately studied; many sides of human experience must remain matters of speculation". Paintings provide a visual expression of the artistic impulses of the primitive folks, and illustrate different aspects of their way of life. Some of the scholars opinion is that rock art is mostly conditioned by human response to a changing environment and is a reflection of the combined effects of locality and cultural contexts. Further he says that the signs and symbols depicted in rock art and certainly had a meaning for their authors. After examining the rock paintings of Badami, Bhimbetka, Mandasaur, Hazaribag and other sites, it is opined that the 'antique art' originated as applied method of silent communication. Malik (1995) explains that rock art has a grammar of paintings, which may be deciphered in terms of movements from various points of view like musical, pictorial, physical, spiritual etc. In a way it communicates, reviving of traditional values and their relations with environment, a basic transformation of value system with interactions

between man and his environment.

What was the motivation behind the creation of rock art in Indian context is still an enigma. This is the most disputed subject in the field of study of rock art. It is clear that these painters spent much time in the pursuit of rock art. They were talented and their work had practical value for their community, which supported and encouraged them. Wakankar and Brooks (1976) also stated that no single explanation can be given for the motivation of this multifarious form of rock art. There may be different reasons in different context of this art. The large sized animal's drawings were painted for worship after or before killing the actual animal. Probably the hunting scenes were inspired by hunting magic. Scenes of day to day activities and some of the paintings might have been drawn simply for purposes of decoration. Rock art sites are the cultural centers not only of prehistoric age but also of proto-historic and historic period also.

It appears that the availability of natural light was an important factor for execution of paintings in the rock shelters. Hence, rock shelters opening towards east and west are used mostly for execution of paintings. We also find figures which are depicted by stroking (pecking) the surface and wall of the rock shelter with hard and sharp tools, and also figures are drawn by engraving the surface of the shelter. Artistic figurines are drawn on surface, wall and roof of the rock shelters using various colours and apparatuses.

Rock art provides an insight into the world view of hunting gathering population. It tells us about the hunting gathering techniques and weapons and also about their material culture, dress, ornaments and social and cultural life of ancient communities.

The study of rock art tell us not only about the antiquity and development of art in India but can also enrich our knowledge about the way of life of Stone Age people and their societies. We can also learn about contemporary fauna, methods of hunting gathering, vegetable foods, hafting of stone implements, and craft like basketry, rope making, taping, etc. We can also get an insight into the social, religious and ritual aspects of ancient man's life.

**Painting material :** The colours use by rock art painters were mainly derived from minerals. Hematite red was the most common colour of prehistoric cultures. The use of hematite was known as early as the acheulian period in Africa (Leaky 1958) Europe and India. This colour was used by Mousterian man in Europe. In the context of our country, hematite red is collected from the floor of painted rock shelters in the Mirzapur region in 1860s by A.

Carlleyle. From the same region, G.R. Sharma (Sharma 1964) has reported the use of hematite in Mesolithic burial sites. H.D. Sankalia (Sankalia 1974) has reported soft hematite with smooth rubbed surface from the Mesolithic site of Langhnaj in Gujarat. V. N. Misra (Misra 1973) has also been mentioned about *geru* (hematite colour) from phase I of the Mesolithic site of Bagor in Rajasthan.

More than 10 colours have so far been counted in the rock paintings of Indian region. These are white, creamy white, yellow ochre, raw sienna, orange, dark orange, light red, dark red, burnt sienna, burnt umber etc. The main colour is used for paintings is red and white. Nearly  $\frac{3}{4}$  figures are depicted in dark red colour. The next commonest colour is light red (pure hematite red) and white.

**Painting techniques:** Mainly four techniques have been used for the creation of rock paintings in India. These are termed as wet transparent colour (water colour painting), wet opaque colour (oil or tempera), crayon (dry colour painting), and stencil (spray colour). Drawing includes engravings, carvings, brushings etc.

The transparent and opaque colour techniques are more common in rock paintings of India. Engraving and transparent techniques are used frequently for the paintings and drawings. No chiselled drawing has been found at this site. Petroglyphs are pecked by sharp pointed stones. No chisel was necessary to obtain thin battered points. The south Indian petroglyphs are also the result of pecking by harder stones.

**Painting process:** Rock paintings are depicted on the surface of the shelter without any preparation of the ground by plastering, grinding or smoothing, although there was a preference was given to smooth and plain ground for the rock art. The nature of the surface was an important and solo factor in choosing a site for paintings. Sometimes colour is applied in background before paintings. In Sohanpura, some human and animal figures are painted on red background.

Figures at considerable height were probably painted by artists standing on scaffolds or branches of trees. Painted surfaces were used several times by artists of different periods without obliterating the older figures. Thus superimpositions or overlapping of figures of different styles may be observed in the painted rock shelters of this area.

## References:-

1. Bedbarik, R.G. (2000-01) *Early Indian Petroglyph and Their Global Context*. Purakala 11-12. Page 37-47.
2. Burkitt, M.C. (1992) *The Old Stone Age*. Delhi: Rupa & Co.
3. Leaky, L.S.B. (1958) *Recent discoveries at Olduvai Gorge, Tanganyika*. Nature 5, 181, No. 4616. Page 1099-1103.
4. Malik, S.C. (1995) *Rock Art: A universal Creative Art*. Vihangama. April-June Vol. 3 (1). Page 4-12. Delhi: The IGNCA Newsletter.
5. Misra, V.N. (1973) *New Light on the Mesolithic Period in India from Excavation at Bagor in Rajasthan*. The Researcher 12-13. Page 1-14.
6. Mountford, C.P. 1976. *Nomads of the Australian desert*. Rigby, Adelaide.
7. Odak, O. (1988) *Cup-marks patterns as an interpretation strategy in some southern Kenyan petroglyphs*. In *Rock art in the Old World*, ed. M. Lorblanchet, Page 49-60. New Delhi: Indira Gandhi National Centre for the Arts.
8. Sankalia, H.D. (1974) *The Prehistory and Protohistory of India and Pakistan*. Poona : Deccan College.
9. Saraswati, B. (1995) *Outreach, Wihangama*. April-June, Vol. 3 (1). Page 2-3. Delhi: The IGNCA Newsletter.
10. Sharma, G.R. (1964) *Painting Materials from the burials*. In *Indian Prehistory* (Eds. V.N. Misra and M.S. Mate). Page 78. Poona: Deccan College.
11. Wakankar, V.S. and R.R.R. Brooks. (1976) *Stone age Paintings in India*. Bombay: D.P. Taraporewala Sons and Co.

## Impact Assessment of Corruption – A Study of the Types, Causes and Impact on Various Sectors

**Dr. Alka Bhatia**

Lecturer, Govt. Law College, Sikar

Corruption is a major threat for good governance, development, protection of the rights of poor and is catalyst for violation of human right. A state which is riddled with corruption has less regard for any form of democratic norms.<sup>1</sup> In the recent years, the subject of corruption has received considerable attention. Corruption is being addressed by financial institutions, government agencies international organization, non-governmental organizations academicians, In spite of countless policy diagnosis, public campaigns to raise awareness, legal measures to curb corruption, the fact remains that it continues to flourish. Everyday the Country is watching a new scam – 2G spectrum, Commonwealth games, Adarash Society, Tetra Truck, Rural Health Mission, to name a few. Combating Corruption needs a serious rethinking, but before analyzing the various aspects of corruption it will be appropriate to the start with the meaning, types and how the corruption affects the various sections, to trace the link between human rights, corruption, and how the justice administration system can be helpful in combating this menace.

The term "Corruption" comes from the Latin word 'corruptio' which means "moral decay, wicked behavior, putridity or rottenness"<sup>2</sup> The concept may have a physical reference, as in the destruction or spoiling of anything, especially by disintegration or by decomposition with its attendant unwholesomeness and loath some ness ; putrefaction" ; or moral significance, as in "moral deterioration or decay.....; the perversion or destruction of integrity in the discharge of public duties by bribery or favour..."<sup>3</sup> These definitions define corruption in terms of bribery, or in terms that are very general. In the present context the term corruption demands an interdisciplinary approach.

Each has a different perception of the problem and different classification of the term corruption. A well known classification distinguishes grand from petty corruption. Grand corruption refers to the corruption of heads of states, ministers, and top officials and usually involves large amounts of assets<sup>4</sup> petty corruption indicates the kinds of corruption that people experience in their encounters with public officials and when they use public services. It generally involves modest sums of money others have classified corruption by types viz. political corruption which involves law makers acting in their role as creators

of the rules and standard by which a polity operates, such politicians seek bribe or funds for political parties for their political and personal benefits and provide favour to their supporters at the expense of broader public benefits. Administrative Corruption includes the use of bribery and favoritism to lower taxes, escape regulations and win low-level procurement contracts, out of turn allotments etc. Corporate corruption occurs between private businesses and suppliers or private service providers. It also involves illegal behavior by corporate officials for private monetary gain.<sup>5</sup> Institutionalized corruption names the behavior of those who exploit institutional position to influence institutional processes and actions, such as law enforcement, agencies, and members of judiciary.

Political corruption<sup>6</sup> is the use of power by government officials for illegitimate private gain. Misuse of government power for other purposes, such as repression of political opponents and general brutality, is not considered political corruption. An illegal act by an office holder constitutes political corruption only if the act is directly related to their official duties and is done with colour of law or involves trading in influence. Forms of corruption vary, but include bribery, extortion, cronyism, nepotism, patronage, graft and embezzlement. The activities that constitutes illegal corruption differ from place to place, for instance, some political funding practices that are legal in one place may be illegal in another. In some cases, government officials have broad or ill defined powers, which make it difficult to distinguish between legal and illegal actions.

Another approach to define corruption has been specific to a given field of study. In the economics field, for example, Robert Klitgaard has defined corruption in terms of an equation. Corruption = Monopoly Power + Discretion – Accountability. According to the United States Agency for International Development (USAID) Handbook for Fighting Corruption (1999), corruption can assume various forms: "It encompasses unilateral abuses by government officials such as embezzlement and nepotism, as well as abuses linking public private actors such as bribery, extortion, influence peddling and fraud. Corruption arises in both political and bureaucratic offices and can be petty or grand, organized or disorganized." Development banks and other national and international organizations have also variously defined corruption. Probably the most used definition is the one adopted by Transparency International, "corruption is the abuse of entrusted power for private gain."

In the legal field, the term corruption is usually used to group certain criminal acts which correspond to the general notion of an abuse of

entrusted power. International conventions against corruption reflect this, since they do not define and criminalize corruption but instead enumerate criminal acts the amount to corruption. Even here, they follow different approaches. For example, some conventions use the term "corruption" interchangeably with one of the most common criminal acts that encompass it bribery.<sup>7</sup>

Another group of conventions distinguishes corruption as a term to group criminal acts more explicitly from actual acts that involve corruption. Two such conventions are the Economic Community of West African States (ECOWAS) Protocol on the Fight against Corruption (ECOWAS Protocol against Corruption), and the Inter-American Convention against Corruption (IACAC).<sup>8</sup>

Notwithstanding the different approaches taken by International Convention, it is clear that International laws do not consider corruption to be an individual and identifiable criminal act. When referred to in a legal context, corruption is the generic heading for a cluster of different and specific criminal acts. An appropriate legal definition of corruption would therefore be. "Corruption is the list of acts criminalized by law under the heading 'Corruption'." It is therefore essential to identify the different acts that fall under the general heading of corruption.

If we have a glance over the definitions given by various organizations a conclusion can be drawn is what they generally agree are "corrupt acts." The best such source is the UNCAC<sup>9</sup> because it provides the most recent and comprehensive list of such acts.

MOREOVER, it represents a wide range of views because it is the only anti-corruption treaty open to universal membership, before preceding further it would be appropriate to discuss the core corrupt acts, although, this list is not an exhaustive list, and other acts may be included in future.

Bribery : It may be defined as the promise, offer or gift, to a public official, or the solicitation or acceptance by a public official, directly or indirectly, of an undue advantage, for the official himself or another person or entity, in order that the official act or refrain from acting in the exercise of his official duties. Bribery requires two participants: one to give the bribe, and one to take it. Either may initiate the corrupt offering; the act of offering a bribe is referred to as active bribe and the act of accepting the bribe is known as passive bribe. The culture of corruption extends to every aspect of public life. Bribes may be demanded by an officer to do something for which he has already been paid bribe is also demanded, in order to by pass laws and regulations.

In addition to use bribery for private financial gain, it is also used to intentionally and maliciously causing harm to others. The bribery of foreign public officer and officials of public international organization is called transnational bribery; add the condition that the undue advantage given to the official must be in connection to international business. Bribery is offered not only in public or corporate sectors, but also in private sector or private to private sector. In private sector it means promise, offering or giving of an undue advantage by the person who is in capacity to direct or work for a private sector in order to provide under advantage, in breach of his or her duties, acts or refrain from acting.<sup>10</sup>

**Embezzlement** – It may be defined as the misappropriation or other diversion by a public official, for purposes unrelated to those for which the assets were intended, for his benefit or for the benefit of another person or entity of any property, public or private funds or securities or any other thing of value entrusted to the public official by virtue of his position. The embezzlement of property can also occur in the private sector in the course of economic, financial or commercial activities. Embezzlement is outright theft of entrusted funds. It is political when it involves public money taken by a responsible public official. A common type of embezzlement is that of personal use of entrusted government resources; for official/politician who is in-charge of choosing how to spend some public funds. He can give a contract to a company that is not the best bidder, or allocate more than they deserve. In such case, the company who is benefited by such favour, in exchange of betraying the people the concerned official/politician receives a kickback payment. The kickbacks are not limited to government officials; any situation in which people are entrusted to spend funds that do not belong to them, are susceptible to this kind of corruption.

**Trading Influence** - It is also a form of corruption which may be defined as the promise, offering or giving to a public official or any other person, or the solicitation or acceptance by a public official or any other person, directly or indirectly, of an undue advantage in order that the public official or the person abuse his real or supposed influence with a view to obtain from an administration or public authority an undue advantage for the original instigator of the act or any other person Trading in influence is also commonly divided in parts active and passive. Active form means giving an advantage in exchange for influence and passive form means requesting or accepting an advantage in exchange for influence.<sup>12</sup>

**Unholy alliance** – An unholy alliance is a coalition among seemingly antagonistic groups for adhoc or hidden gain. Like patronage unholy alliances are not necessarily illegal, but unlike patronage, by its deceptive nature and often great financial resources, an unholy alliance can be much more dangerous to the public interest.

**Patronage** – It refers to favoring supporters, for example when a newly elected government changes the top officials in the administration in order to implement their policy in an effective manner. It can be seen as corruption when incompetent persons are given preference over the competent persons, as a reward for supporting the regime.<sup>13</sup>

**Nepotism and Cronyism** – Favoring relatives or personal friends (cronyism) of an official or a politician is also a form of illegitimate private gains. This may be combined with bribery, for example demanding that a business should employ a relative of such official or politician, controlling regulations affecting the business.

**Abuse of functions or position** – This is another form of corruption which means failure to perform, an, in violation of the law, by a public official in the discharge of his or her functions, for the purpose of obtaining an undue advantage for himself/herself or for another person or entity. Illicit enrichment is the most common corrupt practice, which is increase in the assets of a public official that he or she cannot reasonably explain in relation to his or her lawful income.<sup>14</sup>

## II

It is commonly agreed that corruption affects the ability of the state to deliver on social, cultural and economic rights. Particularly, corruption threatens access to services rendered to people, thus violating economical social and cultural rights, such as right to education, adequate shelter, food and health. It also compromises the enjoyment of civil and political rights, encouraging discrimination and gender inequalities, and worsens the situation of vulnerable, disadvantaged and marginalized groups. "Corruption threatens the rule of law, democracy and human rights, undermines good governance, fairness and social justice; distorts competition, hinders economic development, and endangers the stability of democratic institutions and moral foundation of society."<sup>15</sup>

Corruption poses a serious development challenge. In the political realm, it undermines democracy and good governance by flouting or ever subverting formal processes. Corruption in elections and in legislative bodies reduces accountability and distorts representation in policy making; corruption in the judiciary compromises the rule of law, and corruption in public administration results in the inefficient provisions of services. It

violates a basic principle of republicanism regarding the centrality of civic virtue. More generally tolerance.

In the private sector, corruption increases the cost of business through the price of illicit payments themselves, the management of negotiating with officials, and the risk of breached agreements or detection. Although some claim corruption reduces costs by cutting bureaucracy, the availability of bribes can also induce officials to contrive new rules and delay's where corruption inflates the cost of business, it also distorts the playing field, shielding firms with connection from competition and thereby sustaining inefficient firm.<sup>16</sup>

Corruption also generates economic distortions in the public sector by diverting public investment into capital projects where bribe and kickbacks are more plentiful. Officials may increase the technical complexity of public sector projects to conceal or pave the way for such dealings, thus further distorting investments.<sup>17</sup>

Corruption facilitates environmental destruction corrupt countries may formally have legislation to protect the environment; it can not be enforced if officials can easily be bribed. The same applies to social rights, worker protection, unionization prevention, and child labour. Violation of these rights enables corrupt countries to gain illegitimate economic advantage in the international market.

Likewise, humanitarian aid to the poor is also highly vulnerable to corruption like; food aid can be directly and physically diverted from its intended destination, or indirectly through the manipulation of assessments targeting registration and distribution to favour certain groups or individuals. As far as in construction and shelter is concerned, there are numerous opportunities for diversions and profit through substandard workmanship, kickbacks for contracts and favoritism in the provision of valuable shelter material corruption the access to aid to those with connections, to those who pay bribes or are forced to give favour another form of corruption is to manipulate statistics to inflate the number of beneficiaries and siphons of the additional assistance.

Corruption is not specific only to poor or disadvantaged groups, but cases of bribery and other forms of corruption exists in health, education and social institutions etc. In health sector under the table payments made to reputed surgeons by patients attempting to be on the top of the list of forth coming surgeries, bribes are paid by suppliers to the industry in order to sell low quality equipments, components etc. Contributions made by wealthy parents to the "social and cultural fund" of a prestigious university, school or college, in exchange for it to accept their children, bribes paid to obtain

diplomas, financial and other advantages granted to the members/office bearers of union, by the executive board, in exchange for employer-friendly positions and votes, etc. examples are endless. These various manifestations of corruption can ultimately presents a danger for public health; economy, social relationship and institutions.

### III

Another question arises what are the major causes of corruption – The Santhanam Committee constituted by the Central Government of India, has identified certain procedural causes of corruption like red tape and administrative delay, unnecessary regulations, scope of personal discretion, cumbersome procedures, scarcity of goods and services, and lack of transparency. In India there are two dimensions of corruption. One is exploitative corruption where the public servant or the private party entrusted to perform the specific tasks exploits the helpless citizen. The second one is collusive corruption where the citizens corrupts the public servant by bribe and avails better benefits. In fact both perpetuates inequality and strikes at the very concept of rule of law the bed rock of democracy, which is acknowledged as the best system of governance to ensure respect for human rights.<sup>18</sup>

The fight against corruption has been declared a high priority by the Government of India, however corruption remains widespread in the country and there have been many instances of political and bureaucratic corruption, public funds embezzlement, fraudulent procurement practices, and judicial corruption. High ranking officials have also been involved in major corruption scandals.

Since 1991, economic liberalization in India has reduced red tape and bureaucracy, supported the transition towards a market economy and transformed the economy, with record growth rates of 9.2% in 2007 and 9.6% in 2006. However, though the Indian economy has become the 6<sup>th</sup> largest in the world. Its growth has been uneven across social and economic groups, with sections of society experiencing some of the highest levels of poverty in the world. Endemic corruption contributes to this uneven distribution of wealth. The cost of corruption, perceptible in public sector inefficiencies and inadequate infrastructure, is undermining efforts to reduce poverty and promote sustainable growth.<sup>19</sup>

Though India is credited with having made considerable progress in terms of economic reform over the past few years, corruption is perceived to be widespread and entrenched at all levels of the political and administrative system. India ranks 85 among from 180 countries surveyed by Transparency International in 2008. The Corruption Perception Index (CPI)<sup>20</sup> 3.5. Since the

first reiterations of the index, India has scored between 2.7 and 3.5, indicating that despite some progress corruption continues to be perceived as rampant and endemic by the various CPI sources.<sup>21</sup>

Similarly, the 2007 World Bank Governance Indicators suggest little change over the years. The country performs consistently above average on indicators of voice and accountability, government effectiveness and the rule of law, but poorly in terms of regulatory quality and control of corruption.

According to the Global Corruption Barometer 2007 petty corruption is common practice in India with 25% of respondents admitting paying bribes to obtain basic service. Citizens do not expect the situation to change in the short term and expressed scepticism with regard to government political will and/or capacity to curb corruption. 90% of respondents believed that corruption would increase in the next three years while 68% perceived government efforts against corruption as ineffective.

The corruption survey published in June 2008 by Transparency International and the Centre for Media Studies India confirms these findings. One-third of Below Poverty Line (BPL) households across the 31 states covered by the survey paid bribes to access one or more of 11 public services. The percentage of respondents paying bribes to access service was especially high for the police, land registration and housing. These findings echo the results of a 2005 corruption survey conducted by Transparency International found that more than 50% of the respondents had first hand experience of paying bribes or padding influence to get a job done in a public office.

Most reports and studies emphasize that the country continues to face major governance challenges. There is a lack of transparency in governance rules, procedures are complicated and the bureaucracy enjoys broad discretionary power. Nepotism is embedded in the civil service, journalists are harassed for reporting on corruption and recent years have seen an increase in off-the books campaign finance arrangements.

The country is further characterized by rigid bureaucratic structures, an exclusivist process of decision-making, overly centralized government, poorly-paid civil servants and the absence of effective internal control mechanisms. Political corruption and corruption scandals involving high ranking officials and ministers periodically hit the headlines, undermining the legitimacy of democratic processes and citizens' trust in public institutions.

These findings confirm the prevalence of the bureaucratic and administrative forms of corruption that take place at the implementation end of politics, where the public meets public officials. Bureaucratic corruption pervades the Indian administrative system with widespread practices of bribery, nepotism, and misuse of official positions and resources. The

Bertelsmann Foundation 2008 report states that India is characterized by a deeply rooted patronage system and pervasive corruption at all levels of the polity and administration.

Public procurement is especially vulnerable to corruption in most developing countries. In India, there is a reasonable good framework of rules and procedures for public procurement that requires open tenders available to all qualified firms without discrimination, the use of non-discriminatory tender documents, public bid openings and selection of the most advantageous tenders, taking all factors into consideration. These regulations are also in effective due to major corruption scandals involving high level politicians.

Corruption also affects access to public utilities such as water, phone and electricity. Compared to the 2006 edition of the Global Corruption Barometer, most utilities and departments have fared worse in terms of public perception of corruption in 2007. Procedures surrounding access to water and electricity are complicated and cumbersome and firms may be tempted to make 'facilitation payments' to speed up the process. Close to 40% of the World Bank Enterprise survey reported paying bribes to get an electrical. According to the Global Corruption Report 2008, citizens believe the corruption is on the rise in these sectors.

52.3% of the firms covered by the World Bank Enterprise survey reported being expected to give gifts in meetings with tax officials. In this sector, rules and procedures are extremely cumbersome; giving tax officials wide discretionary powers to interpret the rules. Some are suspected of deliberately stalling administrative procedures to induce facilitation payments. Bribes may be paid for an under assessment of incomes or to obtain penalty reductions or tax refunds. According to the 2005 TI India corruption survey, 20% of the respondents admitted having paid bribes to the tax department, while 60% perceived the department to be corrupt.

Another field where the impact of corruption is being felt is Judiciary. The judicial system is highly dilatory, expensive, and beyond the reach of common man, ordinary citizen find it hard to seek redress, as litigation is expensive and extra money is often required to oil the wheels of system. There are instances of judges misusing the powers, and in some cases, judges offer a favour in exchange for personal gain or favour. Any person making any allegation of corruption or other things against a setting judge can be charged and punished for contempt of court, this is a deterrent against the instances of corruption coming to light, and further No first information report can be registered against a judge, nor a criminal investigation initiated without prior approval of the chief justice of the Supreme Court one appointed, a judge of

the High Court or Supreme Court can not be sacked except by a complicated impeachment process done by members of the Lok Sabha and the Rajya-Sabha, the two houses of Indian Parliament. The weakness of the judiciary, the lack of political independence of the police and poor law enforcement contribute to a culture of impunity where few politicians or civil servants are indicted or convicted for corruption.

Modern welfare states are duty bound to provide such governance which can guarantee fair and equitable protection of the basic rights of citizens. The modern states have three levels of obligations in relation to these rights. First obligation requires the state to refrain from any measure that may deprive individuals of the enjoyment of their rights or their ability to satisfy those rights by their efforts. Second obligation is to protect. It requires the state to prevent violations of human rights by third parties. Third obligation is to fulfill. It requires the state to take measures to ensure that people under its jurisdiction can satisfy basic needs (as recognized in human rights instruments) that they cannot secure by their own efforts. Hence the violation of human rights occurs when state's action or omission fails to conform with its obligation to respect, protect or fulfill these rights of the people.

So, there is an urgent need to look into this issue with a holistic approach, as, corruption free governance is basic human-right. The recent Anti Corruption drives by social activities and, the postponement of strong Jan Lokpal Act by the Government has attracted criticism, but the question still remains, whether only by making a more stringent law, this phantom problem can be solved? Stringent law and strong institutions alone can not tackle this problem. There is a need to develop work culture among people. People should realize that, the materialistic approach, and the growing tendencies of people to acquire wealth, by all means, is also responsible for this growing corruption. Discretion, arbitrariness misuse of power, all these are the major causes of corruption, and, all these are subjective. The journey for combating corruption is a long one. And, stringent laws, strong institutions, simple procedure, elimination of arbitrariness, reducing discretions increasing transparency in Governments functions can play an important role in making India a corruption free nation.

#### Reference:-

1. A. Alam, "Crisis of Governance: Need for Political Reforms" in A. Alam (ed.) *Crisis of Governance Raj Publication Delhi 2003 P. 9-45*
2. *Milovanie 2001*
3. *Oxford English Dictionary, 1978, pp 1024-1025.*
4. See *Anti-Corruption Resource Centre, Corruption Glossary available at; www.u4.no/document/faqs 5.cf,#grandcorruption. The term "Grand Corruption" was first used by Sir George Moody-Stuart to make reference to the bribery of foreign public*

*officials by international corporations. See Moody-Stuart, 1997. The term later evolved to cover all corruption at the top levels of the public sphere, where policies and rules are formulated. It is usually (but not always) synonymous with political corruption.*

5. [www.ichrp.org/files....](http://www.ichrp.org/files....) corruption and human rights : making the connection accessed on 12.4.2012
6. [http://en.wikipedia.org/wik/political\\_corruption](http://en.wikipedia.org/wik/political_corruption) accessed on 7.5.12
7. UNCAC adopted by the General Assembly, resolution 58/4 on 31.10.2003 entered into force on 14-12-2005 follow this approach the United Nations Convention against Transnational Organized Crime, the Council of Europe Civil Law Convention on Corruption, The Convention on the Fight against Corruption Involving Officials of the European Communities or Officials of Member States of the European Union (EU), and the Council of the European Union's Framework Decision on Combating Corruption in the Private Sector (EU Decision on Corruption in the Private Sector). The Organization for Economic Co-operation and Development (OECD) Convention on Combating Bribery of Foreign Public Officials in International Business Transactions follows the same line, although the approach is reflected in the title.
8. In Article 6, entitled "Acts of Corruption", both conventions provide a list of acts that constitute corruption. Two additional conventions distinguish even more clearly between corruption and the acts that constitute it. The African Union (AU) Convention on Preventing and Combating Corruption (AU Convention against Corruption) states in Article 1 that "[c]orruption means the acts and practices including related offences proscribed in this Convention". Subsequently, it lists acts of corruption, such as they bribery of a national public official, abuse of function and embezzlement (Article 4). An even clearer differentiation is provided by the Southern African Development Community (SADC) Protocol against Corruption. This not only separates corruption and the acts that constitute it, but provides a general definition of corruption.
9. The UNCAC: The United Nations Convention against Corruption is a legally binding international anti-corruption instrument created under the auspices of the United Nations Office on Drugs and Crime; it entered into force on 14 December 2005. The Convention deals with;
  - Basic forms of corruption such as bribery and embezzlement;
  - Complex forms of corruption such as trading in influence, laundering of proceeds;
  - Offences committed in support of corruption such as money laundering or obstructing justice;
  - Private sector corruption. International cooperation in the prevention, investigation and prosecution of offenders (chapter IV) States are to
  - Provide specific forms of mutual legal assistance, in prosecuting, judicial proceedings, etc. (Article 46);
  - Undertake measures that will support the tracing, freezing, seizure and confiscation of the proceeds of corruption (Article 54). Asset-recover is stated in Article 51 to be a fundamental principle of the Convention (chapter V). In this area;
  - The treaty reconciles the needs of countries seeking illicit assets with legal and procedural safeguards in countries whose assistance is sought;
  - Establishes several provisions specifying how cooperation and assistance are to work;
  - Article 43 obliges states to extend the widest possible cooperation to each other in the investigation and prosecution of offences defined in the Convention;
  - Article 51 provides for the return of assets to countries of origin.

10. *Corruption and human rights: making the connections available on [http://lchrp.org/files/reports/40/13\\_web/pdf](http://lchrp.org/files/reports/40/13_web/pdf)- visited on 15.3.12*
11. *Supra Note 10*
12. *Ibid.*
13. *Supra Note 6*
14. *Ibid*
15. *The preamble of the council of Europe Criminal convention of corruption.*
16. *Luis Flores Ballesteros, "Convention on corruption does the "rule of law" factor weigh more than we think? Available on <http://54peson.org/2008> accessed on Ap.12.2011.*
17. *Corruption and growth in African countries: exploring the investment channel, lead author mina balimoune, Department of Economics. Univ. of North Florida, page 1;2 (<http://www.ueca.org/acc/documents/pdf>).*
18. *Corruption in Governance: Human Right dimension available Ashish Kumar Gill.*
19. *Overview of Corruption and Anti Corruption efforts in India by Marie Chene, U4 Help desk, Transparency International can be accessed on [www.U4no.org](http://www.U4no.org). accessed on 12.5.2012*
20. *[http://www.transparency.org/policy\\_research/surveys\\_indices/cpi](http://www.transparency.org/policy_research/surveys_indices/cpi).*
21. *In the latest report of Transparency International 2011 India is on the 95<sup>th</sup> no. with a score of 3.1 in the list of 182 nations. New Zealand with a score of 9.5 is the least corrupt nation while Somalia with a score of 1.0 is the most corrupt nation. Report can be accessed on [www.transparency.org/CPI2011](http://www.transparency.org/CPI2011) accessed on 17.11.2012*

## Impact of family environment on Academic Achievement of teenagers school students.

**Pushkrit Gupta**

Assistant Prof. of Education, Surya P.G. college of Education, Tohana (Haryana)

The family is the most important primary group of the society. Historically it has been transformed from more and less self constrained unity into definite and limited organization of minimum size, consisting primary of the original contracting parties. On the other hands it continuous serve as a total community for the time born within it, the gradually relinquishing this character as they grow towards adulthood. The family more profoundly than any other organization, exists only as process. We can under go in human history and the change with in it in the life history of each individual examples. The family is the most significant single influence on the development of child. The family is the major environment influence and remains throughout life the most pervasive of all influences. It is in the home that the children get first experience of love and affection. The family has a most important role to develop the personality of an individual.

Now a day's most of the parents expect better performance of their children in the school. They become pleased if their children perform better as compared to other peers in their class. Due to this reason some parents give more time to their children. They love their children and always try to find out the solutions of various problems faced by children in their day to day life.

In India, commonly parents play a dominant role and the children grow under their stick control of their parents. The children have to what their parents order. Such children feel themselves inferior and they can never think for high achievement in their life.

Now a day in family relationship has made considerable impact upon the middle class homes in which reading material on child management is likely to be found. In studying the data related to the type of relationship of parents to their child it is important to recognize that the attitudes of parents towards the child are more significant than they individual practices.

If a child has a good relationship with their parents, they eager have to act according to the expectations of their parents. They will be able to achieve good success in school as compared to their peers. On the other hand the child whose relation is not proper such type of Childs is low achiever in the school. Hence parents –child relationship should be proper, so that the child be more benefited.

Even after independence our country has numerous problems

regarding education. One of the basic problems like, personality of child, self confidence level and difference in the performance of learners etc. several studies has been reported that parental involvement directly affects the child in all aspects. Various researchers note that there are sustainable evidence indicated that children have significantly increases their academic achievement after the proper attention of their parents. Not only literate but if illiterate parents simply interact with their child regarding their school problems then the results are positive.

Within an increasingly developed education system and atomized society, the pressure in Britain on schools to involve parents, and parents themselves to take a greater part in their children Education, is growing. But the studies which have been conducted in India are lamentably inadequate. So, immediate attention is indispensable to identify the role of the parents towards the child for his personality development and better performance in the school. Hence it demands our immediate attention to work in this field. All the above factors encouraged the investigation to go for the present venture:

#### Objective of the study:

- To find out the relationship between relationship dimension of mother and the academic outcomes of teenagers.
- To find out the relationship between relationship dimension of father and the academic outcomes of teenagers.
- To find out the relationship between the personal growth dimension of mother and the academic outcomes of teenagers.
- To find out the relationship between the personal growth dimension of father and the academic outcomes of teenagers.
- To find out the relationship between the systems maintenance dimension of mother and the academic outcomes of teenagers.
- To find out the relationship between the systems maintenance dimension of father and the academic outcomes of teenagers.

#### Hypothesis of the study:

- There exists no significant relationship between relationship dimension of mother and academic achievement of teenagers.
- There exists no significant relationship between relationship dimension of father and academic achievement of teenagers.
- There exists no significant relationship between the personal growth dimension of mother and academic achievement of teenagers.
- There exists no significant relationship between the personal growth dimension of father and academic achievement of teenagers.

- There exists no significant relationship between the systems maintenance dimension of mother and academic achievement of teenagers.
- There exists no significant relationship between the systems maintenance dimension of father and academic achievement of teenagers.

**Tool:** Family environment scale (FES) by Harpreet Bahtia and NK Chada.

**Sample:** Researcher use random sampling technique for the selection of sample. Following the above mention technique researcher select three Dist. of Haryana i.e. Ambala, Yamunanager, Kurukshetra. From each dist two schools were selected and from each school 50 couples are randomly selected whose children were teenagers. So total sample of 300 (fathers 150, mothers 150) was selected by researcher.

**Statistical technique:** Mean, SD, t-ratio was used by researcher.

#### Analysis and Interpretation:

**Table 1:**

Result with respect to relationship dimension of Mothers to wards high and low scores.

	N	Mean	S.D.	S.E.D.	t-Ratio
High Achievers	50	189.4	17.11	5.91	7.35
Low Achievers	50	146.12	17.92		

The t-ratio calculated in table is 7.35 and the need nature be significant at .01 level is 2.58. So, calculated value is greater then the stander table value. Hence the hypotheses: *There exists no significant relationship between relationship dimension of mother and academic achievement of teenagers, is rejected.*

**Table 2:**

Result with respect to relationship dimension of Fathers to wards high and low scores.

	N	Mean	S.D.	S.E.D.	t-Ratio
High Achievers	50	185.4	20.11	6.21	7.07
Low Achievers	50	141.12	18.92		

The t-ratio calculated in table is 7.07 and the need nature be significant at .01 level is 2.58. So, calculated value is greater then the stander table value. Hence the hypotheses: *There exists no significant relationship between relationship dimension of father and academic achievement of teenagers, is rejected.*

**Table 3:**

Result with respect to Personal Growth dimension of Mothers to wards high and low scores.

	N	Mean	S.D.	S.E.D.	t-Ratio
High Achievers	50	59.4	8.1	4.21	1.7
Low Achievers	50	50.12	9.2		

The t-ratio calculated in table is 1.7 and the need nature be significant at .01 level is 2.58. So, calculated value is less then the stander table value. Hence the hypotheses: *There exists no significant relationship between Personal Growth dimension of mothers and academic achievement of teenagers, is selected.*

**Table 4:**

Result with respect to Personal Growth dimension of Fathers to wards high and low scores

	N	Mean	S.D.	S.E.D.	t-Ratio
High Achievers	50	57.3	10.2.1	5.2	1.6
Low Achievers	50	51.2	13.9		

The t-ratio calculated in table is 1.6 and the need nature be significant at .01 level is 2.58. So, calculated value is less then the stander table value. Hence the hypotheses: *There exists no significant relationship between Personal Growth dimension of fathers and academic achievement of teenagers, is selected*

**Table 5:**

Result with respect to System maintained dimension of Mothers to wards high and low scores.

	N	Mean	S.D.	S.E.D.	t-Ratio
High Achievers	50	22.8	3.62	2.51	6.2
Low Achievers	50	21.6	2.9		

The t-ratio calculated in table is 6.2 and the need nature be significant at .01 level is 2.58. So, calculated value is greater then the stander table value. Hence the hypotheses: *There exists no significant relationship between System maintained dimension of mother and academic achievement of teenagers, is rejected.*

**Table 6:**

Result with respect to System maintained dimension of Fathers to wards high and low scores.

	N	Mean	S.D.	S.E.D.	t-Ratio
High Achievers	50	23.1	4.11	1.91	6.3
Low Achievers	50	20.6	3.2		

The t-ratio calculated in table is 6.3 and the need nature be significant at .01 level is 2.58. So, calculated value is greater then the stander table value. Hence the hypotheses: *There exists no significant relationship between System maintained dimension of father and academic achievement of teenagers, is rejected.*

#### Major Findings:

- There exists a significant difference between relationship dimension of mother and academic achievement of teenagers. Because mean score of high achiever are more then relationship dimension of mothers leads to high achievement
- There exists a significant difference between relationship dimension

of fathers and academic achievement of teenagers. Because mean score of high achiever are more than relationship dimension of fathers leads to high achievement.

- The personal growth dimension of mothers does not affect significantly the academic achievement of teenagers belongs to high and low achievers groups.
- The personal growth dimension of fathers does not affect significantly the academic achievement of teenagers belongs to high and low achievers groups.
- There exists a significant difference between System maintained dimension of mother and academic achievement of teenagers. Because mean score of high achiever are more than relationship dimension of mothers leads to high achievement.
- There exists a significant difference between System maintained dimension of father and academic achievement of teenagers. Because mean score of high achiever are more than relationship dimension of father leads to high achievement.

#### References:-

1. Baldwin, A.L. Kalhorn, *Patterns of Parent Behavior* psycholog1
2. Buamrind, D., (1996), *Effects of Authoritative Parental control on child behavior, Child Behavior Child Develo*37,887-907
3. Best J.W., (1978), *Research in Education. Parentice Hall o Delhi*, pp. 254-256 Best J.W., (1978), *Research in Education. Parentice Hall o Delhi*, pp. 254-256
4. Campbell, W.J. (1970), *Scholars in context. The Effects of Environments on learning*, John Wiley & Sons. Australasia. PTY LTD. Sydeny
5. Dinkineyer, D.C. (1976), *Child development: The Emerging Self Prentice Hall of India Pvt Ltd, New Delhi.*
6. Dornbusch, S. et al (1987), *The Relation or Parent in style to adolescent school Performance. Child Development* 58,1244-57
7. Douglas, J.W.B., (1964), *The Home and the school: A study of Ability and Attainment in the Primary Schools. Kee London, Gibben.*
8. Freasor., H.E. (1959), *Home Environment and the school, University of London*, p.137.
9. Garret, H.E. (1973), *Statistics in Phychology and Education (Indian Edition) Vakils and Feffer*
10. Guilford, J.P. (1959), *Fundamental statistics in Psychology and Education, McGrave Hill Book Co., New York, Toronto.*

## Creativity among the Students of Urdu Medium Vocational Courses: A Study in Hyderabad

Md. Afroz Alam<sup>#1</sup>, Md. Rashid Anwar<sup>#2</sup>

<sup>#1</sup>Senior Research Fellow, Ph.D. (Education), Dept. of Education & Training, Maulana Azad National Urdu University, Gachibowli, Hyderabad (Andhra Pradesh)

<sup>#2</sup>M.Ed. Student, Dept. of Education & Training, Maulana Azad National Urdu University, Gachibowli, Hyderabad (Andhra Pradesh)

The vocationalization of education at all levels of knowledge acquisition has attained importance in India. Vocational education refers not only to the development of specialized skills but also to the development of a positive attitude to work and the dignity of the labour. The UNESCO in its recommendation of 1974 on technical and vocational education defined it as a "Comprehensive term embracing those aspects of the educational process involving, in addition to general education, the study of technologies and related sciences and the acquisition of practical skills, attitudes, understanding and knowledge relating to occupations in the various sectors of economic and social life".

The vocational education program in India got new impetus from the National Policy on Education (NPE-1986). The Ministry of Human Resource Development, Government of India, launched a Centrally Sponsored Scheme (CSS) of vocationalization of secondary education in 1988 under which substantial financial assistance is given to States and Union Territories for implementation of the program. Vocational and technical education contributes substantially to the socio-economic development of the country as a whole.

The creativity is the capacity or ability of an individual to create, discover or produce a new or novel idea or object including the rearrangement or reshaping of what is already known to him which proves to be a unique personal experience.

Researchers have conducted significant investigations on relationships between creativity and academic achievements in various subjects. Borgen (1971), Jain (1975), Mehdi (1977), Guptas (1979), Jarial (1981), Mahmood (2009) obtained significant positive relationship between academic achievement and creativity. While some research has been undertaken on creativity and academic achievement in the pre-school and elementary school years, very little research has been undertaken on creativity of vocational courses trainees, particularly on Urdu medium students.

Hence, the present study aims at finding creative potentialities and academic achievement of students of Polytechnic and ITI branches situated in Maulana Azad National Urdu University of Hyderabad.

#### Objectives of the study

- To find out the creativity among the students of vocational courses.
- To determine the significance of difference in the creativity of Polytechnic and ITI students.
- To find out the relationship of academic achievement with the creativity of Polytechnic students.
- To correlate academic achievement and creativity of the ITI students.

#### Hypotheses of the study

- The creativity among the students of vocational courses would be average.
- There would be no significance of difference between the creativity of Polytechnic and ITI students.
- There exists a positive relationship between the academic achievement and creativity of Polytechnic students.
- There is positive relationship between academic achievement and creativity of the ITI students.

#### Methodology

The investigator has adopted the descriptive survey method of research to find out the creativity of Urdu medium vocational courses students in Hyderabad.

#### Sample

The sample comprised of 60 students of vocational courses (Polytechnic and ITI) selected by the method of stratified random sampling from the four branches of Polytechnic and ITI courses of Maulana Azad National Urdu University, Hyderabad. Out of which there were 40 students from Polytechnic and 20 students from ITI.

#### Tools

- Thinking Creativity by Words (TCW: bilingual), by: Dr. Baqer Mehdi, National Psychological Corporation, Agra.
- Academic achievement: the percentage of first year annual examination marks were considered as academic achievement.

#### Statistical Techniques Used

- Men
- Standard deviation
- Pearson's product moment coefficient of correlation
- t-test

### Analysis of Data

Table-1

Showing the Creativity of the students of vocational courses.

S.No.	Categories	Range	Frequency	f %	Mean
1.	High	>60	2	3.33	29.93
2.	Average	40-60	10	16.67	
3.	low	>40	48	80	

Table shows that the number of students of vocational courses which have high creativity is 2, which percentage among all is 3.33. Similarly the number of students of vocational courses which have average creativity is 10, which percentage among all is 16.67. The number of students of vocational courses which have low creativity is 80, which percentage among all is highest i.e. 80. The mean score of creativity of all students are 29.93, so the result shows that the creativity among vocational courses students is below the average i.e. low. Thus the formulated hypothesis is rejected.

Table-2

Showing significance of difference between the Creativity of Polytechnic and ITI students

Group	N	Mean	SD	df	t-value	Remark
Polytechnic	40	33.62	12.64	58	3.83	Significant
ITI	20	22.55	9.30			

Table clearly indicates that the mean value of Polytechnic students is 33.62 and standard deviation is 12.64, similarly the mean value of ITI students is 22.55 and standard deviation is 9.30, which have that t-value 3.83, and is significant at the both 0.01 and 0.05 level. So the null hypothesis is rejected.

So the result shows that the mean difference between creativity of polytechnic and ITI students is significant. But there is in comparisons to the ITI students; Polytechnic students shows better creativity.

**Table-3**  
**Showing correlation between creativity and academic achievement of polytechnic students.**

No.	Mean creativity	Mean Academic achievement	Coefficient of correlation (r)	Correlation status
40	33.625	59.75	0.176	Very low positive correlation

[r = 0.000 to 20 = very low positive correlation]

[Cor = creativity {academic achievement} = 0.176 = very low positive correlation]

The above table shows that the mean score of creativity of polytechnic student is 33.62 while the academic achievement mean is 59.75. The value of coefficient of correlation between creativity and academic achievement is 0.176, which falls in very low positive correlation. The results shows that the effect of creativity on academic achievement of polytechnic students is very low but positive. So the hypothesis is accepted.

**Table-4**  
**Showing correlation between creativity and academic achievement of ITI students.**

No.	Mean creativity	Mean Academic achievement	Coefficient of correlation (r)	Correlation status
20	22.55	51.17	0.102	Very low positive correlation

[r = 0.00 to .20 = very low positive correlation]

[Cor = creativity {academic achievement} = 0.102 = very low positive correlation]

The table indicates that the mean value of ITI students is 22.55 and which mean of academic achievement are 51.17. The coefficient of correlation between creativity and academic achievement is 0.102, which shows very low

positive correlation. The effect of creativity on the academic achievement of ITI students is very low but show positive correlation. Hence the formulated hypothesis is accepted.

#### Findings

- The creativity of vocational course students is below than average. The result shows that the 80 % students falls in below average creativity while only 16.67 % students have the average creativity. Similarly the only 3.3 % students having high creativity. So the overall creativity of students is low.
- There is found a significant difference between creativity of Polytechnic and ITI students. The results show that the mean of creativity of Polytechnic students is 33.62 and mean of creativity of ITI students is 22.55, so the differences between them are exists. So they reveal that the significance of difference is found.
- The relationship between creativity and academic achievement of polytechnic students is found to be positive. But they show very low correlation.
- The relationship between creativity and academic achievement of ITI students is found to be positive. But they are very low correlation.

**Conclusion:** The students are the foundation of nation. So the shaping of student is very essential according to future need. The creativity exists in students but there are need of some motivation and right guidance from teacher. So the creativity test must organize in the institution from time to time. The researcher concluded that the students of vocational courses studying in Maulana Azad National Urdu University having below average creativity. The significant differences found and positive correlation but very low. Therefore nurturing and stimulation of creativity may be achieved through the practices like- freedom to respond, opportunity for ego involvement, encouraging originality and flexibility, removal of hesitation and fear, providing appropriate opportunities and atmosphere for creative expression, developing healthy habits among students and using the creative resources of the community for fostering creativity.

**Educational Implications:** There is a need for properly planned, deliberate and conscious efforts on the part of teachers, parents, governments as well as the Urdu medium students themselves for the appropriate nurturing and stimulation of the creative urge and potential.

- Organize the creativity test right from the early classes.
- According to the creativity and interest suggest the future education/field for students.

- The activity based work assign more to students by which brings out inner capabilities of students.
  - Promote the given view by students in the teaching learning process.

#### References :-

1. Arora, G. L. (1974). *A study of relationship between creative thinking and vocational anxiety and their effect on teaching: Doctoral thesis, Punjab University, Chandigarh.*
2. Craft, Anna. (2004). *Creativity and Early Year's Education, Atlantic Publishers & Distributors, London.*
3. Ghanta, Ramesh; Veeraiah, P. & Vardhini, Vijaya S. (2011), *Vocational Education in India Problems & prospects, Edutrcks, October, 2011, Vol. 11-No. 2, pp.3-7.*
4. Gupta, A. K. (1974). *Creativity Research in India: Past and Future, India Ltd.*
5. Gupta, P. K. (2006). *Education for Creativity Training and Research and Implications, Cosmo Publication.*
6. Hussain, Arif, Md. (2008). *A study of correlation between creativity and scholastic achievement in science with reference to IXth class students of Hyderabad, M.Ed. Dissertation, Dept. of Education & Training, MANUU, Hyderabad.*
7. Hussain, Arshad, Md. (2009). *Creativity of Adolescent Boys and Girls at Secondary Schools: A Comparative Study, M.Ed. Dissertation, Dept. of Education & Training, MANUU, Hyderabad.*
8. Kothari, C. R. (2007). *Research Methodology, Methods and Techniques, New Age International (P) Ltd, Publishers, New Delhi.*
9. Mangal, S. K. (2010). *Advanced Educational Psychology, PHI Learning Pvt. Ltd. New Delhi.*
10. Mehdi, Baqer. (2006). *Thinking Creativity by Words (TCW), National Psychological Corporation, Agra.*
11. *National Curriculum Framework for School Education (2005). NCERT, New Delhi.*
12. Torrance, E. P. & Myers, R. E. (1970). *Creative Learning and Teaching, New York: Dodd, Mead.*
13. Vekateshwaru, N. & N. Chandrasekhar, K. (2007). *Vocationalization of Education Conflict between Ideology and Practice, Sonali Publication, New Delhi.*
14. Venkata Rami, Reddy, A. (1994). *Creativity of adodelescent Boys and Girls in relation to some variables, Indian Educational Review.*
15. Walia, J. S. (2011). *Development of Learner and Teaching Learning Process, Ahim Pal Publisher, Jalandhar.*

## Educational Technology and challenges in Indian Education

Satyanarain Nai

Asst. Prof., Teachers Training Institute for special education, New Delhi

The term Educational Technology is word which highlights the changing trends in educational delivery system which involves appropriate, adapted and adopted methods, processes of teaching learning system to satisfy diverse need of the learner. The challenge is to design appropriate systems that will provide for and enable appropriate teaching-learning systems that could realize the identified goals.

Conceptions of educational technology have been evolving as long as the field has, and they continue to evolve. Therefore today's conception is a temporary one, a snapshot in time. In today's conception, Educational Technology can be defined as an abstract concept or as a field of practice. First, the definition of the *concept*:

“Educational technology is the study and ethical practice of facilitating learning and improving performance by creating, using, and managing appropriate technological processes and resources.”

The key to meeting this challenge is an appreciation of the role of Educational Technology as an agent of change in the classroom, which includes not only the teacher and the teaching-learning process but also systemic issues like reach, equity, and quality. Over the past decades, educational technology in India has taken two routes: The first route involved a large number of experiments aimed at the qualitative improvement of schools, adopted the systems approach to analyze the problems plaguing the particular situation, and have evolved a range of solutions. These have included the development of flexible systems, alternative curricula, multilevel organization of classes; low-cost teaching-learning materials, innovative activities, continuous support systems for teacher training, etc. While many of these experiments have demonstrated intrinsic merit, they have been restricted to pockets of intense practice and have failed to influence the larger school system. Information and Communication Technologies (ICTs) have brought in a convergence of the media along with the possibility of multi-centric participation in the content- generation and disseminative process. This has implications not only for the quality of the interchange but also for drastic upheavals of centre-dominated mindsets that have inhibited qualitative improvement.

The reason why the term Educational Technology is misconstrued is on account of the changing nature of ET's second component, viz. technology. The basic tenet of Educational Technology, viz., using all available resources (human and non-human) in a systematic manner to find viable solutions to educational problems, does not change. However, as technologies change and newer ones are brought into service in education (or, for that matter, into other spheres of development), the configurations, structures, and applications of Educational Technology will also change.

The universally accepted definition of Educational Technology involves processes, methods and techniques, products, resources and technologies organized into workable systems. The recognition of the need for a multilevel organization of a classroom, for instance, along with the designing of an appropriate programme and its implementation, becomes as much an exercise in Educational Technology as the use of audio-visual aids or the information superhighway.

Educational Technology could be defined in simple terms as the efficient organization of any learning system, adapting or adopting methods, processes, and products to serve identified educational goals. This would involve:

- Systematic identification of the goals of education, taking into account nationwide needs (higher scalability, for instance), the system capabilities, and the learners' needs and potential.
- Recognition of the diversity of learners' needs, the contexts in which learning will take place, and the range of provisions needed for them.
- Recognition of not only the immediate needs of children but also their future needs in relation to the society for which we are preparing them.
- Designing, providing for, and enabling appropriate teaching-learning systems that could realize the identified goals.
- Developing a range of support systems and training, creating the enabling systemic conditions/materials, reaching these to the school system, and training teachers and students to use them.
- Research into existing and new techniques, strategies and technologies for solving problems of education, enabling judicious and appropriate application of technology.
- Appreciation of the role of Educational Technology as an agent of change in the classroom, influencing the teacher and the teaching-learning process, and its role in systemic issues like reach, equity, and quality. (This appreciation should not be limited to educators alone, but should extend to planners and administrators as well, since systems both at micro and macro levels will be necessary to meet the current challenges of education.)

**Historical Perspective:** The basic elements of Educational Technology have always been present in any effective teaching-learning system, though it was not called Educational Technology. For example, the old Gurukul system in India stressed individualized instruction and emphasized learning, which are also features of ET. The training programme in the Gurukul was devised to suit the needs and abilities of the pupil. It was a one-to-one (Guru-Shishya) system, but it did not mean rote learning or following the guru blindly. A Sanskrit maxim (Shishyat icchet Parajayam) states that the fervent wish of a guru should be that his disciple would better him. Moreover, the teaching programme was devised not only to suit the needs and potential of the pupil but also to suit the societal needs as expressed in identified learning goals

**Efforts to Mobilize Educational Technology, Large and Small :** A number of groups doing innovative work in the field of Educational Technology in India and abroad made presentations of their work and experiences before the Focus Group. The list of presenters along with their topics of presentation is given in the Appendix. In addition, teams of Focus Group members visited several innovative programmes and made presentations to the group. The boxes in this paper give information about some of these programmes. Readers may visit their respective websites for additional information.

**Initiatives in the Voluntary Sector:** Several educators from Gandhiji onwards have sought to make education relevant and liberating by introducing alternative and experimental systems of learning. They have also tried to provide equity and quality in education by directing their efforts towards educating the marginalized child and providing the needed skills and knowledge in stimulating ways. Gijubhai Badheka and Tarabai Modak worked in the sphere of early childhood education. The Tilonia programme in Rajasthan; the Hoshangabad project of Kishore Bharati / Eklavya in Madhya Pradesh; Gram Mangal (an extension of the work done by Tarabai Modak and Anutai Wagh with tribal children) in western Maharashtra; the Bhandup project and the Avehi-Abacus project in Mumbai's municipal school system—these are a few examples of such efforts undertaken and sustained at various times in different parts of the country. Information on the Bhandup project, the Gram Mangal project, and the Avehi-Abacus project is given in Appendix Nos. 1, 2, and 3 respectively. Some of these projects like Tilonia, Hoshangabad, and Bhandup were replicated in a large number of schools after their efficacy had been proved in the project mode. However, even though the Tilonia and Hoshangabad models showed good results in the wider mode too, they were stopped because there was no political will to sustain them. The Bhandup project suffered neglect because the new municipal bureaucratic regime could not be bothered to continue it. The

Bhandup programme continues to work well in those districts where the district education officers are supportive. It is sustained by teachers who have seen how children come alive and learn enthusiastically with multilevel teaching. This programme lets children move at their own pace, provides learning materials made at low or no cost, and encourages peer learning.

**Efforts Initiated by the Government:** Mass media like radio and television have been used in a sporadic fashion for education for a long time. One of the earliest systematic and large-scale efforts in India to run an educational television channel was SITE (Satellite Instructional Television Experiment) in 1975–76, which was beamed to six states, and is well documented. Many innovations were undertaken in SITE in both devising and deploying suitable hardware (for example, battery-operated television sets in Orissa, ½" video technology) and making original software. This software was made by many agencies other than Doordarshan, which until then had a monopoly on video production and broadcasting in the country.

#### **Some common Questions and Challenges:**

1. How can schools afford to purchase enough multimedia-capable, Internet connected computers so that a classroom machine is always available for every two to three students?
2. How can schools afford enough computers and telecommunications to sustain new models of teaching and learning?
3. How can many educators disinterested or phobic about computers and communications be induced to adopt new technology-based models of teaching and learning?
4. How do we prove to communities that new, technology-based models of teaching and learning are better than current instructional approaches?
5. How can educational technology increase equity rather than widen current gaps between "haves" and "have-nots"?
6. If we use technology well, what should we expect as "typical" student performance?
7. If we use current technology then how much it will be use full for disadvantaged and underprivileged children?
8. How technology can help to enhance classroom environment for group learning and cooperative learning.
9. How technology can help in day to day classroom learning and sports.
10. If a school arranges finance to purchase new educational technological equipment and installs in the school than what will be the finance return options and difficulties.

The use of technology in the classroom has had a profound effect on the way that teachers teach and students learn, and Harvard Medical School is at the forefront of this sea change in teaching techniques. Leading the charge is the school's Center for Educational Technology, created in 2001 to help students, faculty, and IT experts collaborate to create new forms of digital content.

Now-a-days, many educational institutional/Universities have come up with online learning and examinations with the help of Information and communication Technology. In the field of rehabilitation the many educational technological changes have come up. The Rehabilitation Council of India (RCI), Indira Gandhi National Open University (IGNOU), and National Institute of Open Schooling (NIOS), and many other universities working for the educational advancement in education in the field of rehabilitation education. The use of Tablet (A Small Computer) is the most recent development in school education in India.

#### **References:-**

1. [www.ncert.nic.in/new\\_ncert/.../pdf/.../educational\\_technology.pdf](http://www.ncert.nic.in/new_ncert/.../pdf/.../educational_technology.pdf) on May 23, 2012
2. Welliver, P. W., ed. (2001). *A Code of Professional Ethics: A guide to professional conduct in the field of Educational Communications and Technology*. Bloomington, IN: Association for Educational Communications and Technology
3. [ocw.metu.edu.tr/file.php/118/molenda\\_definition.pdf](http://ocw.metu.edu.tr/file.php/118/molenda_definition.pdf) on May 23, 2012  
<http://www.sicet.org/journals/jetde/jetde08/paper09.pdf>
4. May 26, 2012 [www.virtual.gmu.edu/pdf/ASCD.pdf](http://www.virtual.gmu.edu/pdf/ASCD.pdf)
5. May 23, 2012 [www.ed.gov/sites/default/files/netp2010.pdf](http://www.ed.gov/sites/default/files/netp2010.pdf)
6. May 23, 2012
7. [www2.ed.gov/rschstat/eval/tech/20years.pdf](http://www2.ed.gov/rschstat/eval/tech/20years.pdf) May 23, 2012  
[www.mff.org/pubs/ME161.pdf](http://www.mff.org/pubs/ME161.pdf)
8. May 23, 2012 [www.wested.org/online\\_pubs/learning\\_return.pdf](http://www.wested.org/online_pubs/learning_return.pdf)
9. May 23, 2012

# Creative Student-Teachers and Values

Dr. Yashwant Singh

Assist. Teacher, K.R.R.I.College, Farrukhabad (Uttar Pradesh)

Creativity is the spark that starts the fire of innovation. It is seeing the same thing as everybody else sees but thinking of something different. Creativity is the ability in a man to bring something new into existence. In the words of Wallach and Kogan 'Creativity is an individual's ability to generate cognitive association in quality and with uniqueness.' It involves insight which is the cause of sudden emergence of new ideas. The cultural, scientific and the social progress of any country depend on the extent of the development of creativity among its citizens. New discoveries, development and best utilization of resources are possible only through creative minds. So far as teaching is concerned, creativity is part and parcel of this profession. The creative teachers are the assets of the nation and the greater the creative potential that a nation holds, the better it utilize for the cause of the nation. The need of the hour is to develop creative teachers who will act as torch bearers in not only disseminating knowledge but also inculcating values among students effectively.

Through value education, teacher-educators can help student-teachers develop a critical awareness of the value domain and assume personal responsibility for the value they embrace.

Before launching any comprehensive educational strategy or programme to inculcate creativity and values among student-teachers, it is very essential to know the prevalent value system held by the creative student-teachers. The present study is an attempt to compare the values of student-teachers possessing high and low creativity.

## Hypothesis

It was hypothesized that, "There is no significant difference in the values of high and low creative student-teachers."

## Method

The study is of empirical nature in which a relationship between the dependent variable-values has to be studied in relation to the independent variable that is creativity. Hence, the method used is *quasi-experimental*

## Sample

The sample consist 410 student-teachers studying in different *Teacher-Education colleges* affiliated to *MJP RohilKhand University, Barielly* during the

session 2007-2008. Systematic sampling technique was employed.

## Tool

'Thinking Creativity with Words' by **Baqar Mehdi** and *Study of Values* by **Rajkumar Ojha** (Hindi version of **Allport, Vernon**) have been used to collect the data. First of all, Thinking Creativity with Words was administered to identify creative strength of the student-teachers. To select low creative group, Q1 and For high creative group, Q3 was applied. Average creatives were left out of the study. Study of Values was then administered on high and low creative student-teachers.

## 1. Results with Respect to Values of High Creative and Low Creative Student-Teachers as a Whole

In order to find out the difference between the values of High Creative and Low Creative Student-Teachers, mean and SD of both groups were calculated. The t-ratios obtained on the basis of mean scores of these individuals are given in table-1.

Table-1

Significance of difference between means of High Creative and Low Creative Student-teachers

Values	High Creative Student-Teachers (N <sub>H</sub> = 102)		Low Creative Student-Teachers (N <sub>L</sub> = 103)		SE <sub>D</sub>	t-score	Level of Significance At df= 203	
	M	SD	M	SD			at=.05(1.96)	at=.01(2.66)
Theoretical	45.45	5.41	43.29	5.17	.74	2.92	Significant	Insignificant
Economic	42.48	6.24	43.49	6.26	.87	1.53	Insignificant	Insignificant
Aesthetic	33.16	7.75	30.31	6.91	1.03	2.77	Significant	Significant
Social	42.66	5.48	44.04	5.39	.76	1.83	Significant	Insignificant
Political	41.04	5.15	41.79	5.23	.72	1.05	Insignificant	Insignificant
Religious	34.30	6.43	36.00	6.26	.89	1.93	Insignificant	Insignificant

From the above mentioned table it is quite evident that student-teachers with high creativity have high Theoretical and Aesthetic values as compared to the student-teachers with low creativity. Whereas on Social value, low creative student-teachers had an edge over high creative student-teachers. However, there exists no significant difference between the two groups on the rest values namely, Economic, Political and Religious values.

**Table-2**

Significance of Difference between means of High Creative male and Low Creative male Student-Teachers:

Values	High Creative Male Student-Teachers (N <sub>Hcm</sub> = 51)		Low Creative Male Student-Teachers (N <sub>Lcm</sub> = 58)		SEd	t-score	Level of Significance at df= 107			
	M	SD	M	SD					at=.05(1.96)	at=.01(2.66)
Theoretical	46.86	5.51	44.62	4.83	.99	2.25	Significant	Insignificant		
Economic	41.69	6.52	42.97	7.04	1.29	.99	Insignificant	Insignificant		
Aesthetic	31.69	7.69	29.79	7.20	1.43	1.32	Insignificant	Insignificant		
Social	43.04	5.83	42.95	5.43	1.08	.09	Insignificant	Insignificant		
Political	42.25	4.82	42.52	5.22	.96	.27	Insignificant	Insignificant		
Religious	34.43	5.77	35.53	6.91	1.21	.91	Insignificant	Insignificant		

Table- 2 indicates that there is no significant difference between means of high creative male and low creative male student-teachers on Economic, Aesthetic, Social, Political and Religious values. Only Theoretical value has been found discriminating between these groups.

**Table-3**

Significance of Difference between the Means of High Creative male and Low Creative Female Student-Teachers

Values	High Creative Female Student-Teachers (N <sub>Hcf</sub> = 51)		Low Creative Female Student-Teachers (N <sub>Lcf</sub> = 45)		SEd	t-score	Level of Significance At df= 94			
	M	SD	M	SD					at=.05(1.96)	at=.01(2.66)
Theoretical	44.04	4.97	41.58	5.13	1.03	2.39	Significant	Insignificant		
Economic	43.27	5.91	44.16	5.09	1.12	.78	Insignificant	Insignificant		
Aesthetic	34.64	7.63	30.98	6.52	1.44	2.53	Significant	Insignificant		
Social	42.28	5.14	45.44	5.06	1.04	3.05	Significant	Significant		
Political	39.82	5.22	40.86	5.15	1.06	.99	Insignificant	Insignificant		
Religious	34.18	7.10	36.62	5.31	1.13	1.94	Insignificant	Insignificant		

Table-3 demonstrates that there is no significant difference between means of high creative female and low creative female student-teachers at .01 level of significance. But Theoretical, Aesthetic and Social Values have been found discriminating between the groups as 't' ratio on these comparisons were found significant at .05 level of significance in which Social value has been found significant at both .05 and .01 levels.

**Table-4**

Significance of Difference between means of High Creative Male and Low Creative Female Student-Teachers:

Values	High Creative Male Student-Teachers (N <sub>Hcm</sub> = 51)		Low Creative Female Student-Teachers (N <sub>Lcf</sub> = 45)		SEd	t-score	Level of Significance At df= 94			
	M	SD	M	SD					at=.05(1.96)	at=.01(2.66)
Theoretical	46.86	5.51	41.58	5.13	1.08	4.87	Significant	Significant		
Economic	41.69	6.52	44.16	5.09	1.19	2.08	Significant	Insignificant		
Aesthetic	31.69	7.69	30.98	6.52	1.44	.49	Insignificant	Insignificant		
Social	43.04	5.82	45.44	5.06	1.11	2.17	Significant	Insignificant		
Political	42.25	4.82	40.86	5.15	1.02	1.36	Insignificant	Insignificant		
Religious	34.43	5.77	36.62	5.31	1.13	1.94	Insignificant	Insignificant		

From the analysis of table-4, it is evident that there is no significant difference between high creative male and low creative female student-teachers at .01 level of significance regarding the values studied. But Theoretical, Economic and Social values have been found discriminating between the groups at .05 level of significance.

**Table-5**

Significance of Difference between Femans of High Creative Female and Low Creative Male Student-Teachers:

Values	High Creative Female Student-Teachers (N <sub>Hcf</sub> = 51)		Low Creative Male Student-Teachers (N <sub>Lcm</sub> = 58)		SEd	t-score	Level of Significance At df= 107			
	M	SD	M	SD						
Theoretical	44.04	4.96	44.62	4.83	.94	.62	Insignificant	Insignificant		
Economic	43.28	5.91	42.97	7.04	1.24	.25	Insignificant	Insignificant		
Aesthetic	34.63	7.63	29.79	7.20	1.43	3.39	Significant	Significant		
Social	42.28	5.14	42.94	5.43	1.01	.67	Insignificant	Insignificant		
Political	39.82	5.22	42.51	5.22	1.00	2.69	Significant	Significant		
Religious	34.18	7.10	35.53	6.91	1.35	1.00	Insignificant	Significant		

Table-5, indicates that only aesthetic and Political values have been found highly discriminating between high creative female and low creative male student-teachers. On the rest values namely, Theoretical, Economic, Social, and Religious values there has been found no significant difference on any level of the significance.

Overall, in the comparison of high creative and low creative student-teachers as a whole only Theoretical and Aesthetic values have been found highly

discriminating. In this comparison high creative student-teachers have been found having an edge over the low creative student-teachers.

The findings of the study lend support to Paramesh, C R (1970), Vasesi, R (1985), Setia (1989), Kumar S K (1978) who also found Theoretical and Aesthetic values discriminating between high and low creatives where high creatives had an edge over low creatives. The findings are again in support to Pandey, M M(1980) who did not find significant difference regarding Social, Political, Economic and Religious values between high and low creative groups. Overall analysis demonstrates that creativity and sex plays a bit role in holding different values. Thus, the proposed main hypothesis is partially accepted and partially rejected.

#### Findings

1. Out of six values as measured found highly discriminating between high and low creative student-teachers as a whole where High Creative student-teachers had a significant edge on Theoretical and Aesthetic values over their low creative student-teachers as a whole.
2. High Creative and low creative male student-teachers did not differ from one another in respect of values except theoretical value where high creative student-teachers had an edge on low creative student-teachers.
3. A significant difference was observed in high creative female and low creative female student-teachers regarding Theoretical, Aesthetic and Social values where high creative female student-teachers had an edge regarding Theoretical and Aesthetic values on their low creative female counter parts. On the other hand low creative female had an edge, regarding Social value over their counter parts.
4. Theoretical, Economic, and Social values differentiated high creative male and low creative female student-teachers where low creative female student-teachers had a significant edge over their counterparts.
5. Out of six values, only Aesthetic and Political values were found significantly discriminating between high creative female and low creative male student-teachers where high creative female student-teachers had an edge over low creative male student-teachers on Aesthetic value and the low creative male took an edge over their counter parts on Political value.

#### References :-

1. Gerret, H.E. and Woodworth (1966); *Statistics in Psychology and Education*, Vakil Feffer and Simmons Ltd., Haged Building, Bombay.
2. Jagdish and Singh, V.P. (2003); *An Emerging Value Pattern Among Female Students*, *Journal of Value Education*, Vol-3, No. 1, January, 03.
3. Mehandi, B (1985); *Manual for Verbal Test of Creativity*, Agra: National Psychological Corporation.
4. NCERT (1988); *Fourth Survey of Research in Education*, NCERT, N. Delhi, 1983-88. Ojha, Rajkumar (1990); *Study of Values*, National Psychological Corporation, 4/230, Kachehari Ghat, Agra.

5. Rajput, J.S. (2001); *Symphony of Human Values in Education*, NCERT, N. Delhi. Sharma, Poonam and Kumar, Mukesh (2007); *Value Pattern of Senior Secondary Students*, *Journal of Teacher Education and Research*, Vol-1, No. 1.
6. Singh, Yashwant (2010); *Creative Student-Teachers' Values, Risk Taking Behaviour and Attitude Towards Westernization*, Ph.D. Edu., M J P Rohilkhand University, Bareilly.
7. Wallach, M.A. and Kogan (1965), N.; *Mode of Thinking in Young Children: A Study of Creativity and Intelligence Destination*, N.Y.: Halt Winston, P-213.

# Violent Children: Craving for Parent's Support

Ms. Deepti Redhu<sup>#1</sup>, Ms. Asmita<sup>#2</sup>

<sup>#1</sup>Asst. Prof., M.H.D. College of Education for Women, Odhan, Sirsa, Haryana

<sup>#2</sup>Asst. Prof., S.L.I.E.T. (Deemed University), Longowal, Sangrur, Punjab

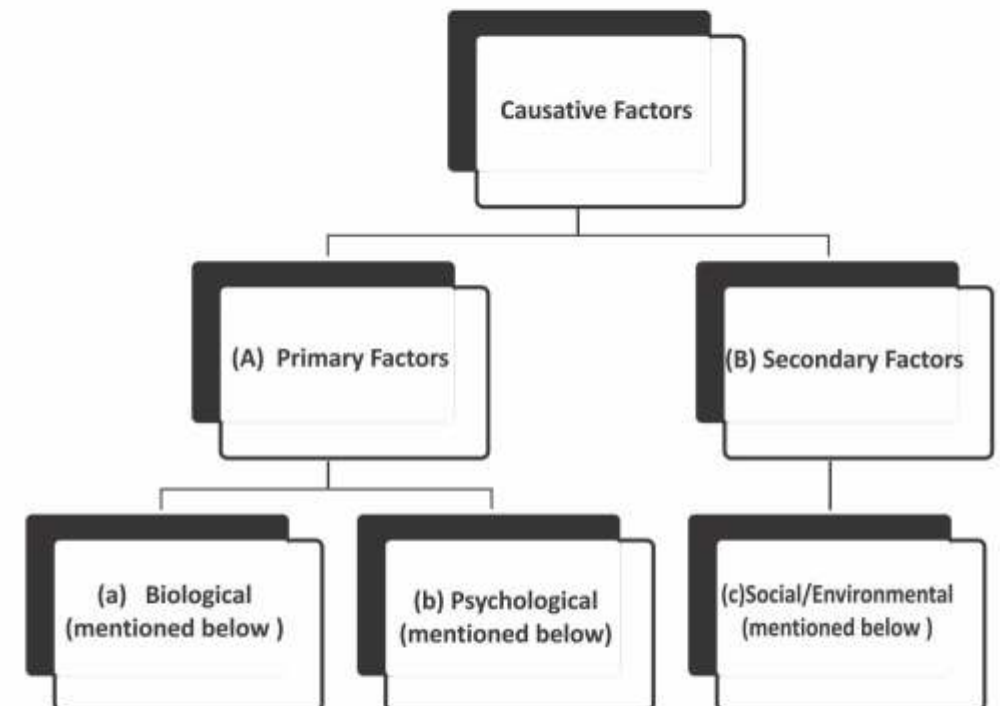
"Labelling refers to the act of assigning a child or a condition to a general category or to a particular position in the classification system" (Hobbes, 1975). By implication it is generally negative. In day to day life we often use labels for various purposes. Labels exert direct influence on our behaviour toward persons, objects, situations and issues. The label 'violent children' refers to those children who are aggressive or violent in their behaviour. Violence is the expression of physical force against one or more people, compelling action against one's will on pain of being hurt. Violent behaviour in a child at any age always needs to be taken seriously especially by parents, as mother's lap is the first cradle and discipline generator school of the child. Violence in children includes a range of behaviour:

- Bullying
- Threat
- Hitting
- Kicking
- Spitting
- Biting
- Pushing
- Throwing objects
- Destroying public or personal property
- Harm to animals
- Armed assault.

**Warning Signs of Violent Behaviour in Children:** Children who unknowingly involves and who knowingly trying to enter and involve in violence, shows under mentioned symptoms: as it's brooding time and have hammer on hot iron moment for parents.

- Intense anger
- Frequent loss of temper or blow-ups
- Extreme irritability
- Extreme impulsiveness
- Becoming easily frustrated

**Root Causes of violent behaviour:** Violent behaviour is the result of various factors interacting with each other. It is the end product of multiple causes. According to the American Academy of Child and Adolescent Psychiatry (AACAP), "Numerous research studies have concluded that a complex interaction and combination of factors leads to an increased risk of violent behaviour in children and adolescents." There can be a number of underlying factors that cause violent behaviour in children, which can mainly be divided into two categories:



- (a1) Inheritance / Genetics
- (a2) Constitution defects
- (b1) low self esteem
- (b2) limited communication
- (b3) less problem solving skills
- (b4) stress and frustration
- (b5) emotional problems
- (c1) abuse
- (c2) spending time with peers who are aggressive
- (c3) lack of good parenting
- (c4) exposure to violence in the home or community
- (c5) literature and mass media

- (c6) lack of creative school environment  
All causes can equally be responsible, but among above mentioned few are elaborated as under:

**INHERITANCE/GENETICS AND ENVIRONMENT:** Stephen Scott, a child and adolescent psychologist writing in the "British Medical Journal," conducted a thorough review of the research on childhood conduct disorder. He found that children of antisocial parents are more likely to develop conduct disorder, even if they are raised in an adoptive home. This suggests a hereditary, or genetic, cause of youth violence. At the same time, the risk of developing conduct disorder is even higher among these children if they are raised in an unfavourable family situation, suggesting that environmental factors are also at work in causing violent behaviour in children

**CONSTITUTIONAL DEFECTS:** Constitutional defects are related to a person's physical or mental state like inborn mental deficiency, brain injuries, endocrine imbalances, deafness, dumbness and organic psychoses etc. These defects as well as physical deformities may give rise to inferiority complex which ultimately leads to violent behaviour.

**POOR PARENTING \ FAMILY:** Family or parents have great influence on every child as the process of socialisation begins from here. So, various aspects of parenting may contribute to violent behaviour in children as, lack of proper care; guidance and supervision; harsh discipline; parental disharmony; lack of warmth in relation; rejection of the child; and limited involvement in the child's activities, in such conditions children start having pleasure and way to catch attention of parents through violent behaviour .

**EXPOSURE TO VIOLENCE AT HOME OR COMMUNITY:** Children who are exposed to violence at home or in community undergo lasting physical, mental, and emotional harm, and are more likely to engage in violence themselves.

**INFLUENCE OF PEER GROUP:** Peer group means a group of people of approximately the same age and status. Such groups are made up of the contemporaries of the child, his/her associates in school, in playground and on street. He/She learns from these children, facts and facets of culture, community and society. If peer group is not society favourer, the child can also be a victim of violent behaviour.

**STRESS AND FRUSTRATION:** Stress is increasing among students due to being single child, high expectations of being the best, by one's own self, by parents and by society too. Such stress results in frustration and they both can motivate to get rid of everything and march on the way of violence.

**SOCIAL FACTORS:** Various social and economic factors can create conditions that lead to violence among children. These factors may include stressful family situations such as single parenting, the break up of a marriage, parental unemployment and poverty etc.

**LITERATURE AND MASS MEDIA:** Some research has found a correlation between literary, media violence and real-world violence. Children who viewed more than one hour of television a day were more likely to commit violent acts comparatively other children. Children can be attracted by glamorous presentation of violent protagonist too lead to craving for recognition in a negative way.

**SCHOOL:** The uncongenial environment of school, partial and taunting behaviour of teachers, inflexibility of curriculum, paucity of adequate curricular activities, defective examination system and above all if the school is situated amidst a crowded market and near a cinema hall, then children are generally tempted to engage in violent acts.

**Nip the Evil of Violence in the Nest:** Everyone, who is around a child, has great responsibility to support and provide healthy and wealthy environment, but the parents have the greatest and pivotal role to play since womb to tomb. If more of the above mentioned and discussed signs one see, the greater the chance that the child is craving for help:

- **Set a peace corner at home:** Parents should set a place at home for experience and self realisation of peace, which will naturally lead to creativity and goodness in place of violence.
- **Positive attention:** Since children end to repeat behaviours that are reinforced, it is important for parents to provide the children with consistent, positive attention for behaviour that are acceptable.
- **Remove stimulants:** Remove children from the stimulant that triggers violent outbursts.
- **Be selective:** Be selective about the types of television programs children watch. Don't let them view shows that depict violence as humorous, or as a way to deal with problems.
- **Arrange physical activity hours:** Give your violent children opportunities to get rid of their excess energy by allowing them to play outside and to run around freely. Sign them up for classes, that encourage to channelize physical energy into more spiritual goals, such as karate, yoga etc
- **Control own temper:** Parents should teach non violence through their own behaviour while expressing anger in quiet and peaceful ways.

**Conclusion:** The first thing parents must do is to look at their problem/violent child realistically. It's always hard to hear negative feedback from teachers and other people about child. Parents should try to frame constructive criticism about the child in a different manner and maintain a continuous communication with the child about his or her behaviour and your expectations for him or her. Don't wait until it is too late, as it is said that stitch in time saves nine. Once Jawaharlal Nehru ji quoted, "Nation walks on the tiny feet of the children" so, parents should be always alert, close and conscious even be able to hear the mild craving of the child as they need a safe person like parents to work out his or her problems.

#### **REFERENCES: -**

1. *Gupta, Bela Dutta (1999): Contemporary Social Problems in India, Kolkatta: Tata Mc Graw Hill.*
2. *Mangal, S.K.(2007): Educating Exceptional Children: An Introduction to Special Education, New Delhi: Prentice Hall of India.*
3. *Panda, K.C.(2006): Education of Exceptional Children, New Delhi: Vikas Publishing House.*
4. *Water, E and Duffy K.G. (1999): Psychology for Living: Adjustment, Growth and Behaviour Today. New Jersey: Prentice Hall.*

## **Empowerment of Women : Through Education**

**Dr. Anita Singh<sup>#1</sup>, Dr. Lata Kumar<sup>#2</sup>**

<sup>#1</sup>*Sr. Lect.-History K.M. Govt. Girls P.G. College, Badalpur*

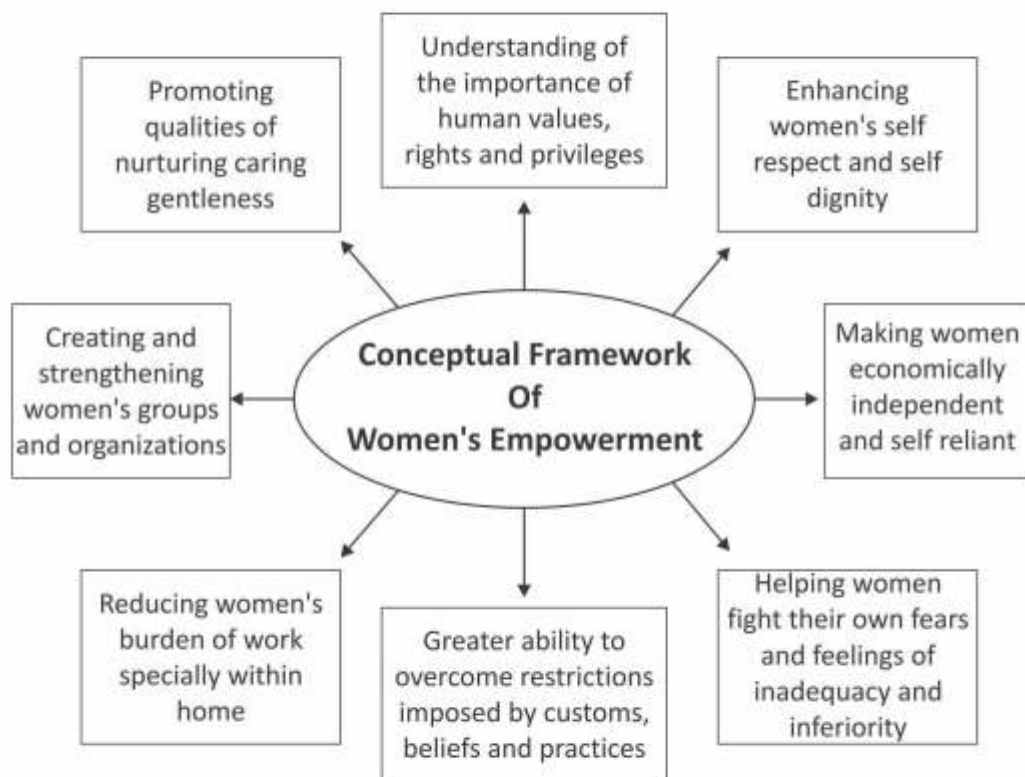
<sup>#2</sup>*Reader-Sociology S.M.P. Govt. Girls P.G. College, Meerut*

The strength of the family and the future of the world lie in women. They Only can build the future generation of the nation, with good moral and ethical value with their multiple roles as a mother, sister friend wife, wage earner etc. The importance of women is further reflected in the quoting from a UNFPA report the state of the world population 1992 the newsletter of Bernard van veer foundation which says that there can be no sustainable development without development for women, because it is women who constitute most for the development of children. Women have and will lead us in our search for a world free of violence and war. Women have led the peace and ecology movements in many parts of the world. Historically and even today women take care of the basic need of society like food fodder and fuel; they have had to move in tune with their own nature. They have also been creating and nurturing. Despite the fact that woman constitute the most elegant resource of a society and is the dynamic source of power. She is living in a state of neglect and exploitation. The National perspective plan for women 1988- 2000 A.D highlights the pathetic profile of women in India. There is continued inequality and vulnerability of women in all sectors-economic, social, political, education, health care, nutrition and legal. As women are oppressed in all spheres of life they need to be empowered in all walks of life.

Empowerment of women is a critical issues that s being discussed all over the world. This concept has roots in the women's movement throughout the world and particularly by the third world feminist. In India it is the sixth five year plan which can be taken as the landmark for the cause of women. It is here that the concept of women and development was introduced for the 1<sup>st</sup> time. The term empowerment has the most conspicuous feature containing the word 'power' which means control over material assets intellectual resources and ideology. It has different meanings in different socio cultural and political context and does not cover easily all its aspects. The researchers, activists' development planners, policy makers, international agencies and others attempted to give meaning to the term empowerment. It represent a wide range of concepts and describe a proliferation of outcome: self strength, self control, self power, self reliance, own choice, life of dignity in accordance with one's values, capable of fighting for one's rights, independence, own decision making, being free, awakening and capability which are embedded in

local values and belief systems.

The process of challenging existing power relations and of gaining greater control over the sources of power may be termed as empowerment. Pillai quoted empowerment as an active, multidimensional process which enables women to realize their full identity and powers in all spheres of life. Power is not a commodity to be trans-located, nor can it be given as alms. Power has to be acquired and once acquired, it needs to be exercised, sustained and preserved. Bhasin explained the women's empowerment comprehensively and elaborated its meaning in different dimensions as shown in following diagrams:



Moreover, it can be said that empowerment is a process of awareness and capacity building leading to greater participation, to greater decision making and control, and to transformation action. Women's development can be viewed in terms of five hierarchical levels of equality.

**Control** - Ultimate level, gender equality women able to make decisions over their lives and lives of their children play active role in developmental process

**Participation** - Organizing them and working collectively for taking decisions alongside men equally.

**Conscientisation** - Appropriate action to fill up gender gaps, recognition of problem from inherent structural and institutional discrimination.

**Access** - Involves equality of access to resources such as educational opportunities, land and credit.

**Welfare** - Addresses the basic needs of women, women are merely passive beneficiaries of welfare benefits.

In this perspective the empowered women can be defined as women who use their talents to live fulfilling lives. They maintain their strength in the presence of pressure of family religion and work and they contribute towards the empowerment of all women. They maintain equal mindedness. They do not aim at being superior to men. They respond as equals and cooperate in order to work toward the common goal. Empowered women define their attitude, values and behavior in relation to their own real interests.

Now the question arises how the vicious circle of gender discrimination and gender bias can be broken. It is argued that education of women is the only panacea of all these social economic and cultural problems related to the women. Education is always looked upon as a gateway enabling women to be equipped for the world of work, to become useful citizens and for personal advancement. It is only education which provides meaningful skills which enhance women's labor market capabilities and allow them to claim benefits from the development process. Only an educated woman can resist age old social prejudice and beliefs, child marriage, purdah and biases against the women which are detrimental to their development. Educated women can fulfill their roles as wives mothers and daughters in a better way. In fact, promoting women's education would have a multiplier effect because educated women would further educate women folk of their families, neighborhood and the society. Elementary education empowers women by providing information and confidence while higher education emboldens them so that they are confident about entering any field or profession not previously open to women. Education increases the ability of women to access more resources and services and enables them to become better informed and awarded citizens to challenge those who hold power and authority. Thus educating women would result in improved productivity, income and economic development.

The role of education in empowerment is not only learning reading and writing but includes raising awareness, critical analysis of various structures and acquiring knowledge for empowerment at all levels. Empowerment of women through education will develop.

- Self esteem and self confidence of women.

- A position image of women by recognizing their contribution to the society polity and economy.
- Ability to think critically.
- Decision making abilities and action through collective process.
- Choices in areas like education, employment process.
- Equal participation in development process.
- Knowledge and skill for economic independence.

Access to legal literacy and information relating to their rights.

National literacy mission through the total literacy campaigns has played a key role in raising awareness on issues of gender equality as have the women's development programme, "Mahila Samakhya" and several other programmes. The national perspective plan for women was drawn up in 1988 as an important strategy to change social attitude.

The UGC has introduced extension approach in the university system-1-to extend educational opportunities to those who have not received education in institutions of higher learning. Important agencies involved in extension programme are the department of social welfare, NAEP, the Indian red cross society, Bhartiya Grameen Mahila Sangh, Harijan Sevak Sangh and Adult education institute of Jamia Millia Islamia.

Some of the centrally sponsored ongoing programmes for women are ----

1. Non formal education for women and girls with the aim of strengthening family life education, in general, and preserving maternal and child health care, in particular
2. Functional literacy for adult women which is aimed at imparting literacy skills to rural and urban women.

The implementation of the programme of action enunciated in NPE-1986 has helped to increase female literacy. Female literacy has raised from 7.93% in 1951 to 39.29% in 1991 i.e. an increase of 31 percentage point. The corresponding change in male literacy is from 25% to 64% i.e. an increase of 39 percentages. A comparison of 1991 and 2001 censuses figure shows that the gap between male and female literacy rate has decreased from 24.84% points in 1991 to 21.79% points in 2001. The decline in number of illiterate population is as large as 31.96% million during 1991-2001. The decline among male was 21.45 million and 10.51 million among female.

#### Gap between male and female literacy rate:

	2001	1991	
Literacy men	75.85%	64.13%	11.72%
Literacy female	54.16%	39.39%	14.87%
Gap between male and female	21.69%	24.84%	

Literacy rates for the decade ending 2001 shows encouraging trends. It is imperative therefore to design strategic policies and programme for promoting literacy which is pre requesting for women's equality and empowerment and their will being

To achieve the goal of female education, the following strategies need to be adopted---

- 1- To bring about an attitudinal change in the society towards girls and their education.
- 2- Creating community awareness for girls education at all levels.
- 3- To provide helpline services for women, policies should be adopted to improve the agriculture and rural livelihood. Thus reducing workload of the poor and in turn improving their access to the schools and retention in the schools.
- 4- Strengthening adult literacy programme.
- 5- Organizing career campaign in the colleges to make the girls aware about the career opportunities.
- 6- Promotion of self help, group activities among parents will go a long way in solving the problems of female dropouts

Education for empowerment would not only result in individual empowerment but would also bring about a change in society eliminating or reducing gender biases and discrimination. Thus education and the empowerment of women are both essential and indispensable for prosperous nation.

#### References:-

1. *Basin, k. (1992) Education for women's empowerment: some reflections adult educational development, march no 38.*
2. *Batliwala, S. (1995), The meaning of women's empowerment women's world, pp 23-34.*
3. *Vashistha K.C. and Malik, Sashi , Some strategic efforts towards the empowerment of women, University News, 40 (5), Feb 4-10 2002.*
4. *C. Jayanti, Empowering Women, Yojana, vol 45, June 2001.*
5. *Modi Anita, Empowerment of Women through education, IJSP, 2008, Indian journal of social perspective, New Delhi, vol-2, 2008.*

# Teacher Education: Past to Present

Jayotsna

Research Scholar, Faculty of Education, Banasthali University, Banasthali (Tonk )

Teacher education in India is as old of human civilization; hence it seems to be correct that the concept of informal teacher education must have been born in India during early ancient Indian period i.e. in 2500 B.C. During ancient period itself India had developed a very sound educational system and was well recognized as the world leader in the field of knowledge. Teaching has been one of the oldest and respected professions in the world. The role, functions, competence and preparation of teachers have undergone a dramatic change from time to time but the need for teachers has been imperative for all times. The changing times as well as the requirements of the society have necessitated changes in the ways of teacher preparation.

## Need of Teacher Education

Development in a country depends greatly on the quality of its teachers. There are some major concerns which call for an immediate action. A comprehensive, dynamic and responsive system of teacher education needs to be continually evolved keeping the overall scenario in view. The need for improved level of educational participation for overall progress should be recognized. College of teacher education should take a variety of initiative to transform the nature and function of education- both formal as well as non-formal. Universal accessibility to quality education is considered essential for development. This can necessitate improvement in the system of teacher education so as to prepare quality teachers. Various commissions and committees appointed by the central and the state government in recent decades have emphasized the need for quality teacher education suited to the needs of the educational system. The secondary education commission(1953) observed that a major factor responsible for the educational reconstruction at the secondary stage is teacher's professional training. The education commission (1964-66) stressed that "In a world based on science and technology it is education that determiners the level of prosperity, welfare and security of the people" and that "A sound programme of professional education of teachers is essential for the qualitative improvement of education". The Programme of Action (POA, 1992) has emphasized teacher education as a continuous process, its Pre-service and In-service components being inseparable.

## Teacher Education in Pre-Independence India

### 1. Ancient period

The teacher must have passed through the recognized curriculum and have fulfilled all the duties of a *Brahmachari* before he was allowed to become a teacher. Teachers must seek knowledge for realization and were well-received and well respected. The teacher was sometimes assisted in his work by some of the older and abler pupils who acted as monitors. This monitorial system, which was a method of inducting pupils to the position of teachers, was the contribution of the ancient education system.

### 2. The Buddhist period

The monastic system which was an important feature of Buddhism. Teacher was to offer spiritual help and promote learning through religion among the disciples by teaching, by putting question to him, by exhortation, by instruction. The teachers employed other methods besides oral recitation such as exposition, debate, discussion, question-answer, use of stories and parables. In *Vihars* and Monastic schools, *Hetu-Vidya* or the inductive method was adopted and the intellect of the disciple was trained through it. The introduction of logic as one of the subjects helped in sharpening the intellect and oratory which was emphasized.

### 3. The Medieval period

The Mohammedan rulers in India founded schools (*Maktabs*), Colleges (*Madrassahs*) and libraries in their dominions. In the *maktab*, often attached to a mosque, the students received instruction in the Quran which they had to recite, and reading, writing and simple arithmetic was also taught. The medium of instruction was Persian but the study of Arabic was compulsory. In *Madarsahs*, the course included grammar, rhetoric, logic, theology, metaphysics, literature, jurisprudence and sciences. The teachers teaching in the *maktabs* were mostly *moulvis*.

### 4. British period

The Danish Missionaries established a normal school for the training of teachers at Serampur near Calcutta. The first normal school was started under the management and with the finances of the British government in Madras. Later, this normal school developed into the Presidency College. In 1847, Bombay started a normal school in the Elphinstone Institution and in 1849, Calcutta too had a normal school December 1823, gave same ideas for the improvement of the education of teachers. He suggested an increase in their allowance and different types of syllabi for Hindu and Muslim teachers. After 1945, a separate Education Department was established under the Central

Government. During 1937 to 1947, the number of training schools and colleges and the expenditure on them increased considerably. In 1947, teacher-training programme was quite comprehensive in India. There were about 4 lakh teachers working in the primary schools. 64% of them were trained. At middle stage 59% of the total 72,000 teachers were trained. At the secondary level, out of total 88,000 teachers, hardly 51% were trained. There were about 649 training colleges. Number of secondary level training colleges was 42 only with an intake capacity of 3000 teacher. These figure show that some growth had already taken place till 1947 but over all conditions still needed improvement as the needs of the country were fast

### Post-Independence Period

Indian educational system including that of teacher education saw greater reflection of national aspirations and needs of the people during the post-independence period. Various commissions and committees appointed by the central and the state government in post-independence decades have emphasized the need for quality teacher education suited to the needs of the educational system. The first step in this direction was setting up of the University Education Commission (1948), which made valuable suggestions regarding pre-service and in-service education of teachers and linking the programme of teacher preparation with the university system. Subsequently, the Secondary Education Commission (1953) appointed to examine the conditions of school education made specific suggestions about the preparation of teachers. The Committee on Higher Education for Rural Areas, (1954) and that on Women's Education (1959) also made valuable suggestions for teacher education in their respective areas, but they did not attract national attention because of their limited scope. The Review Committee on Education (1960) made major recommendations about post-graduate studies in education and research, education of administrators and qualifications of teacher educators. Based on the recommendations of the Education Commission (1964-66), the National Policy on Education (1968) was formulated. The working of National Council of Educational Research and Training (NCERT) was also reviewed. The NCERT and its Regional Colleges of education were expected to play a greater role in the education of teachers. The non-statutory National Council for Teacher Education (NCTE) was set up in 1974 by a resolution of the Government of India and was located in the NCERT. It brought out its curriculum framework in 1978. During this period, the National Commission on Teachers (1983) studied in depth the problems of teacher education and the status of teachers in society. NPE (1986) was followed by a Programme of Action (1986), which provided details about the

needed transformation of policy into action. Its emphasis was on the enrichment of both in-service and the pre-service teacher education programmes, computer education and new as well as alternative models of teacher preparation.

### Present Scenario of Teacher Education

The Ministry of Human Resources and Development has reformed the teacher education in the following ways:-

1. Modification in Centre-State financial sharing pattern, from the existing 100% central assistance to sharing pattern in the ratio of 75:25 for all States/UTs (90:10 for North East Region States, including Sikkim)
2. Continuation of support to SCERTs/SIEs
  - a. Strengthening and re-structuring of SCERTs,
  - b. Training for Educational Administrators, including Head Teachers.
  - c. Orientation / Induction Training to Teacher Educators
3. Continuation of support to CTEs and establishment of new CTEs
4. Continuation of support to IASEs and establishment of new IASEs
5. Continuation of support to and restructuring of DIETs;
6. Establishment of Block Institutes of Teacher Education (BITEs) for augmenting Teacher Education capacity in SC/ST and minority concentration areas
7. Professional Development of Teacher Educators
8. Technology in Teacher Education
9. Public-Private Partnership (PPP) in teacher education
10. Monitoring mechanism
11. Based on the study of demand and supply of teachers and teacher educators of the various states, the NCTE has decided not to receive further applications for several teacher education courses in respect of 13 States. This has led to substantial rationalisation in the demand-supply situation across States;
12. The Regulations for grant of recognition and norms and standards for various teacher education courses were revised and notified on 31st August, 2009. The applications for grant of recognition are now

processed strictly in chronological order. The new Regulations make the system more transparent, expedient and time bound, with reduction in discretionary powers of the Regional Committees;

13. e-Governance system has been introduced by way of providing online facility for furnishing of applications and online payment of fees. MIS has been developed to streamline the process of recognition;
14. The National Curriculum Framework for Teacher Education has been developed keeping in view NCF, 2005;
15. Academic support is being provided through preparation of Manual for the teacher education institutions and publication and dissemination of Thematic Papers on Teacher Education.
16. Various quality control mechanisms have been developed, including re- composition of the Visiting Teams, periodical monitoring of the teacher education institutions and de-recognition of institutions not conforming to the Norms and Standards prescribed by the NCTE.
17. Various seminars and workshops conducted by the educational boards(CBSE/ICSE/ISC) in India to teach innovative teaching skills to teachers.

#### Conclusion

Teacher education programmes must be very affective profession in this world and teacher have a place of divine in India because teacher is the creator of nation. Teacher education programmes has been changed in time to time according to the scenario of our country. Innovation is the key to improvement. In current time the obsolete ideologies and methods of teaching do not work. Time is constantly changing and the only way to keep up with it is to keep growing and evolving and this is also applicable to teachers.

#### References:-

1. [www.ncte-india.org](http://www.ncte-india.org)
2. [http://www.teindia.nic.in/reforming\\_TE.aspx](http://www.teindia.nic.in/reforming_TE.aspx)
3. [http://www.teachersity.org/resource.php?cat\\_id=8&content\\_id=85](http://www.teachersity.org/resource.php?cat_id=8&content_id=85)
4. [www.mu.ac.in](http://www.mu.ac.in)
5. [www.teachersity.org](http://www.teachersity.org)

## Voices Of The 'voiceless' : Class / Caste In Karnad's Tale – Danda

**Dr. Anshoo Sharma**

Lecturer in English, S.K. Govt. P.G. College, Sikar

".... In the last 150-200 years if you think of playwrighting as a profession in which someone sits down and writes, it is the art form that has attracted the least number of people in the country."

**Girish Karnad**

Indian theatre in English is perhaps a genre that can not claim to be flourishing as an art medium, though it has come a long way with eminent playwrights like Tendulkar, Karnad and Dattani pitching in their best.

Karnad in his essay "In search of a theatre" laments the absence of a theatrical tradition and elucidates how myth was adapted by him to the western form which further facilitated exploring innermost human psyche without resorting to loud confessional scenes (Jain, 1). His experimentation continues in the arena of narrative and dramatic structures using dream sequences, masks pre-colonial history as his thematic thrust areas.

The most important contribution of playwrights like Karnad and Tendulkar is in the field of translation. As has been clearly established the dominant language conducive to performance is either Hindi or other major regional languages which have a perceptible performative history. Girish Karnad's contribution to contemporary Indian drama has been prolific not in the sense of volume but in as far as variety is concerned. From ancient myths, timeless traditional folktales, engagement with pre-colonial and colonial history to certain significant aspects of contemporary life – his plays encompass all. Along with, perhaps being the only bilingual playwright he has been successful in deciphering the various complexities of the present times through the lens of the past. Though he does not overtly claim a conscious effort to portray contemporary political issues through allegorical references yet one can trace a certain repetitive pattern in his history plays like Tughlaq, Tale-Danda and also The Dreams of Tipu Sultan for that matter.

Here, the focus is specifically on Tale-Danda with its wide ranging issues from belonging and alienation, power and inequality to sacrifice and liberty. It is by deconstructing the socio-political discourse that the paradoxes of contemporary reality are foregrounded via history. An attempt to subvert the existing power constructs are fully explored but whether they succeed or not is debatable.

Broadly speaking there are three categories existing at the periphery continuously struggling to make forays into the centre. First and foremost is the theme of caste hierarchy, secondly the women who are mostly treated with levity and thirdly revolt against patriarchal hegemony. The fact that Karnad wrote this play in 1989 at the height of Mandal Masjid strife is well known and for the exposition of the whole concept he goes back to 1168 AD when a strong religious movement in Karnataka under the leadership of Basavanna – the poet saint took a new turn against caste hierarchies. The casteless sect or Lingayats led by Basavanna numbered an astounding 196000 in the city of Kalyan. Once initiated as a 'Sharana' a person was no longer a brahmin or a cobbler. The community was a worshipper of Shiva and spread the message of God in the language of the common people. They condemned idolatry, all inhuman traditions and believed in gender and social equality. They propagated hard work and peaceful co-existence. The singular quality of Basavanna that shines forth as their leader is his high accountability whether it is bearing the responsibility of a state treasurer or carrying forth his movement in an ethical, non-violent manner. While returning the treasury keys he claims "I work in the treasury not for the King's pleasure but because that wealth belongs to the people" (25). The same commitment for the common man resounds when he reiterates his anguish over man fighting against man for a mere "structure of brick and mortar" (36), which according to him amounts to a colossal blunder. The strife between the Jains and Sharanas over a temple is analogous to the contemporary times when the Babri Masjid was actually demolished by the Hindu fundamentalists. This renders starkly naked the fractured religious politics that actually exists in our times.

Karnad's effort to deconstruct the caste/class equation exposes two very important issues. According to Bijjala the King of Kalyan "One's caste is like the skin on one's body" (21). He says :

His Majesty King Bijjala is a barber by caste. For ten generations my forefathers ravaged the land as robber barons. For another five they ruled as the trusted feudatories of the Emperor himself. They married into every royal family in sight. Bribed generations of Brahmins with millions of cows. All this so they could have the caste of Kshatriyas branded on their foreheads. And yet you ask the most innocent child in my Empire ; what is Bijjala, son of Kalachurya Permadi, by caste? And the instant reply will be : a barber ! (21)

Ironically the term 'robber baron' has been used by a Brahmin woman Bhagirathi in the very beginning of the play for the King and his progeny. Thus caste consciousness is something that is deeply embedded within the psyche of both the upper castes and the untouchables. To bridge that divide is the real challenge. The Vedic concept of change of caste according to change in one's occupation is non-existent. Even in the times of Mahabharata we have the tragic example of Karna who despite his valour and all markings of a true Kshatriya can never wipe away the stigma of being a sud putra by birth. Caste is something that one is born with – born to.

Basavanna on the other hand diatribes this concept and asserts that instead of caste or creed on the strength of 'physical parentage' the right parameter to judge a human being should be his 'knowledge' (27). Religion or caste should not be the divisive force, the ultimate aim was to look upon all as 'human beings'. Bijjala also acknowledges this when he confesses :

In all my sixty-two years, the only people who have looked me in the eye without a reference to my lowly birth lurking deep in their eyes are the Sharanas : Basavanna and his men. They treat me as – as what ? – (Almost with a sense of wonder) as a human being. (21)

But 'this journey from caste-origins to becoming human is a long one' (Jain, 4), and the inherent dichotomy that lies within this movement is also apparent to Bijjala when he cautions Basavanna :

Birth, caste and creed mean nothing to you. But don't you delude yourself about your companions, friend. If you really free them from then network of brothers, sisters, sons, daughters, uncles and second cousins and let them loose in a casteless society, they will merely sputter about like a pile of fish on the sands and die! (27)

This breach is re-inscribed in Act II with the impending marriage between the daughter of a Brahmin Sharana Madhuvarsa and the son of an untouchable Sharana Haralayya which imperils the entire movement with dire consequences. Positioning this marriage right in the centre of the play is a vehicle to highlight the multiple strands culminating towards the final confrontation which every society has to face in its search for equality.

Firstly it makes realization dawn upon Basavanna that the movement initiated by him is not yet "ready for the kind of revolution this wedding is". He confesses his apprehension about the future of the young boy and girl as :

Until now it was only a matter of theoretical speculation. But this – this is real. The orthodox will see this mingling of castes as a blow at the very roots of the Varnashrama dharma. Bigotry has not faced such a challenge in two thousand years. I need hardly describe what venom

will gush out, what hatred will erupt once the news spreads.(45)

Karnad cuts out Basavanna as a tragic figure when realization strikes him that what he has stood for all these years, his whole being working towards social and gender equality is just mere theory – a theoretical speculation was all that it was. Today he is worried about reality – reality of death destruction and bloodshed which threatens annihilation of his dream of an egalitarian society.

This connects to the second important aspect that of the integrating of communal forces in form of the triband consisting of the royal priest Damodar Bhatta, the crafty minister Manchanna and the usurper prince Sovideva. But Sovideva is a mere pawn in their hands and they resort to intrigues in order to maintain their hegemonic privileged positions. It is reminiscent of the hornet's nest that had been raised in the 1980's, when the implementation of the quota system in favour of lower castes put forth by the Mandal commission was finally implemented by the National front coalition government of V.P. Singh. Thus contrary to expectations the democratic freedom propagated by Basavanna acts as a disintegrating factor while 'greed, fear or belief call forth integrating motives' (Jain, 5).

On the other hand a major consideration regarding the two sides actually forging the alliance is that whether this crossing over is indicative of a genuine effort to form an egalitarian society – all cleavages and polarities unified or is it an egotistic 'sacrifice' to propagate the cause of the movement? Haralayya's wife Kalayni's grandiose claim that it is a wedding between two Sharanas – has a hollow ring to it. Madhuvarsa too wishes to carry a point home to vindicate his decision as a Sharana and gain a personal victory even if it means 'sacrificing' his daughter in the process. While 'sacrifice' to Madhuvarsa means one thing, for Haralayya it signifies an experience entirely different – that of the truly marginalized. He says :

The word 'sacrifice' strikes terror in me. Too long have my people sacrificed our women to the greed of the upper castes, our sons to their cosmic theories of rebirth. No more sacrifices, please. (46)

So for women there is marginalization within marginalization if they belong to the lower castes. Their voices are stifled under the patriarchal set up. But this subjugation of women exists in the upper castes as well. In the play broadly speaking there are two ranks of women, one belonging to the royal class other being the Sharanas. The women figures come across as loving sensitive, intelligent but they are not very vocal. Rambhavati herself a queen belonging to the Kshatriya clan plays second fiddle to her husband – King

Bijjala. Always there to support him during his difficult times, through his anxieties and concerns yet she is at the receiving end of all the invectives he piles on her especially in regard to their son Sovideva. "Where is that son of a whore" (17), or "this rat has to crawl out of your womb" (20), "You with your pampering and swaddling, you have turned him into a royal eunuch" (17), and so on so forth.

All these are instances of her inferior position and need no further exposition. The other woman belonging to this class is Sovideva's wife who is an absent character commanding just one single reference in the whole play that too derogatively as 'a frigid bitch'. Thus women are relegated to the position of a commodity, valued according to the level of utility they offer to the men. No more, no less.

The Sharanas too cannot claim gender equality though equality at all levels and forms is what their movement is all about. Except perhaps Basavanna who treats his wife with respect, there is no other example within sight. For Madhuvarsa – a Brahmin turned Sharana, to put it in Gangambika's words – 'women and cattle are all the same!'. He threatens his wife Lalita with thrashing when she speaks up for her daughter Kalavati against marriage to a cobbler turned Sharana's son – Sheelvanta. According to Kate Millett "relations between the sexes are not solely matters of personal choice," seems to hold true in this instance (Eagleton, 135). But Lalita's is perhaps the only voice of dissent in the whole play :

I have been silent all along. I can't be any longer... It's my child's life! She gets a splitting headache if she so much as smells burning camphor. She is so ... so ... tender. (48)

She further does not hesitate to expose her husband's inconsistent, shifting fidelities from one faith to another but all said and done her objections are overruled leading to marriage between Sheelvanta and Kalavati which in turn results in the catastrophic brutal killings of both Madhuvarsa and Haralayya.

Finally I would like to draw attention to the dissent against patriarchal hegemony vis-a-vis father/son and teacher/disciple relationship which run parallel. Sovideva has been depicted as a negative character but if we trace the roots we find that it is partly the fault of his upbringing. On one hand is the mother who is overly protective of him on the other is Bijjala who spares not a single opportunity to make him feel small. 'Accursed fruit', 'royal eunuch', 'nincompoop', 'rat', 'imbecile', 'cadaver' are the words he uses to address Sovideva and never hesitates to give him a physical lashing as well. I am almost tempted to say it is the case of reversed oedipal complex

syndrome where the father is jealous of the excessive attention showered by the mother on her son. Oedipal overtones are very much there as Sovideva forever berates his mother for supporting his father unconditionally. As expected the final culmination is a coup where the King is dethroned and Sovideva takes charge amidst 'terror and bloodshed'.

Jagdeva repeats a similar story with negligence of his biological father, unheeding even at the time when he is nearing death. But a stronger filial love-hate equation can be detected between Jagdeva and Basavanna. Jagdeva being the strongest and the most vocal Sharana naturally expects to replace Basavanna at the right time. During the 'treasury' episode he gathers all forces to save the honour of Basavanna, but is it purely a self less service? Does it encompass the breadth of vision required for the success of the Lingayat movement or is there an underlying desire to be recognized for his efforts and to be honoured accordingly by the people and above all Basavanna himself?

This scion of the movement takes roots in the wrong direction which ultimately leads to his downfall. His divided self can be detected in his heart-rending appeal to Basavanna "You torment me till my heart screams murder. Then to be soothed back to sleep, who do I need but you?" (39).

Thus two sets of opponents one father and son other teacher and disciple, diametrically opposed remain so till the end. The climatic crescendo results in death of three and the fourth becomes cause of large scale decimation and destruction which in its wake renders mute the myriad voices of the margins.

#### References :-

1. Dharwadker, Aparna Bhargava. *Theatres of Independence*. New Delhi : Oxford University Press, 2006.
2. Eagleton, Mary. *Feminist Literary Criticism*. London : Longman, 1991.
3. Jain, Jasbir. "Two Authors in Search of an Audience : Girish Karnad and Mahesh Dattani". (Unpublished)
4. Karnad, Girish. *Collected Plays Vol. II*. New Delhi : Oxford University Press, 2005.
5. Satchidanandan, K. *Authors Speak*. New Delhi : Shahitya Academi, 2006.

## A FEMINIST READING OF BANKIM CHANDRA CHATTERJEE'S RAJMOHAN'S WIFE

Shweta Meena

Research Scholar, Dept. of English, University of Rajasthan, Jaipur.

Feminism as a concept as well as a movement has emerged as a reaction against the atrocities of patriarchy. Its aim is to relieve woman from the tyranny of ignorance, isolation and vulnerability and involve them in larger problems of society as a whole. Feminism has done many good things for women writers, but surely the most important has been the permission to say the unsaid, to encourage women to claim their full humanity which means acknowledging the shadows as well as the lights.

As the image of women throughout History, and in all civilizations has been damaged and distorted under the overpowering male domination, Sarah Grimke (1970) comments:

Man has subjugated women to his will, used her as a means to promote his selfish gratification, to minister to his sensual pleasure, to be instrumental in promoting his comfort, but never has he desired to elevate her to that rank she was created to fill. He has done all could do to debase and enslave her mind and now he looks triumphantly on the ruin he has wrought, and says the being he has thus deeply injured is his inferior.(Grimke 10)<sup>1</sup>

Simone De Beauvoir in her pioneering work *The Second Sex* (1974) seeks primary inquiries of modern feminism. In a critical venture where a woman tries to seek her identity, she tries to define herself by saying 'I am a woman'. The factual analysis suggests the basic asymmetry between the terms feminine and masculine. These terms represent social constructs patterns of sexuality and behavior imposed by cultural and social norms. Simone De Beauvoir states that men have always given a secondary place to woman. She, further, shows how woman is forced to behave in so-called feminine way by constant cultural conditioning :

Man defines woman not in herself but as relative to him. She is not regarded as an autonomous being....Man can think of himself without woman. She can not think of herself without man.(Beauvoir 102)<sup>2</sup>

Betty Friedan expressed the view that, like the east and the west, the twin worlds of masculine and the feminine would never meet. She challenges

woman's role inside her home, that she should find fulfillment only in domesticity and motherhood. She mentions :

For a woman as for man, the need for self fulfillment, autonomy, self-realization, independence, individuality, self-actualization is as important as sexual need, with as serious consequences, when it is thwarted. (Friedan 282)<sup>3</sup>

Toril Moi's *Sexual / Textual Politics* (1985) more or less corroborates the idea of binary opposition between the masculine and the feminine. Toril Moi defines feminism in relation to terms such as femininity, femaleness and femininity. She states, "In a general way, I see feminism as a political position, femaleness as a matter of biology or femininity as a set of culturally defined characteristics." (Moi 182)<sup>4</sup> At another place she says, "The words 'feminist' and 'feminism' are political labels indicating support for the aims of the new woman's movement which emerged in the late 1960's". (Moi 204)<sup>5</sup> In *Toward a Feminist Poetics* (1979) Elaine Showalter, an American feminist, traces the history of women's literature, suggesting that it can be divided into three phases : The Feminine phase (1840-1880), The Feminist phase (1880-1920), The Female phase (1920- Present). Showalter rejects both imitation and protest, advocates feminist criticism from a cultural perspective in the current Female phase, rather than from perspectives that traditionally come from an androcentric perspective. In her essay *Feminist Criticism in the Wilderness* (1981), Showalter says, "A cultural theory acknowledges that there are important differences between women as writers: class, race, nationality, and history are literary determinants as significant as gender. Nonetheless, women's culture forms a collective experience within the cultural whole, an experience that binds women writers to each other over time and space." (Showalter 260)<sup>6</sup> Feminist literary criticism aims at exposing the misrepresentation and marginalization of woman's experiences as important as man's and as legitimate and valid subject of literature as man's experiences have been.

*Rajmohan's Wife* (1864), the debut novel of Bankim Chandra Chatterjee, is the first published novel in English by an Indian. It depicts the story of the trials and tribulations of the beautiful and heroic Matangini, the female protagonist, as she selflessly rebels against her cruel and brutish husband, Rajmohan, to save her lover, Madhav. Caught between the forces of temptation, transgression and the conventional image of the obedient and chaste Indian wife, Matangini maps the birth of modern Indian woman who is struggling for selfhood and dignity.

According to Classic Realism, which was the dominant fictional mode of the time, attempted to convey in concrete and specific details the

complex relationship between individuals and the society by whose code they were expected to live. The resultant tension could be studied in sharper contours when the protagonist's life was restricted within a narrow space with very few options regarding mobility, economic self-sufficiency or vocation – in other words, when the protagonist was a woman. In most cultures, social conformity has always been more obligatory for a woman than for a man, her identity generally constructed in terms of her relationship with men, as daughter, wife, mother. In this novel, the protagonist, Matangini's identity is irrevocably connected to her marital status.

The novel is rich in details in the depiction of interiors and the quotidian routine of women's lives. They are supposed to engage in their works every time. Their ambitions are suppressed under the strict male domination. In other terms, the suffering of women is central to *Rajmohan's Wife*. They don't have the freedom to continue their amusements in the presence of their male counterparts. In the chapter 14, when the slanting rays of the later afternoon sun fall at regular intervals through the balcony rails in an upstairs veranda where women sit around dressing each others' hair or painting their feet with 'red lac', discussing the different ways of braiding hair in Radhaganj and Calcutta. But this relaxed scene is shattered by the unexpected arrivals of the masters of the houses, abruptly silencing the women into awe and making them scurry and hide from the authoritarian male gaze. In positions of absolute power, the masters of the house, depending on their mood, can order instant obedience, punish defiance or confer favour. In the novel, the equations among the women across the classes have a more nuanced texture – of mutual bonding, subtle rivalry, friendship, sympathy. Suki's mother and Karuna, domestic servants both, become within the limited frame of the brief novel, as concretely realized as the landlord's wives.

Matangini suffers a lot at the hands of Rajmohan. His cruelty does not end in forbidding his wife's all freedom, she can not even go out of the house to fetch water, a common enough work done by women in those days. Matangini endures all kinds of sufferings but when she overhears the nefarious plan of robbery in Madhav's house by Rajmohan and his dacoits friends, she takes upon herself the most hazardous and perilous midnight adventure to save Madhav's life. She goes against the conventions, breaks all the bondages and emerges like a new woman. The concept of new woman challenges the traditional notions of 'Angel in the house' and 'sexually voracious image'. The new woman is essentially a woman of awareness and consciousness of her low position in the family and society. She is new in the dimension of time by being a rebel against the general current of the

patriarchal society and in exploring her true potential. Matangini's travails as a middle class woman with high hopes for her individuality sets her apart from others. Matangini typifies the new Indian woman seeking her release from the cruelties and tyrannies of a medieval past.

Matangini's solitary journey in the dark night through forest, water, storm and lightning shows her courage who dares to venture out in the dark night at the cost of her life. Though she thinks of the appalling dangers of the journey : what would happen if the band of desperate robbers were stationed somewhere in the forest and if among these robbers she should meet her husband, who would understand her, even what would Madhav think ! All these questions rose before her mind but she gathers all her energy and summons her resolution. She challenges the image of woman as 'Angel in the house' and like Nora, the protagonist of Henrik Ibsen's *A Doll's House* who leaves her home in search of her identity, crosses the threshold to save the life of Madhav. Matangini shows highly alertness and cleverness when she lets her long hair loose in the water of the pond around her fair face to avoid detection in the moonlight. In this context, Simone De Beauvoir's words can be quoted :

Much more interesting are the insurgent females who have challenges this unjust society, a literature of protest can engender sincere and powerful works.(Beauvoir, *The Second Sex* 18)

After saving Madhav from the robbery, when Matangini returns home and finds that her husband is ready to kill her, can put an end of her life at any time, she confesses her love for Madhav. In such a crucial time, the confession of her love depicts that woman should have the right to love the person, to whomsoever she wants. This shows Matangini as a woman of uncommon vitality who refused to be subjugated either by her brutal husband or by the expectations of society. Even in the captivity of Mathur Ghose, she does not surrender herself before him and introduces her boldness. When Mathur determines to gratify at once both revenge and lust, she says :

'Never !' said Matangini, concentrating the energy of twenty *men* in her look, 'Never yours. Look here', and she placed herself immediately in front of him 'Look ! I am a full grown woman, and at least *your* equal in brute force. Will you call in allies ?' Mathur Ghose stood bewildered at this wonderful challenge.(Chatterjee 119)<sup>7</sup>

Matangini can not be returned to the conjugal space because of an emotionally sanctioned but socially unforgivable step which was taken by her.

This depicts the dark side of the patriarchal society. In such society, whenever a woman tries to assert her subjectivity then her love is thwarted, her aspirations are crushed and her life is threatened. Matangini's young death indicates the refusal towards the radical changes made by the woman in a patriarchal society. But Matangini's dream of creating a new society, her struggle and sacrifice do leave a mark on the society. Besides Matangini, Tara, the wife of a powerful landlord Mathur, is superseded in her husband's affection by a younger and prettier wife also passes through such a condition in which she receives the inferiority complex, suppression and betrayal. Tara, who noticing her husband's restlessness, steals his keys when he is asleep, opens the forbidden rooms and rescues Madhav. Without Tara, Madhav and Matangini's secret of kidnapping can not be disclosed. Tara voices her inner conscience, suspects on her husband's activities and takes steps against him. Thus, she asserts her existence, individuality.

The novel typifies the rise of individualism and the liberation of the Indian women from the yoke of age - old submissiveness and self - annihilation. In the character of Matangini, one can find an early statement about the helplessness and claustrophobia of women in incompatible marriages that was going to be a recurrent concern of Indian fiction for many years to come. Matangini was only a forerunner of many more women characters of great, independent and revolutionary spirit to follow in the novels of his successors. The creation of a character like Matangini in the first Indian novel in English was certainly a good beginning for that class of writing to be followed in India.

### References:-

1. Grimke, Sarah M. *Letters on the Equality of the Sexes and the Condition of Women*. 1838. New York : Source Book Press, 1970. 10. Print.
2. Beauvoir, Simone De. *The Second Sex*. New York : Vintage Books, 1974. 102. Print.
3. Frieden, Betty. *The Feminine Mystique*. 1963. Harmondsworth: Penguin, 1971. 282. Print.
4. Moi, Toril. "Men against Patriarchy". *Gender and Theory*. Linda Kauffman, ed. Oxford : Basil Blackwell, 1990. 182. Print.
5. Moi, Toril. "Feminist Literary Criticism". *Modern literary Theory : A Comparative Introduction*. Ann Jefferson and David Rubey, eds. London : B.T. Batsford Ltd., 1968. 204. Print.
6. Showalter, Elaine, ed. *New Feminist Criticism : Essays on Women, Literature, and Theory*. New York : Pantheon Books, 1985. 260. Print.
7. Chatterjee, Bankim Chandra. *Rajmohan's Wife*. 1864. New Delhi : Rupa & Co., 2008. 119. Print.

# Preparing Effective Teachers Of English Language Learners Bridging Diversity By Bilingual Methodology

Dr. Aprajitha Sharma<sup>#1</sup>, Ms Raees Unnisa<sup>#2</sup>

<sup>#1</sup>Professor, Govt. Hamidia PG College,

<sup>#2</sup>Asst. Professor, The Bhopal School of Social Sciences, Bhopal.

Over the last few years we have been asking questions about the possibility of developing a coherent framework for thinking about language and pedagogy within the subjects of English and Modern Languages. These ideas about coherence in approaches to language education are also discussed by Brumfit (2001). This paper demonstrates this process of questioning. It is structured around the three components which we have identified as central to the development of a coherent framework. These components are diversity, dialogue and reflection. One of the most dramatic changes in the field of education has been the increase in the number of students whose first language is not English. A survey of the states' limited English proficient (LEP) students shows the extent of the growth in the population of English language learners (ELL).

**Bilingual Programs for improved language proficiency:** Learning a second language could be made easy if there is little difference between the language acquired at home or in the environment and the language learned in school. There are many studies which state that the learning of a second language does not involve transfer of structures from the first language, but such learning involves creative construction (Dulay & Burt 1974). This means that the process of acquiring a second language is controlled primarily by universal cognitive principles that determine how a learner would approach the language regardless of previous knowledge.

Students for whom English is a second or additional language (or dialect) are a growing segment of student population. Over the past ten years, the number of students identified as needing ESL services in world-wide has more than tripled. Lower Mainland school districts have been especially affected, and educators in those districts have had to develop skills and processes to address the growing need. With continuing growth in the numbers of ESL student's province wide, however, the need to provide appropriate ESL services is becoming an issue for teachers all over. This paper, draws upon recent research and the advice of English educators with

experience in this field, is intended to provide help for those who have become involved in working with ESL students in their classrooms.

**The ESL Learner:** There are no typical ESL students. They come from many linguistic and cultural backgrounds and have had a wide variety of life experiences and attributes that can significantly enrich the life of the school and help enhance learning for all students. Not all require the same types of support:

Some are city-born, but enter school having had varying degrees of exposure to the language and cultural norms of the majority of English-speaking Canadians. They may need to complement their early childhood experiences and home languages with extensive ESL support, including a variety of cultural-bridging experiences, if they are to be successful in the English-speaking school system.

Some have immigrated to cities with their families after having received some formal education in their home region (in this case their rural areas where there is little or no provision of teaching in English). In some cases, they have learned English as a foreign language in school. Given appropriate ESL support, including cultural-bridging experiences, these students usually progress well in their new schools, particularly if their parents support their academic efforts and their evolving bilingualism.

Some are unaware of the changing trends in education. These students may have received little or no schooling. They may also have experienced the traumatic conditions caused by political, social, and economic upheaval. They have often left their education involuntarily, perhaps compelled to do so. In addition to ESL support, these students may need specialized counselling and literacy training in their home language(s).

Some that require ESL support also have special needs associated with mental challenges, physical challenges, behavioral difficulties.

**The Goal of Bilingual Teaching:** The goal of bilingual education is to help students acquire English so they can enter and succeed in mainstream classes.

The controversy centers on the role of the first language in instruction - whether it should be used and for how long. On one side of the debate are supporters of first\_language instruction who recommend aggressive development of the primary language prior to the introduction of English. On the other side, are proponents of all-English instruction who feel that the English curriculum should be introduced at the very beginning of the student's school experience, with minimal use of the mother-tongue.

**Bilingual Teaching and Identity Issue:** 'Identity problem' has always occupied a serious position as a part of the foreign language teaching  
*Shodh Shree / Oct. - December 2012* ISSN 2277-5587

profession. Foreign language teaching as a job poses the need for identity adjustments in different environments of the teaching profession for the non-native foreign language teachers. The foreign language teaching profession in some respects involves the acquisition of a second identity alongside with other identity types. All foreign language teachers besides their native, national, ethnic, and cultural identities develop another identity. This fact is a specific case of foreign language identity that may force the teachers to develop an identity crisis. This is also applicable for ESL and EFL teachers.

#### **How do Learners with a non-native English students show discernment**

- Complaining
- Wanting to be only with others who speak their language
- Rejecting anything associated with the new culture (the food, the people, even the new language)
- Feeling depressed and irritable or even angry
- Having headaches or feeling tired all the time.

**Adjustment Challenges Facing ESL Students:** Students who have a limited command of standard English and who are new to English culture and school system require a period of adjustment. A sense of dislocation, or the trauma that new arrivals sometimes experience upon leaving their homeland, can cause some ESL students to appear withdrawn, fatigued, or uninterested. Teachers need to be alert to this possibility, if they are to make accurate assessments of students.

While individual circumstances and personal responses will vary enormously, students who have newly arrived in, typically experience some form of culture shock. It is in fact common for new arrivals to go through stages of adjustment:

**The need for ESL teaching:** in order to help students grasp the world language, English is also hugely important as an international language and plays an important part even in countries where the UK has historically had little influence. Prior to WWII, most teaching of English as a foreign language used British English as its model, and textbooks and other educational resources were produced here in the UK for use overseas. This reflected the UK's cultural dominance and its perceived 'ownership' of the English Language. Since 1945, however, the increasing economic power of the USA and its unrivalled influence in popular culture has meant that American English has become the reference point for learners of English in places like Japan and even to a certain extent in some European countries. British English remains the model in most Commonwealth countries where English is learnt

as a second language.

#### **Methods of Bilingual Teaching**

Bilingual education refers to a range of instructional programs for children whose native language is not English. Started by the federal government in 1968, The three most common approaches are the following:

- **Transitional Bilingual Education (TBE)**, where children are provided with English language instruction, and academic instruction in their native language for some portion of the day. The goal is to prepare students for mainstream classes without letting them fall behind in subject areas. In theory, children transition out of these programs within a few years.
- **Developmental Bilingual Education**, which aims to preserve and build on students' native language skills as they master English. The goal is fluency in both languages.
- **Immersion Programs**, which offer instruction entirely in English and use the native language only for clarification. The goal is to mainstream students within one or two years. Immersion programs are typically combined with an English-as-a-second-language (ESL) pull-out component.

**The Importance of Bilingual Education :** Over the past 10 years, the number of LEP students in the nation's schools has increased by 50%, to 3 million students - a figure that is expected to double in the next decade. Along with rising numbers of students, have been rising costs.

While growing diversity would be enough to put bilingual education on the front-burner, other issues are prompting educators to examine the capability of their bilingual programs. Standards-based reform also raises questions about program capacity. Today, it is neither socially nor economically acceptable to be content with minimal standards for any group. How to provide equal educational opportunity to all children, regardless of their English proficiency, will be an ongoing challenge for schools.

A successful pedagogy must start with an awareness of these difficulties and some fundamental strategies for overcoming them. While a variety of pedagogics can be fruitful, it seems especially helpful to provide an environment where students can comfortably engage in discussion (as opposed to recitation in which a "right" answer is sought). True discussion sends a message of empowerment between equal agents who all have something significant to contribute to a common enterprise. Although

sharing the principles and facts of one's discipline with students is very important, preparing an environment of comfort, trust and mutual respect must also be seen as a primary task.

Create an environment of trust and mutual respect so that discussion is not inhibited by fear. Introduce one or more ice-breaking activities that allow students to get to know one another fairly well. They should know each other's first and last names, hobbies, place of birth etc. Think up questions that are of interest to you and related to your subject area on which students can exchange information. Use some class time to mention things that students have in common.

Students must be assured that one important point of the class is to explore and understand diversity. The strategy must be to celebrate everyone and to denigrate no one. Surely, many aspects of the historical and cultural past will be discussed. Many of them will be negative. But it will not be the job of the professor or other students to point the finger of blame at anyone in the classroom the right of each person to choose what group and what issues to identify with or to disregard must always be protected and respected. Above all the instructor models appropriate behavior by treating all students with great respect, even though he may not, for a variety of very legitimate reasons, agree with some of their opinions. Minority students must be viewed and treated as individuals rather than racial, ethnic or gender categories. No one should be forced to assume the position of a particular group. If they choose to speak as a member of a minority group, their remarks become one more resource that can be utilized in the same way that a contribution from any non-minority person would be incorporated into the classroom dialogue.

#### Reference:-

1. Llorca, E. (2004). *Non-native-speaker teachers and English as an international language*.
2. *International Journal of Applied Linguistics*, 14(3), 314-323.  
Matsuda, A. (2003). *Incorporating World Englishes in Teaching English as an*.
3. *International language. TESOL Quarterly*, 37(4).  
McKay, S. L. (2002). *Teaching English as an International Language: Rethinking*.
4. *Goals and Approaches*. Oxford: Oxford University Press.  
McKay, S. L. (2003). *Toward an appropriate EIL pedagogy: re-examining common*.
5. *ELT assumptions. International Journal of Applied Linguistics*, 13(1), 1-22.  
Modiano, M. (1999). *International English in the global village. English Today*, 15(2), 22-28.
6. Ajzen, I., & Fishbein, M. (1980). *Understanding attitudes and predicting social behavior*. Englewood Cliffs, NJ: Prentice-Hall.

7. Brisk, M. E. (1998). *Bilingual education: From compensatory to quality schooling*. Mahwah, NJ: Erlbaum.
8. Dilg, M. (1999). *Race and culture in the classroom*. New York: Teachers College Press.
9. Guskey, T. R., & Passaro, P. D. (1994). *Teacher efficacy: A study of construct dimensions. American Educational Research Journal*, 31, 627-643.
10. Knudson, R. E. (1998). *The relationship between pre-service teachers' beliefs and practices during literacy instruction for non-native speakers of English*. (ERIC Document Reproduction Service No. ED418074)
11. Liston, D. P., & Zeichner, K. M. (1996). *Culture and teaching: Reflective teaching and the social conditions of schooling*. Mahwah, NJ: Erlbaum. Midgley, C., Ed. (2002). *Goals, goal structures, and patterns of adaptive learning*. Mahwah, NJ: Erlbaum.
12. Midgley, C., Kaplan, A., & Middleton, M. (2001). *Performance-approach goals: Good for what, for whom, under what circumstances, and at what cost? Journal of Educational Psychology*, 93, 77-86.
13. Moore, C. (1999). *Teacher thinking and student diversity*. (ERIC Document Reproduction Service No. ED429947)
14. Nicholls, J. (1984). *Achievement motivation: Conceptions of ability, subjective experience, task choice, and performance. Psychological Review*, 91, 328-346.
15. *No Child Left Behind Act, Pub. L. No. 107-110, 115 Stat. 1425 (2002)*. Rueda, R., & Garcia, E. (1996). *Teachers' perspectives on literacy assessment and instruction with language-minority students: A comparative study. The Elementary School Journal*, 96, 311-332.
16. Tschannen-Moran, M., & Hoy, A. W. (2001). *Teacher efficacy: Capturing an elusive construct. Teaching and Teacher Education*, 17, 783-805.
17. Tschannen-Moran, M., & Hoy, A. W. (2002, April). *The influence of resources and support on teachers' efficacy beliefs. Paper presented at the annual meeting of the American Educational Research Association, New Orleans, LA.*
18. Zimbardo, P. G., & Leippe, M. R. (1991). *The psychology of attitude change and social influence*. New

# Green Banking In India

Corena D'souza

Asst. Prof., D.G. Ruparel College, Mumbai

India has committed that it will reduce its carbon intensity by 20-25 percent from its 2005 levels by 2020. Necessitating every sector of the economy to contribute to this noble cause, including the banking sector. Banks were always considered as being environment friendly as it did not harm the environment much with its operations. But this thought has changed in current times. Today's banks have increased their energy consumption activities, in the form of electricity use (Lights, air conditioners, computers) in the banks as well as the large number of ATM's that the banks operate, High paper wastage (Manual data storage, bank statements, cheque books, deposit and withdrawal slip). But even this is not a matter of huge concern. The concern is their banking relationships with large polluters. Banks are the primary source of finance for large polluting industries like Coal, mine, cement, textiles, chemicals and soon.

A bank cannot just reduce its electricity use or turn paperless and feel obviated from its environmental responsibility and call itself "Green". How would it matter if a bank saved few thousand trees while funding dirty coal operations and high environment damaging mining.

Green banking means promoting environmental friendly practices and reducing ones carbon foot print through ones banking activity. It is any form of banking that benefits the environment.

Banks that promote environmentally friendly practices that help customers in reducing their carbon foot print are called GREEN BANKS.

Green banking coverage includes

- Sustainable banking
- Ethical banking
- Green saving account
- Green checking account
- Green loans
- Green credit cards
- Green mortgages
- Mobile accounts
- Online banking
- Remote deposit (RDC)
- Green money market accounts

## Imperatives Of Green Banking:

In future when you check your credit details, don't be surprised to see a credit amount mentioned in your account with the transaction mark as "Green banking". Green banking is not only beneficial to the environment but to the banks as well as the customers. Every time there is paperless transaction in the bank, the bank is able to save some money and as part of green banking initiative a portion of this amount is given to its customer. This will encourage more paperless transactions by the customers and in the process help to reduce the carbon footprint as well. It is a win-win situation for the customer, the bank and the environment.

Mentioned below are the ways of mitigating different risk with the application of green banking.

- **Credit Risk:** It is associated with financing those activities that are not environment friendly. It can arise indirectly where banks are lending to customers whose businesses are adversely affected by the cost of cleaning up pollution or due to changes in environmental regulations. The cost of meeting new requirements on emission levels may be sufficient to put some companies out of business. Credit risks may be higher due to the probability of customer default as a result of uncalculated expenses for capital investment in production facilities loss of market share and third party liability claim. Credit risks are also associated with lending on the security of the real estate whose value has diminished due to environmental problems.
- **Legal Risk:** Banks are at legal risk if they themselves don't comply with the environmental regulations. Inadequate environmental practices followed by debtors may lead to legal risk. While the banks will be at a legal risk when take possession of a collateral property which is an environment deteriorating asset. They would be at risk of clean up cost or claims for harm to the environment
- **Reputation Risk:** Banking institutions are more prone to loose their reputations if they are involved in big projects, which are viewed as socially and environmentally damaging. Reputation risks involved the financing of ecologically and ethically questionable projects.

## GREEN BANKING STRATEGIES ADOPTED BY INDIAN BANKS:

Although Green banking is not so widely used in India as compared to the developed world, but this concept is slowly but steadily gaining popularity among the India banks. Mentioned below are Green banking strategies followed by some Indian Banks.

### State bank of India

- Green Homes : The state bank of India is supporting the cause of green

banking by offering 0.25% concession in interest rate and waiver of processing fee, on the existing home loan products to customers who go in for green projects.

- **Green Kiosks:** Green Kiosks is a combination of a screen, a keypad, passbook, printer and a processor, which customers can operate themselves using their debit card. SBI is implementing thousands of green kiosks to reduce the need for paper.

#### ICICI bank

- **Instabanking :** Gives the customer the convenience of banking anywhere through internet banking, i-mobile banking, IVR banking. This reduces the carbon foot print of the customers by ensuring they do not have to resort to physical statements or travel to their branches.
- **Vehicle Finance :** ICICI bank's auto loans offers 50% waiver on processing fee on car models which uses alternate mode of energy. The models identified for the purpose are, Maruti's LPG version of Maruti 800, Omni and Versa, Hyundai's Santro Eco, Civic hybrid of Honda, Reva electric cars, Tata Indica CNG and Mahindra Logan CNG version.
- **Home Finance :** ICICI home offers reduced processing fees to customers who purchase home in "Leadership in Energy and environment design" (LEED) certified buildings.

#### IndusInd bank

- **Human aur Hariyali :** This campaign was started by IndusInd bank, in which it introduced solar powered ATM's. The bank expects to save 1980 kwh of energy annually through this campaign.

#### IDIBI bank

- **Exclusive Groups:** IDIBI bank has formed exclusive group of individuals , who work on climate change. They provide advice to the clients to deal with clean development mechanism (CDM), carbon credits of Kyoto protocol and voluntary emission reduction (VERs) authority. • **Special Agreement:** It has entered into agreements with multilateral agencies and buyers of carbon credit like KfW banker group, Federal republic of Germany to offer complete range of CDM related services tailor made to suit the needs of the clients.

#### Yes bank

- **Sustainable investment banking (SIB) :** It is Yes banks specialized

investment advisory for sustainable ventures of commanding expertise in the areas of :

- Alternate Energy and Environment Advisory.
- Social Enterprises and Rural advisory.

The team is one of the few specialized investment banking divisions actively involved in supporting initiative on Renewable Energy, Clean Technology, and socially sustainable sectors. The SBI group also acts as the Exclusive Country Advisor for the Global Environment Fund, USA (GEF) one of the largest and oldest private equity firms focused on investing in the environmental space. Recognising the importance of a global approach to sustainability and the potential for cross-border deal flow, SIB has developed international alliances and now acts as the Exclusive Country Advisor for client of cleantech Australasia, New Equity Services (Israel) and Lahti Science and Business park (Finland).

#### Bank of Maharashtra:

Bank of Maharashtra has recently started with its campaign "ATM vaapra paiysachi varsha hoyeel". Meaning if you use ATM's for your transaction, you will be showered by money. The bank is promoting the use of ATM by this scheme. Customers are given one point for every rupee withdrawn from the Bank of Maharashtra ATM. These points will be collected and after six months money will be given to the customers on the basis of the points collected.

#### Awards And Recognitions:

- **Financial Times and International Finance Corporation awards (FT/IFC) awards.**

The Financial Times and IFC ( International finance corporation) a member of the world bank group, 2011 FT/IFC Sustainable Finance awards, announced in June 2012.

Now in the 7<sup>th</sup> year, the FT/IFC Sustainable Finance awards are the major global awards for environmentally and socially responsible banking and investment. The 2012 awards attracted 161 entries from 145 financial institution and 36 non-financial groups in 67 countries.

Sustainable Bank of the year awards were as follows :

Standard Chartered (UK), won the Sustainable global bank of the year .

Regional Winners	Name of the bank	Country
Africa/Middle East	Ned bank	South Africa
Americas	Ita`u Unibanco	Brazil
Asia/Pacific	Yes bank	India

While special commendation was given to Credit Suisse, Switzerland.

- **Golden Peacock Awards.**

Golden Peacock Awards, instituted by institute of directors is well known award for corporate excellence worldwide. It receives over 1000 entries per year for various national and global awards, from India and over 25 countries worldwide.

The award winners are eligible to use the Golden Peacock Awards logo on all printed and promotional materials for next one year.

Following are the category winners in the banking sector

Category	Name of the bank	Year of Declaration
Corporate Social Responsibility ( National)	State bank of India & The Federal bank Ltd.	2012
Corporate Social Responsibility (Global)	Doha bank (Middle East)	2011
Sustainability (Global)	Doha bank (Qatar)	2012

### **Kyoto Protocol And Green Banking.**

Kyoto Protocol is a protocol to the United Nations Framework Convention on Climate Change (UNFCCC) aimed at fighting global warming. There are 191 members who are part of this protocol. The Kyoto Protocol has set 'Caps' or quotas for Green House gases emission, for the developed Annex I countries are known as Assigned Amount Units (AAUs) are listed in Annex B. These Caps or Quotas are known as Carbon Credits and each credit permits emission of one metric ton of carbon di oxide or equivalent amount of other Green house gases. Under International Emissions Trading (ET). Countries can trade in the international carbon credit market to cover their shortfall in Assigned Amount Units (AAUs). Countries with surplus units can sell them to countries that are exceeding their emission targets under Annex B of the Kyoto Protocol.

These credits can be traded in the market between operators who have surpassed their limit and those who have balance of these carbon credits left. Since India has huge potential for carbon credit business. Banks can play a vital role in this business. It can be a place where there is buying and selling of carbon credits. So firms with surplus AAUs have not to search for firms, to sell their carbon credit who have exceeded or are on the verge of exceeding their

AAUs, to sell their carbon credit. Banks can make this task easier for them. Firms with surplus or exceeding AAUs can directly sell or buy it from banks. So banks can have separate exclusive units for "Carbon Banking" which can deal with the carbon credit business.

- **Clean Development Mechanism (CDM) :** Under the clean development mechanism (CDM) a developed country can sponsor a green house gas reduction project in a developing country, where the cost of greenhouse gas reduction project activities is usually lower, but the effect of this project is globally equivalent. The developed country would be given credits for meeting its emission reduction targets. While the developing country would receive the capital investment , clean technology and beneficial change in land use. Banks in India can participate in this eco friendly business wherein they can provide all the services in the area of CDMs and carbon credits including services of identification and funding of CDM projects, advisory services for registration of CDM projects and commercialization of CERs under different structures to meet the requirements of its customers. They can act as a bridge between the developed country sponsoring a CDM and the developing country where it is going to be implemented.

### **Primary Research**

**Objective:** To find out the awareness and application of Green Banking.

**Sample Size and Design:** A sample of 30 people was taken. The actual consumers were contacted on the basis of random sampling.

**Research Instrument:** This work is carried out through self-administered questionnaires.

**Results :** Of the 35 people who answered the questionnaire

1. 31 had a bank account
2. 23 were aware that through their banking activity the environment can be protected.
3. 20 had heard about GREEN BANKING.
4. 8 were informed by their banks about Green banking schemes; all 8 took advantage of the scheme.
5. 26 preferred paperless banking.
6. 30 Individuals preferred financial and environmental benefits through green banking.
7. 32 would shift to paperless banking if it protected the environment.
8. 31 would not deal with a bank, if they were aware that it harmed the environment, while 4 would continue with the same bank even after being

aware of it creating environment damage.

#### Conclusion

1. Individuals are ready to switch to paperless banking if they get certain benefit out of it.
2. Few banks have informed their customers about their green banking schemes, i.e. only 8 individuals out of 31 were informed by the banks .And all 8 used this information. Thus if the banks spread awareness about Green banking, in a better manner, more customers will be part of it.
3. 31 individuals said that they would not deal with banks, whose activity harm the environment.

Thus it should be made mandatory for the banks to publish and share their investments. This will help the customers in knowing how their money is being used by their banks. If the bank is providing loans to those activities which harm the environment , they can part ways and stop dealing with such banks. This will put pressure on the banks to fund activities only which are environment friendly.

#### Recommendations

- **Recognition and Reward** : Recognition and rewards are the best way to motivate banks to work further towards being environment friendly. The Reserve bank of India as being the Prime bank, should take a lead in this direction. It should recognize the most sustainable banks and reward them with special tax deductions or some special feature which no other bank holds. This would promote the environment friendly concept, among other banks too. The rewards would create a good image of the bank, increasing the number of foot print conscious customer investing in these banks.
- **Green Investments**: Special investment schemes should be made for environment conscious customer . The finance from this special investment schemes should be directed to environment friendly projects (Green buildings, Non conventional source of energy) only. Customers would not mind a slightly low rate of interest, in such investments to reduce their carbon foot print.
- **Eco Insurance**: Man has harmed the environment continuously and repeatedly. And its after effect is here for all to see. There are numerous environmental problems that man is facing today, Global Warming, Air. Water, Land and Noise pollution, Change of seasons, Salinization, water logging, Extinction of species the list is endless. Eco Insurance is definitely going to be the need of the near future. Where, banks will have to insure its customers against environmental

problems. The premium amount of this insurance could differ on the basis of the person's carbon foot print. The greater the carbon foot print, the higher the premium amount. On the lines of polluter pay principle.

- **Special benefits**: Banks can provide special benefits to their special customers, who have the least carbon footprint. A higher rate of interest in their investments or may be a waiver to the processing fee of their loans. This will motivate all the customers to further reduce their carbon footprint.
- **Environment Impact Assessment (EIA) or Environmental Auditing** : Environmental impact assessment should be made compulsory not only for a set of activities, but all projects in general. This will bring seriousness among all the different sectors.
- **Promote brand "GREEN"**: Promoting the brand Green by especially well known celebrities will help in it gaining momentum. The concept of green can be promoted in various ways so that it can appeal to different section of the society as well as people of different age group. It can be promoted as being stylish, sustainable, and healthy and so on.

**Future Of Green Banking**: The GREEN trend that has begun, is here to stay. People today are getting increasingly conscious about their carbon footprint, and this consciousness will lead to actions. This might not happen overnight, but the momentum gained in the last decade is leading to a change. A new cluster of banks have emerged, that are more concerned about the environment then their counter parts. This has given them a special recognition among the general public. Leading other banks to imitate them. State Bank of India is a good example of this.

Paperless banking has now become a common practice in most of the leading banks. Other green banking activities will soon follow. Green banking having great potential in India. Very soon we will have all banks that apply principles of sustainability and responsibility to their business model, products and operations. Environment safeguarding and banking will be two inseparable activities.

**Conclusion** : The concept of Green Banking in India is only thought as paperless banking. Green Banking is a much wider activity, is know to limited individuals and practiced by a lesser number of banks. If compared to the developed countries, India lies much behind in Green Banking. In India Green Banking is a relatively new idea. It will take some time to gain momentum. Although the practice has started through various projects launched by different Indian banks.

India inherently practiced environment protection, where she worshipped and protected the environment. And this practice can be continued through

banking sector. India also has great potential in Carbon trading and Clean development mechanism. Thus the future of Green Banking in India looks quiet bright.

#### References: -

1. Hart, Stuart (1995), "Does it pay to be green ? An Empirical Examination of the relationship between Emission Reduction and Firm Performances". *Business Strategy and the Environment*.
2. Jan Willem van Gelder, (2006), "Sustainable Banking in Practice: A closer look at the nominees for the 2006 Financial Times Sustainable Banking Awards", *Banktrack., Profundo*.
3. Jeucken, M (2001) "Sustainable Finance and Banking , The Finance Sector and The Future of the Planet" London, Earthscan.
4. Starogiannis, D (2006) "What is Environmental Responsibility of Banks" UNEP FI Conference, June.
5. Thompson, -Hilary-J, (1995) "The Role of Financial Institutions in Encouraging Improved Environmental Performance" in Rogers, -Michael-D., ed. *Business and the environment*. New York: St. Martin's Press; London: Macmillan Press; 271-81
6. [http://www.academia.edu/1272874/Green\\_Banking\\_in\\_India](http://www.academia.edu/1272874/Green_Banking_in_India)
7. [www.ftconferences.com/sustainablefinance2011http://greenbankreport.com/green-bank-deals/state-bank-of-india-brings-banking-to-rural-areas/](http://www.ftconferences.com/sustainablefinance2011http://greenbankreport.com/green-bank-deals/state-bank-of-india-brings-banking-to-rural-areas/)
8. <http://www.sbi.co.in/>
9. <http://www.icicibank.com/go-green/>
10. [http://www.indusind.com/indusind/wcms/en/home/top-links/investors-relation/annual-reports/18\\_ar\\_1112.avsFiles/PDF/IndusInd%20Bank%20AR\\_2012\\_LR.PDF](http://www.indusind.com/indusind/wcms/en/home/top-links/investors-relation/annual-reports/18_ar_1112.avsFiles/PDF/IndusInd%20Bank%20AR_2012_LR.PDF)
11. <http://www.goldenpeacockawards.com/past-winners/corporate-social-responsibility-gpacs.html>
13. <http://www.yesbank.in/index.jsp?navigationUrl=%2FYES+Bank+Repository%2Fen%2FKnowledge+Banking%2FResponsible+Banking%2FSustainable+Investment+Banking+%28SIB%29>

## Information Technology (IT) in Academic Libraries

Mrs. Kumkum Rajawat

Librarian, Maharaj Vinayak Global University, Jaipur

**"Knowledge is of two kinds. We know a subject ourselves or we know where we can find information upon it".**

The information explosion of recent years has led to the phenomenal increase in the production of scientific and technical literature. Approximately one million articles are published every year. The traditional tools and techniques proved inadequate and slow to harness the flooding information. Innovations in computers and telecommunications technology have resulted in major changes in basic library operations<sup>1</sup>.

The term information technology (IT) is most commonly used to mean a combination of computers and communication technologies used for information storage retrieval and dissemination. It also covers the developments and improvement of non print media for recording information such as microfilms, micro fishes, CDROMS etc.<sup>2</sup>

**Information technology (IT)** is a branch of engineering dealing with the use of computers and telecommunications equipment to store, retrieve, transmit and manipulate data. The Information Technology Association of America has defined IT as "the study, design, development, application, implementation, support or management of computer-based information systems".

Humans have been storing, retrieving, manipulating and communicating information since the Sumerians in Mesopotamia developed writing in about 3000 BC, but the term "information technology" in its modern sense first appeared in a 1958 article published in the Harvard Business Review; by Leavitt and Whisler. Based on the storage and processing technology employed, it is possible to distinguish four distinct phases of IT development: pre-mechanical (3000 BC - 1450 AD), mechanical (1450-1840), electromechanical (1840-1940) and electronic. This article focuses on the latter of those periods, which began in about 1940.

Information Technology (IT) is a generic term that covers the acquisition, processing, storage and dissemination of information. IT is the boon for mankind. It gives accessibility to information at fingertips. IT has reduced the space and time between the people, country and continent and ultimately has led to the emerging concept "global society" and "global village".

Information technology is an application and commodity support

through which or by means of which information is transferred, recorded, edited, stored, manipulated or disseminated.

### **HISTORICAL DEVELOPMENT OF INFORMATION TECHNOLOGY**

The term Information technology is recent and comprehensive term. The term 'Information Technology' in English, 'Infomatique' in French and 'Infomatika' in Russian encompass the notation of Information handling. In its strictest sense, Information technology is a new science of collecting, storing, processing and transmitting any information.

The word Information Technology is a combination of two words. One is Information and the other is Technology; Information means knowledge, it can be a bit of a para of a page. In addition, dictionary definition of Technology is the systematic application of scientific and other organized knowledge, skills to practical tasks by use of computers and communication.

Information Technology as a technical support for human thinking and communication has been evolving over thousands of years. New developments have been rapid over the last few decades. It is only recently that the term has been used as a collection term for the whole spectrum of technologies providing the ways and means to acquire, store, transmit, retrieve and process information. All three have gone through well defined stages of Development<sup>3</sup>.

1. The Technology of Recording and Storing Data
2. The Technology of Analyzing Data
3. The Technology of Communication Data

Computers made their debut when Charles Babbage invented the difference engine in the mid nineteenth century. Developments in computer and communication technologies have brought about a new dimension processes of information handling. The introduction of microprocessor and mini computers has made things much easier. All these developments facilitate better and quicker service to the users.

### **Impact on Library and Librarianship**

The impact of new technologies is seen in almost every human activity. It has created tremendous impact in the field of education, culture, society etc. The application of information technology has largest impact on all the activities of library and librarianship

The impact of information technology has changed the ways of perception and disseminations of Information. Users need not to spend their precious time in going through large number of documents and endless

number of pages for getting the required Information everything is available at the click of a mouse in the computer terminal. This is advantageous from user point of view, however it has caused a serious threat to the library profession and professionals who are still using the traditional ways the disseminating the information.

### **Need and Purpose of Information Technology in Libraries**

This is an era of information explosion in which large amount of information is being generated at every moment. The abilities to collect store and disseminate new technologies.

Information technology is a generic term used for a group of technologies. The new technologies are most relevant for application in modern library and information system which can be grouped into three major areas:

1. Computer technology
2. Communication Technology
3. Reprographic, Micrographic and printing technologies.

The application of information technology in libraries results in increased operational efficiency. The IT increases productivity of library staff. It relieves professional staff from mundane jobs that involves a lot of duplication so that they can be fruitfully used for user-oriented library services. It improves quality of services rendered by the library. Use of information technology ensures ease of functioning, accuracy and economy in human labour with greater speed<sup>4</sup>. The exponential growth of information has made manual system redundant giving way to computerized information storage and retrieval tools. Effective and efficient handling of huge quantum of information is only possible by using computers, which have the added advantage of being highly accurate and efficient that adds value to information. Moreover, the technology also helps in rendering services that were hitherto not possible using traditional means. The new information technology facilitates improved management of physical and financial resources. The advances in technology and its availability at lower cost, has also raised expectations of users from librarians and libraries. The new information technology, on one hand, facilitate wider access to information for the library users, on other hand, it facilitates wider dissemination of information products and Services generated by the library. The availability of networks facilitates resource sharing and high-speed communication with other libraries.

## OBJECTIVES

The objectives of Information Technology are to provide better means of Information of data messages in the form of written or printed records, electric, audio or video signals by using wires, cables and telecommunication techniques.

The objectives of Information Technology in Library and Information centers can be categorized in to the following four groups.

1. Supporting technical functions associated with technical processing and circulation work.
2. Supporting Information storage, retrieval and dissemination systems.
3. Supporting management Information services for libraries, especially analyzing library statistics.
4. In can best be used in service and orientation courses for practicing librarians, continuing education programs for teachers of library, and Information Science, correspondence studies and library extension services..

## Advantages

A variety of advantages can be derived in the appropriate use of information technology.

1. IT helps to avoid duplication of effort and work in library Networks.
2. IT facilitates cooperation and resource sharing through library Networks.
3. IT helps to introduce new results and improve existing services.
4. IT allows integration of various library operations.
5. IT executes repetitive nature of works.
6. IT facilitates faster Information communication.
7. IT helps to increase the quality and range of services.
8. IT increases morale and motivation of library staff.
9. IT facilitates easy and wider access to all kinds of Information sources.
10. IT helps to increase efficiency and effectiveness in library operations.
11. IT ultimately helps to save time, space, energy, and resources.
12. IT helps to improve productivity and image of the library.

## Conclusion

Information technology is to play an important role in the work of the society and library and Information centers. The success of a library depends to large extent, on the effective organization of the house keeping activities. Automated library system offers convenient more flexible and comprehensive storage and retrieval of Information than manual system. Future libraries need to adopt a more particularly structure, as impact of Information

Technology cannot be contained within one section of its service. In the years ahead, the quality of library and Information service will be largely determined by librarian's skills and imagination bringing into balance the needs, priorities, technology and funding. Growing Information coupled with the changing life styles and demands of clientele offers a wide array of challenge to libraries.

Application of IT in modern libraries. Improves the status of the library and it reduces the work load of the library professions. Finally we can conclude with T.S. Elliot's 'Choruses' from Rock" poem.

Where is the wisdom we have lost in knowledge?

Where is the knowledge we have lost in Information?

Where is the Information we have lost in Library?

And where is the new one we have gain from Information Technology.

## REFERENCES:-

1. Chopra H.S, *Library Information Technology in Modern Era*, Commonwealth Publishers, New Delhi
2. ibdi
3. Singh Mahender Pratap, *Use of Information Technology in Library and Information Science*, Abhijeet Publications, Delhi
4. Arora Jagdish, *Information and Communication Technology in Academic Libraries*

## SHODH SHREE

(Journal of Multidisciplinary Research)

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur-302018

shodhshree@gmail.com

Chief Editor - Virendra Sharma

Co Editor - Dr. Ravindra Tailor

Membership No.....

Date.....

(For Office Use Only)

### Subscription Form

Name Prof./Dr./Ms./Mr. .... Designation .....

Name of Organization .....

Mailing Address .....

District ..... State .....

Tel. No (Res.) ..... Mobile No. ....

E-mail Address .....

Subscription fee can be deposit through online Banking.

Date

Signature

1. Required Font For Resaech Paper - Kruti Dev-010 (For Hindi) or, Times New Roman (For English)
2. Subscription Fees 800 Rs (For Individual) and Rs 1200 (For Institution)
3. Research Paper may be Sent through By email, post or C.D.
4. For any assistance, please contact - 09413224134

## DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I .....

hereby declared that the paper entitled ' .....

.....' is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with ..... which is exclusively for your Journal

entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same except one copy of the

Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first.

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other Journal or book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

Residential Address .....

Phone No. ....

E-mail Address .....